श्रीकालीतन्त्रम्

श्रीकालीकुलान्तर्गतः

आचार्य अजयकुमार उत्तम

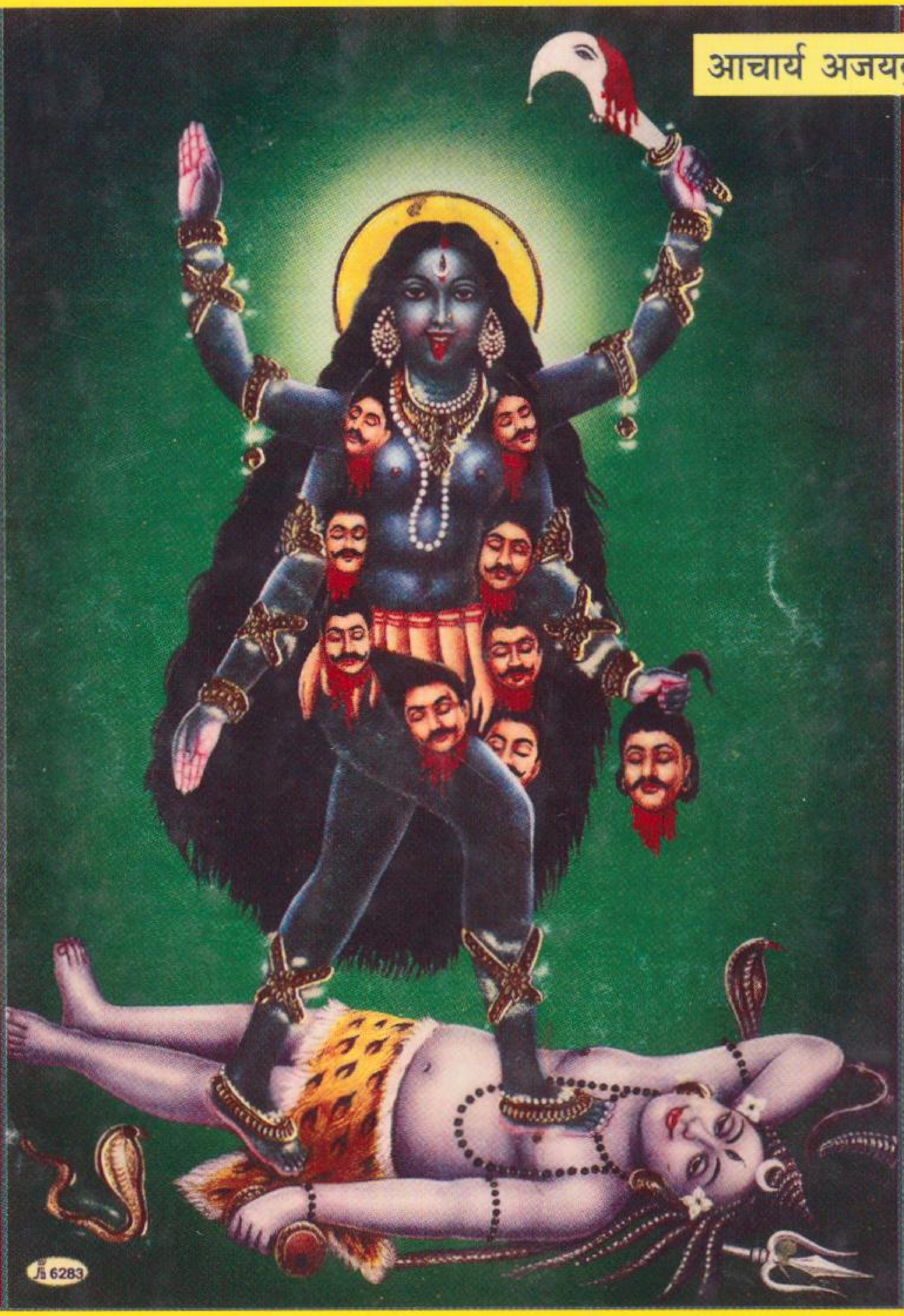

भारतीय विद्या संस्थान

श्रीदशमहाविद्या ग्रन्थमाला प्रथम पुष्पम्

श्रीकालीतन्त्रम्

श्रीकालीकुलान्तर्गतः

सम्पादकव्याख्याकारश्च

आचार्य अजय कुमार उत्तम

भारतीय विद्या संस्थानम्

वाराणस्याम्

प्रकाशक :
© भारतीय विद्या संस्थान
प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता
सी० २७/५९ जगतगंज
वाराणसी-२२१००२ (उ०प्र०)

ISBN–81-87415-95-9
प्रथम संस्करण : २०१० ई.
मूल्य : ३००रूपये

मुद्रक :
प्रभा प्रेस
चौकाघाट, वाराणसी
मो०-९८३८९२७०९५

भूमिका

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी ।।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ।
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका ।।
एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः।
एषा विद्या प्रकथिता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।।

मुण्डलमालातन्त्रम् (१) ६-(१५२-१५४)

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी ।
भैरवी छिन्नमस्मा च विद्या धूमावती तथा ।।
बगलामुखी सिद्धविद्या मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्या सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः।।

मुण्डमालातन्त्रम् (२) १-(७-८)

तन्त्रशास्त्र में दश महाविद्याओं का वर्णन किया गया है। ये दशमहाविद्यायें हैं— **१. काली २ तारा ३ षोडशी ४ भुवनेश्वरी ५ त्रिपुरभैरवी ६ छिन्नमस्ता ७. धूमावती ८ बगलामुखी ९ मातंगी एवं १० कमला अथवा कमलात्मिका।**

इनमें **काली** का स्थान सर्वप्रथम है। इसलिये इन्हें **आद्या** भी कहा जाता है।

'काल' का कलन करने के कारण इन्हें **काली** कहा जाता है।

काली के अनन्त असंख्य भेद हैं, पर मुख्य भेद आठ ही है। यथा— **१. चिन्ता मणि काली २. स्पर्शमणि काली ३. सन्ततिप्रदा काली ४. सिद्धि काली ५. दक्षिणा काली ६. कामकला काली ७. हंस काली और ८. गुह्य काली।**

इन आठ भेदों में मुख्य **दक्षिणा काली** हैं। इनके **दक्षिणा काली** नाम होने के सम्बन्ध में **निर्वाण तन्त्र** में कहा गया—

दक्षिणस्यां दिशि स्थाने संस्थितश्च रवेः सुतः ।।४९।।
कालीनाम्ना पलायेत भीतियुक्तः समन्ततः ।
ततः सा दक्षिणा नाम्ना त्रिषु लोकेषु गीयते ।।५०।।

दक्षिण दिशा में रहने वाले सूर्यपवुत्र यमराज, काली का नाम सुनकर भयभीत होकर भाग जाते हैं। यमराज काली के उपासकों को नरक में नहीं ले जा सकते। इसीलिये भगवती का नाम दक्षिणा काली है।

कामाख्या तन्त्र में कहा गया है—

यथा कर्मसमाप्तौ च, दक्षिणा लसिद्धिदा।
तथा मुक्तिरसौ देवी, सर्वेषां फलदायिनी।।

विमलानन्ददायिनी व्याख्या में कहा गया है—

दक्षिणामूर्तिभैरवाराधिता, तस्मात् दक्षिणा प्रकीर्तिता।

सर्वप्रथम दक्षिणामूर्ति भैरव ने इनकी आराधनाकी। इसलिये इन्हें दक्षिणा काली कहा गया।

शक्ति सङ्गम-तन्त्र में **दक्षिणा** की व्याख्या इस प्रकार है—

वरदानेषु चतुरा, तेनेयं दक्षिणा स्मृतां।

भगवती वरदान देने में अत्यन्त चतुरा है इसलिये दक्षिणा कही गयी है। भगवती **दक्षिणा काली** का बीजमन्त्र **क्रीं** है।

काली का ध्यान **कालिकापुराण** में इस प्रकार है—

नीलोत्पलदलश्यामा चतुर्बाहुसमन्विता।
खट्वाङ्गं चन्द्रहासञ्च विभ्रती दक्षिण करे।।
वामे चर्म्मं च पाशञ्च ऊर्ध्वाधोभावतः पुनः।
दधती मुण्डमालाञ्च व्याघ्रचर्मवराम्बरा।।
कृशाङ्गी दीर्घदंष्ट्रा च अतिदीर्घाऽतिभीषणा।
लोलजिह्वा निम्नरक्तनयना नादभैरवा।।
कबन्धवाहना पीतविस्तारश्रवणानना।।

कालीविलास तन्त्र में इनके दो ध्यान प्राप्त होते हैं—

१ जटाजूटसमायुक्तां, चन्द्रार्द्धकृतशेखराम्।
पूर्णचन्द्रमुखीं देवीं, त्रिलोचनसमन्विताम्।।
दलिताञ्जनसङ्काशां दशबाहुसमन्विताम्।
नवयौवनसम्पन्नां, दिव्याभरणभूषिताम्।।

सुचारुदशनां नित्यां सुधापुञ्जसमन्विताम्।
शृङ्गाररससंयुक्तां सदाशिवोपरिस्थिताम्।।
दिङ्मण्डलोज्ज्वलकरीं ब्रह्मादिपरिपूजिताम्।
वामे शूलं तथा खड्‌गं, चक्रं वाणं तथैव च।।
शक्तिं च धारयन्तीं तां परमानन्दरूपिणीम्।
खेटकं पूर्णचापं च पाशमंकुशमेव च।।
घण्टां वा परशुं वापि दक्षहस्ते च भूषिताम्।
उग्रां भयानकां भीमां भेरुण्डां भीमनादिनीम्।।
कालिकाजटिलां चैव भैरवीं पुत्रवेष्टिताम्।
आभिः शक्तिरष्टाभिश्च सहितां कालिकां पराम्।।
सुप्रसन्नां महादेवीं कृष्णक्रीड़ां परात्पराम्।
चिन्तयेत् सततं देवीं धर्मकामार्थमोक्षदाम्।।

दूसरा ध्यान इस प्रकार है—

दलिताञ्जनसङ्काशां चतुर्बाहुसमन्विताम्।
खड्‌गमुण्डधरां वामे दक्षिणे चाभयं वरम्।।
मुण्डमालाधरां नित्यां कटाक्षविशिखोज्ज्वलाम्।
सिन्दूरतिलकोद्दीप्तां अञ्जनाञ्चितलोचनाम्।।

कादिक्रम का ध्यान—

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्।।
सद्यश्छिन्नशिरः खड्‌गं वामाधोर्ध्वकराम्बुजाम्।
अभयं वरदं चैव दक्षिणोर्ध्वाधः पाणिकाम्।।
महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बरीम्।
कण्ठावसक्तमुण्डालीं गलद्रुधिरचर्चिताम्।।
कर्णावतंसतानीतशवयुग्मभयानकाम् ।
घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधरीम्।।
शवानां करसङ्घातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्।
सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम् ।।

घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्।
बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम् ।।
दन्तुरां दक्षिणव्यापि मुक्तालम्बिकचोच्चयाम्।
शवरूपमहादेवहृदयोपरिसंस्थिताम् ।।
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्।
महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम्।।
सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरूहाम्।
एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं सर्वकामार्थसिद्धिदाम्।

हादि क्रम का ध्यान—

देव्या ध्यानमहं वक्ष्ये सर्वदेवोऽपशोभितम्।
अञ्जनाद्रिनिभां देवीं करालवदनां शिवाम्।।
मुण्डमालावलीकीर्णां मुक्तकेशीं स्मिताननाम्।
महाकालहृदम्भोजस्थितां पीनपयोधराम्।।
विपरीतरतासक्तां घोरदंष्ट्रां शिवेन वै।
नागयज्ञोपवीतां च चन्द्रार्द्धकृतशेखराम्।।
सर्वालङ्कारसंयुक्तां मुक्तामणिविभूषिताम्।
मृतहस्तसहस्त्रैस्तु बद्धकाञ्चीदिगम्बराम्।।
शिवाकोटिसस्त्रैस्तु योगिनीभिर्विराजिताम्।
रक्तपूर्णमुखाम्भोजां, सद्यः पानप्रमत्तिकाम्।।
अभीवरदं दक्षोर्ध्वाधः करां परमेश्वरीम्।।
वह्नयर्कशशिनेत्रां च रणविस्फुरिताननाम्।

क्रोधक्रम का ध्यान—

दीपं त्रिकोणं विपुलं सर्वतः सुमनोहरम्।
कूजत् कोकिलानादाढयं मन्दमारुतसेवितम्।।
भृङ्गपुष्पलताकीर्णमुद्यच्चन्द्रदिवाकरम् ।
स्मृत्वा सुधाब्धिमध्यस्थं तस्मिन् माणिक्यमण्डपे।।
रत्नसिंहासने पद्मे त्रिकोणोज्ज्वलकर्णिके।
पीठे सञ्चिन्तयेत् देवीं साक्षात् त्रैलोक्यसुन्दरीम्।।

नीलनीरजसङ्काशां प्रत्यालीढ़पदस्थिताम्।
चतुर्भुजां त्रिनयनां खण्डेन्दुकृतशेखराम्।।
लम्बोदरीं विशालाक्षीं श्वेतप्रेतासनस्थिताम्।
दक्षिणोर्ध्वेन निस्त्रृंशं वामोर्ध्वनीलनीरजम्।।
कपालं दधतीं चैव दक्षिणाधश्च कर्तृकाम्।
नागाष्टकेन सम्बद्धजटाजूटां सुरार्चिताम्।।
रक्तवर्तुलनेत्राश्च प्रव्यक्तदशनोज्ज्वलाम्।
व्याघ्रचर्मपरीधानां गन्धाष्टकप्रलेपिताम्।।
ताम्बूलपूर्णवदनां सुरासुरनमस्कृताम्।
एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं सर्वाभीष्टप्रदां शिवाम्।।

वागादि क्रम का ध्यान—

चतुर्भुजां कृष्णवर्णां मुण्डमालाविभूषिताम्।
खड्गं च दक्षिणे पाणौ विभ्रतीं सशरं धनुः।।
मुण्डं च खर्परं चैव क्रमाद् वामे च विभ्रतीम्।
द्यां लिखन्ती जटामेकं विभ्रतीं शिरसा स्वयम्।।
मुण्डमालाधरां शीर्षे ग्रीवायामपि सर्वदा।
वक्षसा नागहारं तु विभ्रतीं रक्तलोचनाम्।।
कृष्णावर्णधरां दिव्यां व्याघ्राजिनसमन्विताम्।
वामपदं शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पदम्।।
विन्यस्य सिंहपृष्ठे च लेलिहान्तं शवं स्वयम्।
साट्टहासां महाशवयुक्तां विभीषिणाम्।।
एवं विचिन्त्या भक्तैस्तु कालिका परमेश्वरी।
सततं भक्तियुक्तैस्तु भोगैश्वर्यामभीप्सुभिः।।

इसके अतिरिक्त **नादि-क्रम, दादि क्रम** तथा **प्रणवादि क्रम** के ध्यान भी हैं। जिज्ञासु साधक/पाठक तन्त्र-ग्रन्थों के अनुशीलन से उन्हें जान सकते हैं।

भगवती काली अत्यन्त ही प्राचीन देवता हैं। **मुण्डकोपनिषद्** में **काली** की कराल मूर्ति का उल्लेख भी मिलता है। यथा—

काली कराली च मनोजवा च, सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।

दश महाविद्या में सर्वप्रथम **काली** का नाम आता है। **तन्त्र-शास्त्र** में काली को ही आद्या शक्ति महामाया कहा है। **मार्कण्डेय पुराण** में कहा है कि देवी नित्या (उत्पत्ति-विनाश-रहिता) होने पर भी देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये पृथ्वी पर अवतरित होती हैं। यथा—

देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याऽप्यभिधीयते।।

काली तत्त्व से जगत की उत्पत्ति होती है और **काली तत्त्व** में ही जगत् का लय होता है। **भीति** और **प्रीति** का सुन्दर समावेश **कालीमूर्ति** में स्पष्ट रूप से स्थित है। असुरों का नाश करने वाली **माँ काली** ही वर एवं अभय देने वाली हैं। **काली तत्त्व** साधना की शेष सीमा है। सभी प्रकार की विकार एवं वृत्तियो का क्षय होकर विशुद्ध चैतन्य का उदय होने पर ही **काली तत्त्व** का प्रकाश होता है। **काली तत्त्व** ही **परम तत्त्व** है। **श्री काली मूर्ति**, **परम तत्त्व** का ज्वलन्त प्रतीक है।

कामधेनु तन्त्र में कहा गया है—

कालसङ्कलनात् काली, कालग्रासं करोत्यतः।

अर्थात् जो काल को भी खा जाती हैं, वे ही काली हैं। **महानिर्वाण तन्त्र** में भी कहा गया है—

तव रूपः महाकालो जगत्संहारकारकः।
महासंसारसमये कालः सर्वं ग्रसस्यति।।
कलनात् सर्वभूतानां महाकालः प्रकीर्तितः।
महाकालस्य कलनात् त्वमाद्या कालिका परा।।
कालसङ्कलनात् काली सर्वेषादिरूपिणी।
कालत्वादादिभूतत्वादाद्यकाली गीयते।।

अर्थात् संसार का संहार करने वाला **काल** तुम्हारा ही एक रूप है। महाप्रलय के समय यह **महाकाल** सम्पूर्ण सृष्टि को खा जाता है। समस्त भूतों को खा जाने के कारण इसका नाम **महाकाल** है। तुम **महाकाल** को भी खा जाती हो इसलिये तुम्हारा नाम **महाकाली** है। सबकी **आदिकालत्व** और **आदि भूतत्व** होने से लोग तुमको **आद्या काली** कहते हैं।

दश महाविद्याओं में **काली** शुद्धसत्त्वप्रधाना निर्विकारा और निर्गुण-

ब्रह्मस्वरूपप्रकाशिका हैं। ये **आदिरूपा** और साक्षात् **कैवल्यप्रदायिनी** हैं। अपरापर महाविद्यायें **ब्रह्मस्वरूपा काली** के भिन्न भिन्न रूप मात्र हैं। **निरूत्तर तन्त्र** में भगवान् शिव ने कहा है—

सर्वेषां सिद्धविद्यानां प्रकृतिर्दक्षिणा प्रिये!।

अर्थात् समस्त सिद्ध विद्याओं में **दक्षिणा काली** सबकी प्रकृति (कारण) हैं। **योगिनी तन्त्र** में कहा गया है—

महामहा ब्रह्मविद्या विद्येयं कालिका मता।
यामासाद्य च निर्वाणमुक्तिमेति नराधमः।।
अस्या उपासकाश्चैव ब्रह्माविष्णुशिवादयः।।

अर्थात् यह **कालिका विद्या** महामहाब्रह्म विद्या है, जिसकी कृपा से महापापी भी निर्वाण मुक्ति प्राप्त करते हैं। **ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देवगण काली** के ही उपासक हैं।

कालीतन्त्र में कहा गंया है—

न हि कालीसमा विद्या न हि कालीसमं फलम्।
न हि कालीसम ज्ञानं न हि कालीसमं तपः।।

काली के समान विद्या नहीं है, काली के समान फल नहीं है, काली समान ज्ञान नहीं है और काली समान तप नहीं है।

कुब्जिका तन्त्र में कहा गया है—

कालिका मोक्षदा देवि! कलौ शीघ्रफलप्रदा।

मोक्षप्रदान करने वाली **भगवती कालिका** की उपासना कलियुग में शीघ्र फल प्रदान करती है।

पिच्छिला तन्त्र का कहना है—

कलौ काली कलौ काली, नान्यदेवः कलौ युगे।

कलियुग में एक मात्र **काली** ही आराध्या हैं, कलियुग में और कोई देवता आराध्य नहीं है।

काली की उपासना से साधक को भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती हैं। **काली तन्त्र** में कहा गया है—

आयुरारोग्यमैश्वर्यं बलं पुष्टिं महद् यशः।
कवित्वं भुक्तिमुक्तिं च कालिकापादपूजनात्।।

साधक **कालिका** के चरण कमलों की पूजा करके आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य बल, पुष्टि, विपुल कीर्ति (यश), कवित्व शक्ति, भोग और मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

मन्त्र शास्त्र में **काली** के **आठ भेद** माने जाते हैं—**१. संहार काली २. दक्षिण काली ३. भद्रकाली ४. गुह्यकाली ५. महाकाली ६. वीर काली ७. उग्र काली और ८. चण्डकाली।**

कालिका पुराण मे वर्णन है कि **आदिसृष्टि** में **भगवती** ने **महिषासुर** को उग्रचण्डी रूप से मारा है। इस रूप में **भगवती** की **अष्टादश भुजायें** हैं। **द्वितीय सृष्टि** में यही **उग्रचण्डी**, **महाकाली** अथवा **महामाया** कहलाती हैं। इस मूर्ति की सोलह भुजायें हैं।

कालिका पुराण के अनुसार—

योगनिद्रा महामाया, जगद्धात्री जगन्मयी।
भुजैः षोडशभिर्युक्ता...........।।

इन्हीं का नाम **भद्रकाली** भी है। **दश भुजावाली दुर्गा देवी** का नाम **कात्यायनी** भी है और उन्हीं को **उग्र काली** भी कहते हैं।

कालिकापुराण के अनुसार—

कात्यायनीमुग्रकालीं दुर्गामिति तु तां विदुः।

वीर काली, **चण्ड विनाशिनी** हैं और इनकी **आठ भुजायें** हैं। **संहार काली** की **चार भुजायें** हैं और ये **धूम्रलोचननिर्नाशी** हैं। **चण्ड काली** की **बत्तीस भुजायें** हैं और ये **शुम्भ विनाशिनी** मानी जाती हैं। कहा भी है—

चण्ड काली तु या प्रोक्ता द्वात्रिंशद् भुज शोभिता।

समयाचार रहस्य में इनके भी भेद निम्न प्रकार से बताये गये हैं—

१ प्रत्यङ्गिरा २ भवानी ३ वाग्वादिनी ४ शिवा ५ भेदों सहित भैरवी ६ योगिनी ७ शाकिनी ८ चण्डिका और ९ रक्त चामुण्डा—ये **संहार कालिका** के भेद हैं।

कराली, विकराली, उमा, मञ्जुघोषा, चन्द्ररेखा, चित्ररेखा, त्रिजटा, द्विजा,

एकजटा, नीलपताका, बत्तीस प्रकार की **यक्षिणी, तारा** और **छिन्ना**—ये **दक्षिण कालिका** के भेद हैं।

वारुणी, वामनी, राक्षसी, रावणी, आग्नेयी, महामारी, घुर्घरी, सिंहवक्त्रा, भुजङ्गी गारुड़ी और **आसुरी**—ये **भद्रकाली** के भेद हैं।

भेद सहित **मातङ्गी, सिद्धकाली, धूमावती, आर्द्रपटी, नीला, नीलसरस्वती, धर्मटी, मर्कटी, उन्मुखी** तथा **हंसी**—ये **श्मशान काली** के भेद हैं।

महामाया, वैष्णवी, नारसिंही, वाराही, ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी आदि अष्टशक्तियाँ, भेदों सहित **धारा, गङ्गा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा** आदि समस्त नदियों के भेद—ये सब **महाकाली** के भेद हैं।

शूलिनी, जयदुर्गा, महिषमर्दिनी दुर्गा, शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी, सिद्धिदात्री, भ्रामरी शाकम्भरी, बन्धमोक्षणिका—ये सब **उग्रकाली** के भेद हैं।

श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, पद्मावती, अन्नपूर्णा, रक्तदन्तिका, बालात्रिपुरसुन्दरी षोडश नित्यायें, कालरात्रि, वशिनी, बगलामुखी—ये सब **वीरकाली** के भेद हैं। **अघोर कालिका** और **दक्षिणकालिका**—ये **चण्डकाली** के भेद हैं।

संहारकाली के **महामन्त्र** के **१२५ वर्ण** हैं। **मुण्डमाला तन्त्र** में इस महामन्त्र का सम्पूर्ण उद्धार, षडङ्गन्यास, ध्यानादि विस्तार सहित दिये गये हैं। **साधारण रूप से प्रत्येक मन्त्र का प्रयोग धर्म-अर्थ-काम-व मोक्ष के लिये प्रयोग होता है किन्तु इस महामन्त्र का प्रयोग विशेषरूप से शत्रु संहार के लिये ही किया जाता है।**

अपने इष्ट मन्त्र को जपने से पूर्व उस मन्त्र के **कुल्लुकादि** मन्त्रों का जप अत्यन्त ही आवश्यक है। इन मन्त्रों के जप के बिना **इष्ट मन्त्र का जप करना** सिद्धि का नाश एवं हानिप्रदायक है। **तन्त्रशास्त्र** में कहा गया है—

अज्ञात्वा कुल्लुकामेतां जपते योऽधमः प्रिये:।
पञ्चत्वमाशु लभते सिद्धिहानिश्च जायते।।

सम्पूर्ण दश महाविद्याओं के कुल्लुकादि मन्त्र पृथक्-पृथक् हैं। **आद्या (काली) महाविद्या** के कुल्लुकादि मन्त्र यहाँ पर दिये जा रहे हैं।

सर्वप्रथम **कुल्लुका** का तदुपरान्त **सेतु** का, इसके पश्चात् **महासेतु** का और इसके पश्चपात् **निर्वाण** का जप किया जाता है। इन सबके उपरान्त ही **इष्ट मन्त्र** का जप किया जाता है।

पञ्चाक्षरी कालिकायाः कुल्लुका परमेश्वरि!।
काली कूर्च वधूर्माया फडन्ता परिकीर्तिता।।

अर्थात् काली (**क्रीं**) कूर्च (**हूं**) वधू (**स्त्रीं**) माया (**ह्रीं**) फडन्ता (फट्) यह काली की **कुल्लुका का पञ्चाक्षरी** मन्त्र है। **मूलमन्त्र** से षडङ्गन्यास करके **सिर में बारह बार कुल्लुकामन्त्र** जपे। इसके पश्चात् **हृदय** में द्वादश बार **'सेतु' (ॐकार)** को जपना चाहिये। **सेतु** के विषय में कहा गया है—

विप्राणां प्रणवः सेतुः क्षत्रियाणां तथैव च।
वैश्यजातेः फडन्तः स्यात् माया शूद्रस्य कथ्यते।।

अर्थात् ब्राह्मण एवं क्षत्रियों का सेतु **प्रणव (ॐ)** है, वैश्यों का **फट्** और शूद्रों का **मायाबीज (ह्रीं)** है। इसके पश्चात् **कालिकायाः स्वबीजं तु** के अनुसार **क्रीं**। इस **महासेतु** का कण्ठस्थान में बारह बार जप किया जाता है। पुनः **मणिपूरक (नाभि)** में निर्वाण का जप होता है—

अथ वक्ष्यामि निर्वाणं शृणु देवि! वरानने!।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य मातृकाद्यं समुच्चरेत्।।
ततो मूलं समुच्चार्य ततो वाग्भवमुच्यरेत्।
मातृकां तु समस्तां तु पुनः प्रणवमुच्चरेत्।
एवं पुटितमूलं तु प्रजपेन् मणिपूरके।
एवं निर्वाणमीशानि! यो न जानाति पामरः।।
वर्षकोटिशतेनापि सिद्धिस्तस्य न काचन।

अर्थात् सर्वप्रथम **प्रणव (ॐ)** इसके पश्चात् **अकार** तदुपरान्त **मूलमन्त्र** इसके पश्चात् **वाग्भव बीज (ऐं)** और तत्पश्चात् **समस्त मातृका** और अन्त में **प्रणव (ॐ)** का उच्चारण करे। इस प्रकार **मूलमन्त्र** को सम्पुटित कर **मणिपूर चक्र** में जप करना चाहिये। यथा—

ॐ अं मूलं ऐं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं

गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं हं ळं क्षं ॐ।

क्लीं बीज को स्वाधिष्ठान में बारह बार जपकर ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं रां रीं रूं रैं रौं रः रमलवरयूं राकिनी मां रक्ष रक्ष मम सर्वधातून् रक्ष रक्ष सर्वसत्त्ववशङ्करि देवि! आगच्छागच्छ इमां पूजां गृह्ण गृह्ण ऐं घोरे देवि! घोरे देवि! ह्रीं सः परमघोरे, घोरस्वरूपे! एहि एहि नमश्चामुण्डे! डरलकसहैं श्री दक्षिणे कालिके देवि वरदे विद्ये!।

उक्त मन्त्र को सिर में **बारह बार** जप करना चाहिये। इसके पश्चात् **महाकुण्डलिनी** का ध्यान कर **स्वेष्ट मन्त्र** का जप करना योग्य है।

जिस प्रकार मन्त्र के लिये **संस्कार** आवश्यक है उसी प्रकार मन्त्र जप से पूर्व **कुल्लुकादि मन्त्रों** का जप नितान्त ही आवश्यक है।

तन्त्र-साधना में **सद्गुरु** का स्थान सर्वोपरि है। **सद्गुरु** के ज्ञान के आलोक में ही शिष्य साधना पथ पर आगे बढ़ता है। विना गुरु की कृपा से इस साधना पथ में तिल मात्र भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। इसलिये साधक को चाहिये कि वह **सद्गुरु** की कृपा अवश्य ही प्राप्त करें। **शास्त्र-ज्ञान साधक के लिये उतना आवश्यक नही है जितनी सद्गुरुदेव की कृपा**। शास्त्र ज्ञान साधक की उन्नति में किसी भी प्रकार से सहायक नहीं हो सकता है। इस लिये यदि साधक अपनी उन्नति चाहे तो वह गुरु की कृपा प्राप्त करे। शास्त्रों में वर्णित साधनायें गुरुमुख से प्राप्त होने पर ही फलदायी होती हैं। शास्त्रों से ली गयी साधनायें गुरु के अभाव में निष्फल ही सिद्ध होती हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ **काली तन्त्र**, **भगवती काली** की उपासना का एक प्रमुख एवं श्रेष्ठ ग्रन्थ है। तन्त्र-शास्त्र के अनेक संग्रह ग्रन्थों में इसका प्रमुखता के साथ उल्लेख मिलता है। **श्री विद्यार्णव, पुरश्चर्यार्णव, श्यामारहस्य, सर्वोल्लासतन्त्र, प्राणतोषणीतन्त्र, कौलावली निर्णय, ताराभक्ति सुधार्णव, मन्त्रमहार्णव** आदि ग्रन्थों में इस ग्रन्थ का प्रमुखता से वर्णन मिलता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का यह संस्करण एक प्राचीन वंग मातृका से तैयार किया गया है। जो प्रकाशक महोदय से प्राप्त हुई थी। इसके कुछ अंश अत्यन्त ही अव्यवस्थित रहे हैं। वर्तमान समय में इस ग्रन्थ का कोई प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद उपलब्ध नहीं है। जो हिन्दी अनुवाद के नाम पर ग्रन्थ उपलब्ध हैं, वे हिन्दी अनुवाद न होकर उसका सारांश मात्र हैं;

और वे भी भ्रमपूर्ण एवं अशुद्ध हैं। मैंने जहाँ तक हो सका है इसका संशोधन अत्यन्त सावधानी से किया है; फिर भी मानव स्वभाववश त्रुटि होना स्वाभाविक है।

प्रस्तुत ग्रन्थ को इस रूप में प्रकाशित करने का श्रेय **भारतीय विद्या संस्थान** के संचालक **श्री कुलदीप चन्द्र जी जैन** को है। ग्रन्थ सुन्दर रूप में प्रकाशित हुआ है इसके लिये श्री जैन को बधाई देता हूँ।

तन्त्रमार्ग के साधक इस ग्रन्थ में वर्णित साधनायें अपने गुरु के उपदेश को प्राप्त किये बिना न करें। यह उनके हित में ही होगा। शास्त्र केवल ज्ञान के लिये होता है। उसका वास्तविक एवं स्पष्ट मार्ग श्री गुरुदेव ही बता सकते हैं।

शुभाकांक्षी

अजय कुमार उत्तम

❖

विषयानुक्रमणिका

विषयः पृष्ठाः

पूर्वार्द्धम्

श्रीकालीतन्त्रम्

१. सपर्या विधिः १
२. पुरश्चरणविधिः १०
३. नैमित्तिक विधिः १२
४. काम्यविधिः १४
५. सिद्धविद्या विधिः १८
६. वीरसाधन विधिः २०
७. रहस्य पुरश्चरण विधिः २६
८. आचार विधिः ३१
९. विद्याफल विधिः ३५
१०. सिद्धविद्या विधिः ३९
११. सामान्य साधनम् ४३
१२. परम गुह्याचार ४७

उत्तरार्द्धम्

१. फेत्कारिणीतन्त्रोक्त श्रीदक्षिणकालिका साधनम् ५१
२. मेरुतन्त्रोक्त श्रीदक्षिण कालिका साधनम् ५८
३. श्रीकङ्कालमालिनी तन्त्रोक्त श्रीकाली विधानम् ६६
४. श्रीकाली प्रकरण ७६
५. श्री कालिकायाः गुह्यविधानम् ९१
६. अथ सामान्य पूजा पद्धतिः ९६

विषयः पृष्ठाः

७. अथ श्यामा प्रकरणम् १४०
८. नारदीय पुराणोक्त १७८

कालिका प्रकरणम्

९. श्री कालिका प्रकरणम् १८२
क. श्मशानकाली मन्त्रः १८२
ख. अथ सिद्धिलक्ष्मी मन्त्रः १८२
ग. अथ गुह्यकोली मन्त्रः १८५
घ. अथ श्री कामकलाकाली मन्त्रः १९४
१०. श्री कामाख्या काली प्रकरणम् २०१
११. श्री काली नित्या प्रकरणम् २१४
१. काली नित्या विवरणम् २१४
२. कपालिनी नित्या विवरणम् २१५
३. कुल्ला नित्यविवरणम् २१७
४. कुरूकुल्लानित्या वर्णनम् २१९
५. विरोधिनी नित्या विवरणम् २२१
६. विप्रचित्तानित्या विवरणम् २२३
७. उग्रानित्या विवरणम् २२५
८. उग्रप्रभानित्या विवरणम् २२६
९. दीप्तानित्या विवरणम् २२८
१०. नीलानित्या विवरणम् २३०
११. घनानित्या विवरणम् २३२
१२. बलाकानित्या विवरणम् २३४
१३. मात्रानित्या विवरणम् २३५

श्रीकालीतन्त्रम्

विषयः	पृष्ठाः
१४. मुद्रानित्या विवरणम्	२३६
१५. मितानित्या विवरणम्	२३८
१२. श्री जगन्मङ्गलम काल्याः कवचम्	२४२
१३. श्री श्री कर्पूरादिस्तोत्रम्	२४७
१४. श्री दक्षिणकालिकायाः त्रैलोक्यमोहन कवचम्	२६७
१५. महाकौतूहल हृदय स्तोत्रम्	२७५
१६. श्रीकालीशतनाम स्तोत्रम्	२८०
१७. श्रीकाली कवचम्	२८३
१८. श्री दक्षिणकाल्याः क्रमस्तवः	२८९
१९. श्री कालिकास्तवेन्द्रम्	२९५
२०. श्रीविद्यार्णवतन्त्रोक्त श्रीकाली प्रकरणम्	२९८

❖

श्रीकालीतन्त्रम्

'पद्मा' हिन्दीव्याख्यासहितम्

प्रथमः पटलः

सपर्या विधिः

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम् ।
उवाच पार्वती देवी भैरवं परमेश्वरम् ।।१।।

पद्मा—कैलास पर्वत के शिखर पर बैठ हुए देवताओं के भी देवता जगद्गुरु परमेश्वर श्री भैरव (शिव) से भगवती पार्वती ने पूछा ॥१॥

श्री पार्वत्युवाच

देवदेव! महादेव! सृष्टिस्थित्यन्तकारकः ।
किं तद् ब्रह्ममयं धामं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।।२।।

कालिकायां महाविद्यां समस्तभेदसंयुतां ।
सपर्य्याभेदसहितां चतुर्वर्गफलप्रदा ।।३।।

पद्मा—हे देवदेव ! हे महादेव ! आप सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय को करने वाले हैं । मै ब्रह्मस्वरूपा, चतुवर्ग (धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष) प्रदान करने वाली काली महाविद्या के सभी भेद सहित उनकी पूजा एवं मन्त्र को सुनना चाहती हूँ ॥२-३॥

श्रीभैरव उवाच

महाविद्या महामायां महायोगीश्वरीं परां ।
सर्वविद्या महाराज्ञीं सर्वसारस्वतप्रदां ।।४।।

कामत्रयं वह्निसंस्थं रतिविन्दुविभूषितम् ।
कूर्चयुग्मं तथा लज्जायुगलं तदनन्तरं ।।५।।

दक्षिणे कालिके चेति पूर्ववीजानि चोद्धरेत् ।
अन्ते वह्निवधूं दद्यात् विद्याराज्ञी प्रकीर्तिता ।।६।।

पद्मा—श्रीभैरव ने कहा-महाविद्या, महामाया, महायोगीश्वरी, परब्रह्मस्वरूपा, सर्वविद्या, महाराज्ञी और समस्त विद्याओं को देने वाली हैं । इनके मन्त्र को कहता हूँ सुनो । सर्वप्रथम कामत्रय से रेफ (र) दीर्घ ई तथा रतिबिन्दु का संयोग करने तीन **(क्रीं क्रीं क्रीं)**

बीज बनते हैं। इसके उपरान्त दो कूर्च बीच **हूँ हूँ** तत्पश्चात् दो लज्जाबीज **ह्रीं ह्रीं** फिर **दक्षिणे कालिके** इसके पश्चात् क्रमशः पूर्वोक्त सातों बीज **(क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं)** और अन्त में **स्वाहा** का योग करने से भगवती काली का बाईस अक्षर का मन्त्र बनता है। इस मन्त्र को **विद्याराज्ञी मन्त्र** कहते हैं ॥४-६॥

विमर्श—मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होगा–**क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।**

नात्रसिद्धयादपेक्षाऽस्ति न वा मित्रारि लक्षणं।
न वा प्रयास बाहुल्यं न कायक्लेश सम्भवः॥७॥

पद्मा—इस विद्याराज्ञी मन्त्र के लिए सिद्ध, साध्य, मित्र, शत्रु आदि चक्रों के विचार की आवश्यकता नहीं है, और न ही इसमे अत्यधिक प्रयास करने की आवश्यकता है और न ही शरीर को कष्ट देने की आवश्यकता है। इस विद्याराज्ञी मन्त्र के स्मरण मात्र से ही मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है ॥७॥

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तः उष्णिक् छन्द उदाहृतम्।
देवता कालिका प्रोक्ता लज्जाबीजं तु बीजकम्॥८॥
शक्तिस्तु कूर्चबीजं स्यादनिरुद्धसरस्वती।
कवित्वार्थे नियोगः स्यादेवम् ऋष्यादिकल्पना॥९॥

पद्मा—इस मन्त्र के ऋषि भैरव हैं, छन्द उष्णिक् है, देवता कालिका हैं ह्रीं बीज है, शक्ति हूँ बीज है, अनिरुद्ध सरस्वती नाम की विद्या है कवित्व शक्ति प्राप्त करने के लिए इसका विनियोग है। इस प्रकार इसमें ऋष्यादि की कल्पना करे।

विमर्शः क्रीं इसका कीलक है।

अङ्गन्यास करन्यासौ यथावदभिधीयते।
षड्दीर्घभाजा बीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत्॥१०॥
हृदयाय नमः प्रोक्तं शिरसे वह्निवल्लभा।
शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमीरितम्॥११॥
नेत्रत्रयाय वौषट् स्यादस्त्राय फडितिक्रमः।

पद्मा—अब जिस प्रकार से अंगन्यास एवं करन्यास किया जाता है उसे कहते हैं। षड्दीर्घ बीजों से न्यास करे और आदि में प्रणव (ॐ) योजित करे। **क्रां, क्रीं, क्रूं, क्रैं, क्रौं, कः** इन छः दीर्घ बीजों से क्रमपूर्वक हृदयाय नमः शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय हुम्, नेत्रत्रयाय वौषट् और अस्त्राय फट् जोड़ कर करन्यास करे ॥१०-११ १/२॥

विमर्शः ॐ क्रां हृदयाय नमः। ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ क्रूं शिखायै वषट्। क्रैं कवचाय हुँ। ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ क्रः अस्त्राय फट् इति यह अंगन्यास हुआ। इसके पश्चात् इस प्रकार करन्यास करे—ॐ क्रूं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ क्रीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ क्रूं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ क्रैं अनामिकाभ्यां नमः। ॐ क्रौं कनिष्ठिभ्यां नमः। ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

एवं यथाविधिं कृत्वा वर्णन्यासं समाचरेत्।।१२।।
वर्णन्यासं प्रवक्ष्यामि येन देवीमयो भवेत्।
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ वै हृदयं स्पृशेत्।।१३।।
ए ऐ ओ औ ततोऽप्यं अः क ख ग घ पुनस्ततः।
उक्त्वा च दक्षिणं भुजं स्पृशेत साधकसत्तमः।।१४।।
ङ च छ ज समुच्चर्य झ ञ ट ठ ड ढं तथा।
इति वामभुजे न्यस्य ण त थ द पुनः स्मरेत्।।१५।।
ध न प फ ब भ इति दक्षिणजंघके न्यसेत्।
म य र ल व श ष स ह ळ क्ष वामजंघके।।१६।।
इति वर्णान् प्रविन्यस्य मूलविद्यां समुच्चरन्।
सप्तधा व्यापकं कुर्याद् येन देवीमयो भवेत्।।१७।।

व्यापकत्वेन संन्यस्य ततो ध्यायेत् परां शिवाम्।।१७ १/२।।

पद्मा—इसके पश्चात् अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ का उच्चारण कर हृदय को स्पर्श करे। इसके पश्चात् श्रेष्ठ साधक ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ का उच्चारण कर अपनी दाहिनी भुजा को स्पर्श करे। ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ को उच्चरित कर बायीं भुजा को स्पर्श करे। इसके उपरान्त ण त थ द ध न प फ ब भ का उच्चारण कर दाहिनी जंघा को स्पर्श करे और म य र ल व श ष स ह ळ क्ष का उच्चारण कर वाम जंघा का स्पर्श करे। इन वर्णों का देह में न्यास करने के उपरान्त पीछे कहे गये २२ अक्षरों के मूलमन्त्र का उच्चारण करके सात बार व्यापकम् न्यास करे जिससे कि साधक स्वयं देवीमय हो जाए। व्यापक न्यास करने के पश्चात् परा शिवा का ध्यान करे॥१२-१७-१/२॥

पीठन्यासं ततः कुर्याद् येन देवीमयो भवेत्।।१८।।
हृत्सरोजे सुधासिन्धुमध्ये द्वीपं सुवर्णनम्।
परितः पारिजाताश्च मध्ये कल्पतरूँ ततः।।१९।।

तन्मूले हेमनिर्माणं द्वाश्चतुष्टयभूषितम् ।
मण्डपं मन्दवातेन पराक्रान्तं सुधूपितं ।।२०।।
मन्त्रं तन्त्रं प्रतिष्ठाप्य तत्र पूजां समाचरेत् ।
श्मशानं तत्र सम्पूज्य तत्र कल्पद्रुमं यजेत् ।।२१।।

पद्मा—इसके पश्चात् साधक पीठन्यास करके स्वयं देवीमय हो जाये। इसकी विधि इस प्रकार है–साधक अपने हृदय कमल में अमृत के समुद्र की कल्पना करे। उसके मध्य मे स्वर्णद्वीप और उस स्वर्णद्वीप मे चारों ओर पारिजात के वृक्ष और उनके मध्य में एक कल्पवृक्ष है तथा उसके मूल में सुवर्ण से निर्मित चार द्वारों वाले मण्डप में जिसमें कि मन्द मन्द वायु के कारण धूप की सुगन्ध उठ रही है मन्त्र तन्त्र से प्रतिष्ठा कर पूजन करे। इसके पश्चात् वहाँ पर श्मशान का पूजन कर कल्पवृक्ष्ज्ञ की भी पूजा करे ॥१८-२१॥

तन्मूले मणिपीठञ्च नानामणि विभूषितम् ।
नानालङ्कारभूषणाढ्यं मुनिदेवैश्च भूषितम् ।।२२।।
शिवाभिर्बहुमांसास्थि मोदमानाभिरन्ततः ।
चतुर्दिक्षु शवमुण्डाश्चिताङ्गारास्थिभूषिताः ।।२३।।
इच्छाज्ञानाक्रिया चैव कामिनी कामदायिनी ।
रतिः रतिप्रिया नन्दा मध्ये चैव मनोन्मनी ।।२४।।
हसौः सदाशिवेत्युक्त्वा महाप्रेतेति तत्परं ।
पद्मासनाय हृदयं पीठन्यास उदाहृतः ।।२५।।
एवं देहमये पीठे चिन्तयेदिष्ट देवतां ।
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि स्मरणाच्छिवतां व्रजेत् ।।२६।।

पद्मा—उस कल्पवृक्ष के मूल में अनेक प्रकार के रत्नों से युक्त एक मणिमय पीठ है। वहाँ पर अनेक अलंकारो से विभूषित मुनियों, देवताओं तथा मांस एव हड्डी का सेवन करने वाली आनन्दमग्न शिवाओं (सियारिनों) के सहित चारों दिशाओं में बिखरे हुए शव, मुण्ड, चिता के अंगारों इत्यादि विभूषित **(१) इच्छा (२) ज्ञान (३) क्रिया (४) कामिनी (५) कामदायिनी (६) रति (७) रतिप्रिया तथा (८) नन्दा** इन आठ शक्तियों के मध्य मनोन्मनी शक्ति के विराजमान होने की साधक कल्पना करे। तदुपरान्त देवता का चिन्तन करे सदाशिव रूपी महाप्रेत जो कि हसौः स्वरूप है के ऊपर स्थित देवी काली का अपने हृदय कमलरूपी पीठ में ध्यान करे। इस प्रकार देहमय पीठ में इष्ट देवता का चिन्तन करे जिनके उस ध्यान का स्मरण करने पर शिवरूपता प्राप्त होती है ॥२२-२६॥

।। ध्यानम् ।।

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजां।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम् ।।२७।।
सद्यश्छिन्नशिरः खड्ग वामाधोर्ध्वःकराम्बुजाम्।
अभयं वरदं चैव दक्षिणोर्ध्वाधपाणिकाम् ।।२८।।
महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बरीम्।
कण्ठावसक्तमुण्डालीं गलद्रुधिरचर्चिताम् ।।२९।।
कर्णावतंसतां - नीतशवयुग्मभयानकाम्।
घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम् ।।३०।।
शवानां करसंघानैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्।
सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननां ।।३१।।
घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्।
बालार्कमण्डलाकार - लोचनत्रितयान्वितां ।।३२।।
दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयां।
शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थितां ।।३३।।
महाकालेन च समं विपरीत रतातुरां।
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्वितां ।।३४।।
सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरूहाम्।
योगिनीचक्रसहितां कालिकां भावयेत् सदा।
एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं सर्वकामार्थसिद्धये ।।३५।।

पद्मा—भगवती काली भयानक मुखवाली, भीषण, बिखरे हुए केशों वाली तथा चतुर्भुजा है। यह दक्षिण काली नाम वाली देवी दिव्यरूप वाली एवं मुण्डमाला से विभूषित हैं। इनकी दोनो बायीं भुजाओं में नीचे की भुजा मे कटा हुआ एक नरमुण्ड है, ऊपर की बायीं भुजा में रक्त से सनी खड्ग है। दाहिनी भुजा के नीचे के हाथ में अभयमुद्रा एवं ऊपर के हाथ में वरद मुद्रा दिखाई दे रही है। भगवती काली काले रंग के मेघ के समान श्यामवर्णा है तथा दिगम्बरी हैं। कण्ठ में नरमुण्डों की माला है जिससे रूधिर बह रहा है। दोनों कानो में नर शिशुओं के भयानक शव आभूषण के रूप में धारण किये हुए हैं। उनकी भीषण दन्त पंक्ति भयानक है। उनके स्तन मांसल एवं उन्नत हैं। वे करधनी के रूप में कटे हुए हाथों को एक दूसरे मे पिरोकर बाँधे हुए हैं। भगवती के मुख पर कुछ हास्य है। होंठो के दोनो किनारे कुछ रक्त पीछे से जो शेष रह गया है वह मुख के

खुले होने से दिखाई दे रहा है। उनका स्वर महाभयानक है। वे श्मशान में निवास करने वाली देवी अत्यन्त ही रौद्ररूपा हैं। भगवती के तीनो नेत्र बाल सूर्य की भाँति तेजस्वी हैं। उनके दाँत बड़े बड़े हैं। दक्षिण की ओर उनके खुले केश अधिक दिखाई दे रहे हैं। वे शवरूप महादेव के ऊपर स्थित हैं। वे महाकाल के साथ विपरीत रति के लिए आतुर हो रही हैं। उनके चारों ओर भयंकर स्वर करने वाली शिवायें (सियारिनें) विचरण कर रहो हैं। सुख की प्रसन्नता जिनके मुख में दिखाई दे रही है जिनका नील कमल के समान मुख कुछ हास्य कर रहा है। अपने भक्तों को अभय देने वाली भगवती महाकाली ६४ चौंसठ योनियों से सेवित हैं। इस प्रकार श्मशान मे निवास करने वाली भगवती काली का सभी कामनाओं की पूर्ति के लिए चिन्तन करे ॥२७-३५॥

।। अर्चन विधिः ।।

अथार्चनविधिं वक्ष्ये देव्या सर्वसमृद्धिदं।
येनानुष्ठितमात्रेण स्वयं भैरव रूपवान्।।३६।।
येनानुष्ठित मात्रेण भवाब्धौ न निमज्जति।

पद्मा—अब देवी की अर्चन विधि कही जा रही है। इसके अनुष्ठान करने से सभी प्रकार की समृद्धि प्राप्त होती है और साधक भैरव के समान हो जाता है तथा भवसागर मे नही डूबता है ॥३६-३७.१/२॥

अनेकहेमरत्नादिमाणिक्यरससिद्धिदं ।।३७।।
इन्द्रादि सुरवृन्दानां साधनैकफलप्रदं।
विपक्षकुल-संहार-कारणं पौरुषंप्रदं।।३८।।
शान्तिकं पौष्टिकञ्चैव वशीकरणमुत्तमं।
मारणोच्छेदजनकमाकृष्टिकरमुत्तमम् ।।३९।।
समस्तशोकशमनमानन्दाब्धौ निमज्जनं।
चतुःसमुद्रपर्यन्तां मेदिनीं साधकोत्तमम्।।४०।।
स्त्रीरत्नकुलसन्दापि पुत्रपौत्रविवर्धनम्।

पद्मा—भगवती महाकाली का पूजा अनुष्ठान अनेक प्रकार के रत्न स्वर्ण, माणिक्य और रस की सिद्धि देने वाला इन्द्रादि सुरगणों (देवताओं) का भी सिद्धि प्रदान करने वाला, विपक्षियों और शत्रुओं के कुलों का विनाश करने वाला, पुरुषार्थप्रद, शान्ति पौष्टिक एवं वशीकरण कर्मों की सिद्धि करने वाला, मारण, उच्छेदन एवं उत्तम आकर्षण करने वाला सभी प्रकार के शोक का शमन कर आनन्द सागर में डुबोने वाला, साधक को चारों समुद्र तक पृथ्वी, स्त्री, रत्न, एवं पुत्रपौत्र आदि की वृद्धि करने वाला है ॥३७-४०.१/२॥

आदौ यन्त्रं प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमरतां व्रजेत् ।।४१।।
आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्बहिर्न्यसेन् ।
ततो वै विलिखेमन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम् ।।४२।।
वृत्तं बिलिख्य विधिवल्लिखेत् पद्मम् सुलक्षणम् ।
ततो वृत्तं विलिख्यैव लिखेद् भूपुरमेककं ।।४३।।
चतुरस्त्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् ।

पद्मा—सर्वप्रथम यन्त्र का वर्णन करता हूँ जिसके जानने मात्र से अमरता प्राप्त होती है। सर्वप्रथम एक अधोमुख त्रिकोण का निर्माण करे। इसके बाहर इसी प्रकार के चार त्रिकोण और बनाये। इस प्रकार पाँच त्रिकोण बनते हैं। यह सभी समबाहु आकार के त्रिभुज बनते हैं। इन त्रिभुजों को मध्य में कर इनके बाहर एक वृत्त का निर्माण करें। वृत्त के बाहर अष्टदल कमल का निर्माण करें। अष्टदल कमल के बाहर एक वृत्त का निर्माण करें। वृत्त के बाहर चार द्वारों से युक्त चतुरस्त्र भूपुर का निर्माण करें। प्रथम त्रिकोण के ठीक मध्य में एक बिन्दु तथा **क्रीं क्रीं** इन दो बीजों को लिखें ॥४१-४३.१/२॥

पीठपूजां ततः कृत्वा स्ववामेऽर्घ्यं न्यसेत् प्रिये !।।४४।।
मूलविद्यां षडङ्गेन मूलमन्त्रेण चार्चयेत् ।
ततो हृदयपद्मान्तेः स्फुरन्तीं परमां कलां ।।४५।।
यन्त्रमध्ये समावाह्य न्यासजालं प्रविन्यसेत् ।
ततो ध्यात्वा महादेवीमुपचारान् प्रकल्पयेत् ।।४६।।
नमस्कृत्य महादेवीं ततः आवरणं यजेत् ।

पद्मा—हे प्रिये ! पीठपूजा कर अपनी बायीं ओर अर्घ्य स्थापित करे। मूल विद्या से षडङ्गन्यास तथा मूलमन्त्र से पूजन करे। तदुपरान्त अपने हृदय कमल में स्थित परमा कला रूपी भगवती का यन्त्र के मध्य में आवाहन कर पहले कही गयी विधि से सभी प्रकार के न्यास करे। इसके बाद ध्यान कर भगवती को उपचारों से पूजा करे। महादेवी को प्रणाम कर आवरण पूजन करे ॥४४-४६.१/२॥

कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीं ।।४७।।
विप्रचित्तां तु सम्पूज्य बहिः षट्कोणके ततः ।
उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां तथा मध्ये त्रिकोणके ।।४८।।
नीलां घनां बलाकाञ्च तथैवान्य त्रिकोणके ।
मात्रां मुद्रां मिताञ्चैव तथैवान्त स्त्रिकोणके ।।४९।।
सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमाला विभूषिताः ।
तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यः शुचिस्मिताः ।।५०।।

पद्मा—यन्त्र के पाँच त्रिकोण के पन्द्रह कोणों मे वामावर्त क्रम से *१ **काली** **२ कपालिनी ३ कुल्ला ४ कुरुकुल्ला ५ विरोधिनी ६ विप्रचित्ता ७ उग्रा ८ उग्रप्रभा ९ दीप्ता १० नीला ११ घना १२ बलाका १३ मात्रा १४ मुद्रा १५ मिता** इन पन्द्रह देवियों का पूजन करे। यह सभी देवियां श्यामवर्णा, दाहिने हाथ में असि तथा बायें हाथ में षष्टि धारण करती है। गले में मुण्डमाला धारण करती हैं तथा पवित्र मुस्कान वाली हैं ॥४७.१/२-५०॥

ततो वै मातरः पूज्या ब्राह्मी नारायणी तथा।
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता॥५१॥
वाराही च तथा पूज्या नारसिंही तथैव च।
अनुलेपनकं गन्धो धूपदीपो तथैव च॥५२॥
त्रिस्त्रिः पूजा प्रकर्त्तव्या सर्वासामपि साधकैः।
गुरुपंक्ति षडङ्गश्च दिक्पालांश्च ततोऽर्चयेत्॥५३॥
एवं पूजां पुरा कृत्वा मूलेनैव यथाविधि।
नैवेद्यादीन् यथाशक्त्या दद्याद् देव्यै पुनः पुनः॥५४॥
ततो वै दशवारांस्तु दीपं दद्यात्तु साधकः।
पुष्पादिकं पुनर्दद्यात् मूलेनैव यथाविधि॥५५॥

पद्मा—साधक इसके पश्चात् आठ मातृकाओ **ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, वाराही तथा नारसिंही** का पूजन करे। प्रत्येक देवी को तीन तीन बार चन्दन का लेप, गन्ध, धूप एवं दीप प्रदान करे। गुरुपंक्ति, षडङ्गपूजा (गन्ध, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य व नमस्कार) एवं इन्द्रादि दश दिशापतियों का अर्चन करे। इस प्रकार पूजन करने के पश्चात् विधिपूर्वक मूलदेवता भवगती महाकाली को यथाशक्ति नैवेद्यादि पुनः पुनः प्रदान करे। इसके पश्चात् साधक देवी को दश बार दीपक दिखाये तथा विधि के अनुसार मूल मन्त्र से पुष्पादि समर्पित करे ॥५१-५५॥

ततः सावहितो मन्त्री गुरुं नत्वा शिरः स्थितम्।
देवीं ध्यात्वा चाष्टोत्तरसहस्रं प्रजपेन्मनुं॥५६॥
तेजोमयं जपफलं देव्या हस्ते समर्पयेत्।
गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वमिति मन्त्रेण मन्त्रवित्॥५७॥
ततः शिरसि वै पुष्पं दत्त्वाष्टाङ्ग प्रणम्य च।
विसृज्य परमा भक्त्या संहारेणैव भक्तितः॥५८॥
उद्वास्य हृदये देवीं तन्मयो भवति ध्रुवम्।
पुरश्चरण कालेऽपि पूजा चैषा प्रकीर्तिता॥५९॥

इति श्रीकालीतन्त्रे सपर्याविधिः नाम प्रथमः पटलः॥१॥

---

* विस्तृत विवरण श्री क़ाली नित्या प्रकरण में देखें।

पद्मा—मन्त्रसाधक एकाग्र चित्त होकर सहस्त्रारदल कमल मे स्थित श्रीगुरुदेव को प्रणाम करे तथा देवी का ध्यान करके १००८ बार मूलमन्त्र का जप करे। जप के अन्त में तेजोमय जप के फल को देवी के बायें हाथ में समर्पित करे दे। इसके पश्चात्

गुह्याति गुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि! त्वत्प्रसादान्महेश्वरि !!।

इस मन्त्र के द्वारा जप निवेदन कर सिर पर पुष्प चढ़ा कर अष्टांग प्रणाम करे और संहार मुद्रा के द्वारा विसर्जन कर देवी को साधक अपने हृदय में स्थापित करे। पुरश्चरण के समय इसी प्रकार की पूजा विधि कही गयी है ॥५६-५९॥

इस प्रकार सिद्धाश्रमस्थ परमहंस स्वामी श्रीनिखिलेश्वरानन्द जी के शिष्य अजय कुमार उत्तम द्वारा श्रीकाली तन्त्र के सपर्याविधि नामक प्रथम पटल की **पद्मा** हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥१॥

अथ द्वितीयः पटलः

।। पुरश्चरण विधिः ।।

।। भैरव उवाच ।।

साधनं सिद्धिमन्त्रस्य वक्ष्यामि परमाद्भुतम् ।
भाग्यहीनोऽपि मूर्खोऽपि यद्बोधाद्मरो भवेत् ।।१।।
साधयेत् सकलान् कामान् सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
आदौ पुरस्क्रियां कुर्यान्नियमेन यथाविधिः ।।२।।
लक्षमेकं जपेद् विद्यां हविष्याशी दिवा शुचिः ।
रात्रौ ताम्बूल पूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः ।।३।।

पद्मा—श्री भैरव ने कहा–अब मै सिद्धिमन्त्र के अत्यन्त ही आश्चर्यकर साधन को कहता हूँ। भाग्य-हीन और मूर्ख भी इस साधन के ज्ञान से अमर हो जाता है। इससे समस्त कामनाएं पूर्ण होकर साधक सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। सर्वप्रथम नियम एवं विधिपूर्वक पुरश्चरण की क्रिया करे। साधक दिन में पवित्र होकर तथा रात्रि में मुख मे ताम्बूल को रखकर शय्या में बैठकर जप करे। इस विद्या के मन्त्र को एक लाख की संख्या में जप करना है ॥१-३॥

नानाचारो न कर्तव्यो न चारणमितस्ततः ।
भूतहिंसा न कर्तव्या पशुहिंसा विशेषतः ।।४।।
बलिदान विना देव्या हिंसां सर्वत्र वर्जयेत् ।
अन्य मन्त्र पुरस्कारं निन्दां चैव विवर्जयेत् ।।५।।
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगार्हो न चान्यथा ।
जीवहीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः ।।६।।
पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः ।
तस्मादादौ पुरश्चर्यां कृत्वा साधकसत्तमः ।।७।।
प्रयोगं च ततः कुर्यात् सर्वं साधक दुर्लभम् ।।८।।

इति श्री कालीतन्त्रे पुरश्चरणविधिः नाम द्वितीयः पटलः।।२।।

पद्मा—मन्त्र के पुरश्चरण मे साधक अनेक आचार का आचरण न करे।

पश्वाचार, वीराचार अथवा दिव्याचार में किसी एक का आश्रय ले। प्राणियों की हिंसा न करे विशेषकर पशुओं की देवी के बलिदान प्रदान करने के अतिरिक्त सभी प्रकार की हिंसा वर्जित है। अन्य मन्त्र की प्रशंसा और निन्दा भी वर्जित है। इस विधि से ही मन्त्र सिद्ध होता है अन्य से नही। जिस प्रकार प्राणहीन होने पर देह से किसी प्रकार का कार्य नही हो सकता उसी प्रकार विना पुरश्चरण के मन्त्र की सिद्धि नही होती है। इसलिए श्रेष्ठ साधक सर्वप्रथम मन्त्र का पुरश्चरण करे इसके पश्चात् भी भगवती कालिका का दुर्लभ अनुष्ठान करे ॥४-८॥

विमर्श—इस पटल में पुरश्चरण की विधि अत्यन्त ही संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत हुई है। पूर्ण विवरण ग्रन्थ के उत्तरखण्ड में देखें।

इस प्रकार सिद्धाश्रमस्थ परमहंस स्वामी श्री निखिलेश्वरानन्द जी के शिष्य अजय कुमार उत्तम द्वारा श्रीकाली तन्त्र के पुश्चरण विधि नामक द्वितीय पटल की **पद्मा** हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥२॥

अथ तृतीयः पटलः

।। नैमित्तिक विधिः ।।

।। भैरव उवाच ।।

ततः होमविधिं वक्ष्ये सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
लतापुष्पान्वितं कुर्यात् पर्णानां शतकं सुधीः ।।१।।
तानि सम्मन्त्र्य विधिवदसकृत् साधकोत्तमः ।
ततो वै होमयेत्तानि संस्कृतेऽग्नौ यथाविधि ।।२।।
युगानामयुतं तेन पूजनं जायते शिवे ।
अनेन क्रमयोगेन यश्चरेद् भुविः साधकः ।।३।।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
धीरो भवति वाग्मी च सर्वसिद्धिमुपालभेत् ।।४।।

पद्मा—श्री भैरव ने कहा-अब मैं सभी सिद्धियों को देने वाली होमविधि को कहता हूँ। लता अर्थात् चमेली के पुष्प के साथ बुद्धिमान साधक एक सौ बिल्वपत्रों को काली के मन्त्र से अभिमन्त्रित कर संस्कृत अग्नि मे हवन करे। हे शिवे ! इस प्रकार करने से चालीस हजार की संख्या से जप हो जाता है। इस प्रकार के क्रम से करने पर पृथ्वी लोक के साधक को तीनो लोक में कुछ भी दुर्लभ नही रहता है। वह धीर, वाक्शक्तियुक्त तथा समस्त सिद्धियों का अधिकारी बन जाता है ॥१-४॥

हुनेदाज्येन भक्तेन मांसेन रुधिरेण च ।
कृष्णपुष्पेण साज्येन सरक्तेन विशेषतः ।।५।।
आमिषादिभिरप्येवं श्मशाने जुहुयात् सुधीः ।
महाकालं हुनेद् यत्नात् पश्चात् देवीं विशेषतः ।।६।।
त्रिधा विभज्य विद्या वै साधकः सुचिमानसः ।
मोसं रक्तं त्वचं केशं नखं भक्तञ्च पायसम् ।।७।।
मांसं चैव विशेषेण जुहुयात् सर्वसिद्धये ।
एवं कृते तु सर्वत्र लभते सिद्धिमुत्तमां ।।८।।
यत् यत् कामयते कामी तत्तदाप्नोति निश्चितम् ।
देववन्मानवो भूत्वा भुनक्ति बहुलं सुखम् ।।९।।

पद्मा—हवन में भात (पका चावल) मांस, रक्त और घी का प्रयोग करे। काले

रंग के पुष्प को घी और रक्त में मिश्रित कर विशेष रूप से हवन करे। बुद्धिमान साधक मांस का भी श्मशान मे हवन करे। सर्वप्रथम महाकाल के लिए प्रयत्नपूर्वक हवन करे। इसके उपरान्त महाकाली के लिए हवन करे। साधक शुद्ध मन से विद्या (मन्त्र) को तीन भागों में विभक्त कर सर्वसिद्धि के लिए मांस, रक्त त्वचा, केश, नख, भात, खीर से हवन करे। सभी प्रकार सिद्धियों की प्राप्ति के लिए मांस का विशेष रूप से हवन करे। ऐसा करने पर सभी प्रकार की सिद्धियों की प्राप्त होती है। साधक देवता की भाँति बहुत सुख का भोग करता है ॥५-९॥

तर्पणस्य विधिं वक्ष्ये येन कार्याणि साधयेत्।
तर्पयेच्च पयोभिश्च रक्तधारायुतैस्तथा ॥१०॥
मज्जाभिश्च तथा तद्वत् स्वकीयेन परेण च।
आकर्षितायाः कन्यायाः कुलप्रक्षालनने च ॥११॥
मेष माहिष रक्तेन नररक्तेन चैव हि।
मूषमार्जाररक्तेन तर्पयेद् देवतां परां ॥१२॥
एवं तर्पणमात्रेण साक्षात्सिद्धीश्वरो भवेत्।
कविता जायते तस्य द्राक्षारसं परम्परा ॥१३॥
बृहस्पतिसमो भूत्वा देववद्भुवि मोदते।
न तस्य पापपुण्यानि जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥१४॥

इति श्रीकालीतन्त्रे नैमित्तिक विधिः नाम तृतीयः पटलः ।

पद्मा—अब तर्पण की विधि कहता हूँ जिससे कार्य की सिद्धि होती है। दुग्ध तथा रक्त की धारा, अपना अथवा अन्य का वीर्य, आकर्षण से सिद्ध नवयुवती के रज से हवन करे। मेष, भैंसा, मनुष्य का रक्त, चूहा एवं बिल्ली के रक्त से देवता को उत्तम ढंग से तृप्त करे। इस प्रकार तर्पण करने मात्र से साधक सिद्धियों का स्वामी होता है। उसकी कविता अंगूर के रस की भाँति तृप्ति कारक एवं मधुर होती है। वह बृहस्पति के समान पृथ्वी पर विचरण करता है। उसको पाप पुण्य व्याप्त नही होते हैं और वह निश्चित रूप से जीवन्मुक्त हो जाता है ॥१०-१४॥

इस प्रकार सिद्धाश्रमस्थ परमहंस स्वामी श्री निखिलेश्वरानन्द जी के शिष्य अजय कुमार उत्तम द्वारा श्री कालीतन्त्र के नैमित्तिक विधि नामक तृतीय पटल की **पद्मा** हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥३॥

अथ चतुर्थः पटलः

काम्यविधिः

।। भैरवा उवाच ।।

अथ काम्यविधिं वक्ष्ये येन सर्वत्र सर्वगः ।
साधकः साधयेत् सिद्धिं देवानामपि दुर्लभाम् ।।१।।
कुलागारं पुष्पिताया दृष्ट्वा यो जपते नरः ।
अयुतैकप्रमाणेन साधकः स्थिरमानसः ।।२।।
केवलं गुप्तभावेन स तु विद्यानिधिर्भवेत् ।
संस्कृताः प्राकृताः शब्दाः लौकिकाः वैदिकास्तथा ।।३।।
वशमायान्ति ते सर्वे साधकस्य च नान्यथा ।
अथवा मुक्तकेशश्च हविष्याशी सुसंयत् ।।४।।
प्रजपेदयुतं प्राज्ञः एतदेव फलं लभेत् ।

पद्मा—श्रीभैरव ने कहा–अब मैं काम्यविधि का वर्णन करता हूँ जिससे साधक सर्वत्र सर्वव्यापी हो जाता है। यह विधि देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। साधक इससे अनेक सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। नवयौवना रजस्वला युवती की योनि को एकाग्रचित्त से देखते हुए केवल गुप्तभाव से दश हजार मन्त्र का जप करता है वह विद्यानिधि हो जाता है। संस्कृत, प्राकृत, वैदिक तथा लौकिक सभी भाषाओं के शब्द साधक के वशवर्ती हो जाते है इससे संशय नही है। अथवा खुले केश वाला साधक हविष्यान्न का भोजन करते हुए संयमी होकर जप करता है तो वह भी ऐसा ही फल प्राप्त करता है। जप के समय मन्त्र का जप दश हजार की संख्या में करे ॥१-४.१/२॥

नग्नां परलतां पश्यन्नयुतं यस्तु साधकः ।।५।।
प्रजपेत् स भवेद् सद्यो विद्याया वल्लभः स्वयम् ।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनः कुण्ठताम् गताः ।।६।।
गद्यपद्यमयी वाणी तस्य वक्त्रात प्रवर्तते ।
तत्पदे सुधियः सर्वे प्रणमन्ति मुदान्विताः ।।७।।
तस्य वाक्य परिचयाज्जड़ा भवन्ति वाग्मिनः ।
अथवा मुक्तकेशश्च हविष्यं भक्षयेन्नरः ।।८।।
प्रजपेदयुतं तस्य एष प्रतिनिधिः स्मृतः ।

पद्मा—परपुरुष की यौवनवान नंगी स्त्री को अपने समीप बैठाकर उसको देखते हुए जो साधक मन्त्र का दश हजार की संख्या में जप करता है वह उसी समय सभी

विद्याओं का अधिपति हो जाता है। उसके दर्शन मात्र से ही शास्त्रार्थी कुण्ठित हो जाते हैं। उसके मुख से गद्यपद्यमयी वाणी निकलने लगती है। उसके द्वारा प्रयोग किये गये पदों का विद्वान भी आदर करते हैं। उसके वाक्य के परिचय मात्र से ही मूर्ख गण भी वक्ता हो जाता हैं। अथवा अपने केशों को बिखेर कर हविष्यान्न का भक्षण करते हुए मन्त्र का दश हजार जप करने से भी उपर्युक्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥५-८.१/२॥

धनकामस्तु यो विद्वान् महदैश्वर्य कामुकः ।।९।।
बृहस्पतिसमो यस्तु भवितुं कामयेन्नरः।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा कुलमामन्त्र्य मन्त्रवित् ।।१०।।
मैथुनं यः करोत्येष स तु सर्वफलं लभेत्।
लतारतेषु जप्तव्यं महापातकमुक्तये ।।११।।
लता यदि न लभ्येत तदा मज्जां प्रयत्नतः।
समुत्सार्य जपेन्मन्त्री सर्वकामार्थ सिद्धये ।।१२।।

पद्मा—जो विद्वान धन ऐश्वर्यादि की इच्छा करता है अथवा बृहस्पति के समान विद्वान होना चाहता है वह यौवनवती स्त्री की योनि को मन्त्र से १०८ बार अभिमन्त्रित कर उसके साथ सम्भोग करे तो उपर्युक्त सभी फल प्राप्त होते हैं। सभी महापापों से मुक्ति के लिए सुन्दर युवती के साथ सम्भोग करते हुए मन्त्र का जप करे। यदि साधक को सम्भोग के लिए सुन्दर युवती न प्राप्त हो तो उसे हस्तमैथुन से वीर्य निकालकर सर्व कामनाओं की पूर्ति हेतु जप करना चाहिए ॥९-१२॥

तासां प्रहारं निन्दां च कौटिल्यमप्रियं तथा।
सर्वथा च न कर्तव्यमन्यथासिद्धिरोधकृत् ।।१३।।
स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रिय एवं विभूषणम्।
स्त्रीसङ्गिना सदा काव्यमन्यथा स्वस्त्रियामपि ।।१४।।
विपरीतरता सा तु धारिता हृदयोपरि।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा नासाध्यं विद्यते क्वचित् ।।१५।।
तद्धस्तावर्चितं पुष्पं तद्धस्तावर्चितं जलम्।
तद्धस्तावर्चित भोज्यम् देवताभ्यो निवेदयेत् ।।१६।।

पद्मा—साधक कभी भी स्त्रियो के साथ मारपीट न करे और न ही उनकी निन्दा करे और न ही उनके साथ कुटिल व्यवहार करे अन्यथा सिद्धि नही प्राप्त होती है। स्त्रियाँ ही देवता हैं, स्त्रियाँ ही प्राण है और स्त्रियाँ ही आभूषण हैं। स्त्रियों का सदैव साथ करे चाहे वह अपनी स्त्री हो अथवा अन्य पुरुष की स्त्री हो। अपनी अथवा दूसरे की स्त्री के साथ विपरीत रूप से अपने हृदय के उपर रखकर सम्भोग करते हुए १०८ बार मन्त्र जप करने पर साधक के लिए कुछ भी असाध्य नही रह जाता है। स्त्री के ही हाथ के पुष्प, जल, तथा भोज्य पदाथ देवता को समर्पित करे ॥१३-१६॥

महाचीन द्रुमलतावेष्टितः साधकोत्तमः ।
रात्रौ यदि जपेन्मन्त्रं सैव कल्पलताभवेत् ।।१७।।
महाचीनद्रुमलतावेष्टनेन च यत्फलं ।
तस्या षोडशांशेन कलां नार्हन्ति ते शवाः ।।१९।।

पद्मा—साधक श्रेष्ठ नवयौवना सुन्दरी के साथ आलिंगित होकर यदि रात्रि में जप करता है तो वह युवती कल्पवृक्ष के समान साधक की समस्त कामनायें पूर्ण करती है। नवयौवना स्त्री के आलिंगन का जो फल प्राप्त होता है उसका सोलहवाँ भाग भी शवसाधना से प्राप्त नही होता है ॥१७-१८॥

शवासनाधिकफलं लतागेह प्रवशेनम् ।
श्मशानालयमागत्य मुकतकेशो दिगम्बरः ।।१९।।
जपेदयुतसंख्यं तु सर्वकामार्थ सिद्धये ।
महाचीनद्रुमलता मज्जाभिर्विल्वपत्रकम् ।।२०।।
सहस्त्रं देवीमभ्यर्च्य श्मशाने साधकोत्तमः ।
तदा राज्यमवाप्नोति यदि स न पलायते ।।२१।।
स्वगात्ररुधिराक्तैश्च विल्वपत्रैः सहस्त्रशः ।
श्मशानेऽभ्यर्च्य काली तुं वागीश समतां व्रजेत् ।।२२।।
अन्नादिकां तथा दृष्ट्वा लक्षं जपति भूमिपः ।
निर्मलां च तथा दृष्ट्वा वश्यार्थमयुतं जपेत् ।।२३।।

इति श्रीकालीतन्त्रे काम्यविधिः नाम चतुर्थः पटलः ।।४।।

पद्मा—शवासन से भी अधिक फलदायक लता (कामिनी सुन्दर स्त्री) गृह में प्रवेश से है। श्मशान में आकर साधक नंगा और मुकतकेश हो जाए तथा दश हजार की संख्या में मन्त्र का जप करे तो सभी कामनाओं की सिद्धि होती है। साधक सुन्दरस्त्री से आलिंगित होकर वीर्ययुक्त बिल्व पत्रों का एक हजार श्मशान से अर्चन करे और पलायन न करे तो राज्य की प्राप्ति होती है। अपने शरीर के रक्त और सहस्त्र विल्वपत्रों से महाकाली का पूजन श्मशान में करने पर बृहस्पति के समान साधक हो जाता है। अनादि शक्ति को सम्मुख देखते हुए एक लाख का जप करे। भूमिपाल उसके सम्पर्क द्वारा निर्मला (पवित्र) भैरवी को देखते हुए वशीकरण के लिए दशहजार मन्त्र का जप करे ॥१९-२३॥

इस प्रकार सिद्धाश्रमस्थ परमहंस स्वामी श्रीनिखिलेश्वरानन्द जी के शिष्य अजय कुमार उत्तम कृत श्री काली तन्त्र के काम्यविधि नामक चतुर्थ पटल की **पद्मा** हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥४॥

❖

अथ पञ्चमः पटलः

(सिद्धविद्या विधिः)

भैरव उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रकल्पद्रुमम परम् ।
येन जप्तेन विधिवत् सिद्धयोऽष्टा भवन्ति हि ।।१।।
यस्याः स्मरणमात्रेण वाचश्चित्रीयते नृणां ।
यज्ज्ञानादमरत्वं च लभेन्मुक्तिं चतुर्विधां ।।२।।
ये जपन्ति परां देवीं नियमेन तु संस्थिताः ।
देवाः सर्वे नमस्यन्ति किं पुनर्मानवादयः ।।३।।

पद्मा—श्री भैरव ने कहा–मै श्रेष्ठ मन्त्रकल्पद्रुम को कहता हूँ जिसके विधिवत् जप करने से अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । जिसके स्मरण मात्र से साधक की वाणी अद्भुत हो जाती है जिसके ज्ञान मात्र से अमरता अथवा चतुर्विध मुक्ति लाभ होता है । जो मनुष्य अथवा साधक भगवती काली के मन्त्र का नियमपूर्वक जप करते हैं उन्हें देवतागण भी नमस्कार करते हैं फिर साधारण मनुष्यों की बात ही क्या है? ॥१-३॥

बृहस्पतिसमो वाग्मी धने धनपतिर्भवेत् ।
कामतुल्यश्च नारीणां रिपूणां शमनोपमः ।।४।।
तस्य पादाम्बुज द्वन्द्वं राज्ञां किरीटभूषणम् ।
तस्य मूर्ति विलोक्यैव कुबेरोऽपि तिरस्कृतः ।।५।।
य एनां पूजयेद् देवीं नियमे पितृकानने ।
तस्य चाज्ञाकराः सर्वे सिद्धयो ऽष्टौ भवन्ति हि ।।६।।

पद्मा—साधक देवगुरु बृहस्पति के समान विद्वान् तथा कुबेर के समान धनी होता है। वह नारियों के लिए कामदेव के समान रूपवान् तथा शत्रुओं के लिए यमराज के समान हो जाता है । उसके चरणों में राजा अपने सिर को झुकाते हैं । उसके ऐश्वर्य की समानता कुबेर भी नहीं कर सकते हैं । जो साधक नियमपूर्वक श्मशान भूमि में देवी का पूजन करता है आठों सिद्धियाँ उसकी आज्ञा पालन में तत्पर रहती है ॥४-६॥

तस्यैव जननी धन्या पिता यस्य सुरोपमः ।
सम्प्रदायविदां वक्ता य एनां वेत्ति तत्त्वतः ।।७।।

अस्या विज्ञानमात्रेण कुलकोटिः समुद्धरेत् ।
नन्दन्ति पितरः सर्वे गाथा गायन्ति ते मुदा ।।८।।
अपि नः स्वकुले कश्चित् कुलज्ञानी भविष्यति ।
स धन्यः स च विज्ञानी स कविः स च पण्डितः ।।९।।
स कुलीनः स सुकृतिः स वशी स च साधकः ।
स ब्राह्मणः स वेदज्ञः सोऽग्निहोत्री स दीक्षितः ।।१०।।
स तीर्थसेवी पीठानां स निवासी च सर्वदा ।
स सोमपायी च व्रती स यज्वा स च साधकः ।।११।।
स संन्यासी च योगी च स मुक्तः स च ब्रह्मवित् ।
स वैष्णवः स शैवश्च स सौरः स च गाणपः ।।१२।।
स च विज्ञानवेत्ता च य एनां वेत्ति तत्त्वतः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा ।।१३।।
एनां ज्ञात्वा यजेन् मन्त्री सुखमोक्षफलप्रदाम् ।

पद्मा—भगवती काली के साधक की माता धन्य है उसका पिता देवता के समान है, सम्प्रदायविदों में वही वक्ता है जो कि देवी को तात्त्विक दृष्टि से जानता है । भगवती महाविद्या के ज्ञान मात्र से करोड़ों कुल का उद्धार हो जाता है । उसके पितर प्रसन्न होकर कहते हैं कि मेरे कुल में यह कुलज्ञानी उत्पन्न हुआ है । वह धन्य है । वह विज्ञानी, कवि, विद्वान्, कुलीन, तपस्वी, जितेन्द्रिय, ब्राह्मण, वेद का ज्ञाता, अग्निहोत्री, दीक्षित, तीर्थसेवी, शक्तिपीठ का आश्रयी (निवासी), सोमपानकर्ता, व्रती, याज्ञिक, संन्यासी, योगी, मुक्त ब्रह्मज्ञानी, वैष्णव, शैव, सूर्योपासक, गणेशपूजक, विज्ञान वेत्ता है । इसलिये सभी प्रयत्न करके सभी अवस्थाओं में सदैव व्यक्ति को सुख एवं मोक्ष प्रदान करने वाली भगवती काली का पूजन करना चाहिए ॥७-१३.१/२॥

नमः पाशाङ्कुशे द्वेधा फट् स्वाहा कालि कालिके ।।१४।।
दीर्घतनुच्छदः कालीमनुः पञ्चदशाक्षरः ।
अनया सदृशी विद्या त्रैलोक्येनापि विद्यते ।।१५।।
विद्यारत्नम् प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा कर्णावतंसवत् ।
मायाद्वयं कूर्चयुग्ममस्त्रान्तम् मादनत्रयम् ।।१६।।
मायाविन्दीश्वरयुतं दक्षिणे कालिके पदम् ।
संहारक्रमयोगेन बीज सप्तकमुद्धरेत् ।।१७।।
एकविंशत्यक्षराद्यस्ताराद्यः कालिकामनुः ।
पूर्वोक्तमन्त्रवत् कुर्यात् पूजां सर्वां विचक्षणः ।।१८।।

इति श्री कालीतन्त्रे सिद्धविद्या विधिः नाम पञ्चमः पटलः ।।५।।

पद्मा—सर्वप्रथम नमः इसके पश्चात् पाश द्वय (आं आं) इसके बाद अंकुशद्वय (क्रों क्रों) फिर फट् स्वाहा काल कालिके इसके बाद दीर्घतनूच्छद (हूं) योजित करने पर काली का पन्द्रह अक्षर का मन्त्र बनता है। इसके समान विद्या तीनो लोक में भी नही है। अब मैं विद्यारत्न नामक मन्त्र को कहता हूँ ध्यान देकर सुनो। ॐ ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं यह कालिका का इक्कीस अक्षर का मन्त्र है। इसकी भी पूजा विधि २३ अक्षर वाले मन्त्र के समान ही है ॥१४-१८॥

विमर्श—प्रथम मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है-**नमः आं आं क्रों क्रों फट् स्वाहा कालि कालिके हूं।** द्वितीय मन्त्र-**ॐ ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं।**

इस प्रकार सिद्धाश्रमस्थ परमहंस स्वामी श्रीनिखिलेश्वरानन्द जी के शिष्य अजय कुमार उत्तम द्वारा श्री कालीतन्त्र के सिद्ध विद्या विधि नामक पञ्चम पटल की पद्मा हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥५॥

❖

अथ षष्ठः पटलः

वीरसाधनविधिः

भैरव उवाच

श्रृणु ! देवि ! प्रवक्ष्यामि वीरसाधनमुत्तमम् ।
नृणां शीघ्रफलावाप्त्यै प्रकारान्तरमुच्यते ।।१।।

पद्मा—हे देवि ! अब मै श्रेष्ठ वीर साधन कह रहा हूँ सावधान होकर सुनो । मनुष्यों को शीघ्र सिद्धि प्राप्त के लिए इसे कई प्रकार से कहूँगा ।।१।।

चतुष्पथे चतुर्दिक्षु पुरुषं हृदयं खनेत् ।
जीवितं ब्रह्मरन्ध्रे वै दीपान् प्रज्वालयेत् सुधीः ।।२।।
मध्ये तथा खनेदेकं तत्र मूर्द्धासनं भवेत् ।
पूर्वोक्तेनैव मार्गेण तन्त्रसंस्कारमाचरेत् ।।३।।
महाकालादिदेवेभ्यो बलिं पूर्ववदाहरेत् ।
कल्पोक्त पूजां संपूज्य जपेत् प्रयत्मानसः ।।४।।
दन्ताक्षमालया चैव राजदन्तेन मेरुणा ।
दिग्वासाः प्रजपेन्मन्त्रमयुतं सर्वदैवतम् ।।५।।
जपान्ते च बलिं दत्त्वा दक्षिणा विभवावधिः ।
सर्वसिद्धीश्वरो विद्वान् सर्वदेवनमस्कृतः ।।६।।
अथवा विजनेऽरण्ये स्थिरयोगासनो नरः ।
उदयास्तं दिवा जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।।७।।
विल्ववृक्षे निजक्रोड़े शवमारोप्य यत्नतः ।
नृसिंहमुद्रया वीक्ष्य जपेन्मातृकयाः नरः ।।८।।
सहस्त्रं तत्र जप्त्वा वै सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
वटमूले शवं नीत्वा तत्र देवीम् प्रपूज्य त ।।९।।
सुप्त्वा तत्र मनुं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
करकाञ्चीं समादाय मुण्डमाला विभूषितः ।।१०।।
तेनैव तिलकं कृत्वा तत्तद्भस्म विभूषितः ।
श्मशाने च सकृज्जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।।११।।

पद्मा—चौराहे पर चारों दिशाओं में एक पुरुष की आकृति को मिट्टी पर बनायें

उस उत्कीर्ण मूर्ति के मस्तिक पर एक एक दीपक जला दो। फिर बीच में एक पुरुष को आकृति बनाये। यह पुरुष की आकृति सभी आकृतियों में प्रधान होगी। पूर्व में कही गयी विधि से तन्त्र संस्कार करे। पूर्व की भाँति महाकाल आदि देवताओं को बलि प्रदान करे। तान्त्रिक कल्प में कहे गये विधान के अनुसार एकाग्रमन से जप करे। दाँतो से बनी माला से जप करना चाहिए। दन्तमाला का सुमेरु राजदन्त से बना होना चाहिए। (सामने के दो दाँतों को राजदन्त कहा गया है।) नग्न होकर समस्त देवताओं को वश में करने वाले भगवती काली के मन्त्र का जप करे। जप के अन्त में भगवती काली को अपनी सामर्थ्य के अनुसार बलि प्रदान करे। ऐसा करने पर साधक विद्वान्, सभी देवताओं से पूजित तथा समस्त सिद्धियों का स्वामी हो जाता है।

अथवा स्थिर योगासन में बैठकर साधक दिन से उदय से अस्त तक जप करने पर साधक सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। साधक बिल्ववृक्ष के नीचे बैठ अपनी गोद में प्रयत्नपूर्वक शव को रखकर मातृका बीज का जप करे नृसिंह मुद्रा से शव को देखते हुए जप करे। इस प्रकार एक हजार करने से साधक सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है।

वटवृक्ष के मूल में शव को लाकर वहाँ पर देवी की पूजा करे तथा मन्त्र का जप करे। ऐसा करने पर साधक सभी सिद्धियों का स्वामी होता है। अथवा मृतक के हाथों की करधनी बनाकर और मुण्डमाला धारण कर रूधिर से तिल करके शवों की भस्म को लगाकर श्मशान में एक दिन रात जप करने पर सभी सिद्धियों का स्वामी होता है ॥२-११॥

कुङ्कुमागरु कस्तूरीं रोचनागरु चन्दनम्।
कर्पूरम पद्मरागञ्च केसरं हरिचन्दनम्॥१२॥
एकत्र साधितम् कृत्वा प्रत्येकं साधयेत्ततः।
एतत्तिलकमात्रेण राजानम् वशमानयेत्॥१३॥

पद्मा—कुंकुम, अगरु, कस्तूरी, गोरोचन, अगरु, चन्दन, कर्पूर, पद्मराग केसर, हरिचन्दन इन सभी को एकत्रित कर एक में मिलाकर तिलक बनाये। इस तिलक को करने से राजा भी साधक के वश में हो जाते हैं ॥१२-१३॥

विमर्श—अगरू का प्रयोग दो बार हुआ है अतः इसे अन्य द्रव्यों से दुगुनी मात्रा में लें।

जिह्वाग्रे रुधिरं कृत्वा आकाशे च समाहरेत्।
तेनैव गुटिकां कृत्वा भद्रकालीं ततो जपेत्॥१४॥

नीलां नीलपताकां च ललजिह्वां करालिकां।
ललाटे तिलकं कृत्वा साधको वीतभीः स्वयं।।१५।।
महाष्टमीनवम्यां तु संयोगे परतः स्थितः।
छागमहिषमेषाणां चतुर्दिक्षुशरान् क्षिपेत्।।१६।।
कबन्धान् मुण्डपुञ्जं च दीपादिभिरलंकृतम्।
मध्ये कबन्धमास्तीर्य तत्र गन्धर्वरूपधृक्।।१७।।
ताम्बूलपूर रक्तास्ये मदनाञ्चित लोचनम्।
कृत्वा कालीमनुं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।।१८।।

पद्मा—साधक अपनी जिह्वा के अग्रभाग से रक्त निकाल कर सुखा कर गोली बना ले और भगवती भद्रकाली का मन्त्र जप करे। भद्रकाली को नीला नीलपताका, ललजिह्वा तथा करालिका के नाम से भी जाना जाता है। साधक ललाट में तिलक लगा कर स्वयं भयरहित होकर महाष्टमी और नवमी के संयोग काल में छाग (बकरा) महिष (भैंसा) तथा मेष (मेढ़ा) के धड़ स्वरूप बाणों को चारों दिशाओं में फेंके। मध्य में छाग, महिष व मेष के मुण्डों में दीपक रखे और एक कबन्ध को भी रखे। गन्धर्व की भाँति सुन्दर रूप धारण कर स्वयं पान (ताम्बूल) और रक्त से अपना मुख पूर्ण करे और नेत्रों मे अंजन लगाकर कालीमन्त्र का जप करे। ऐसा करने पर साधक समस्त सिद्धियों का स्वामी हो जाता है ॥१४-१८॥

वियद्रवियुतं देवि नेत्रान्तं चन्द्रभूषितम्।
बीजं प्रत्येक द्रव्याणां मिलितानां च पार्वति।।१९।।
मूलमन्त्रेण मन्त्रं यो जपेत् साष्ट शतत्रयम्।
जिह्वाग्रे रुधिरं गृह्ण चामुण्डे घोरनिःस्वने।।२०।।
बलिम् गृह्ण वरं देहि रुधिरं गगनेऽमले।
कालि कालि प्रचण्डोग्रे ततोऽस्त्रं कवचं ततः।।२१।।
कालिकेयं समाख्यता वीराणां हितकाम्यया।

पद्मा—ह्रीं बीज मन्त्र को मूल मन्त्र में मिलाकर ३०८ बार जप करे। **ह्रीं जिह्वाग्रे रुधिरं गृह्ण चामुण्डे घोरनिःस्वने बलिं गृह्ण वरं देहि रुधिरं गगनेऽमले कालि कालि प्रचण्डोग्रे फट् हुं** यह वीर साधकों के लिए हितकारी मन्त्र है ॥१९-२१.१/२॥

कूर्चयुग्मं महादेवि! नीलायाः कथितं तव।।२२।।
वियद् भृगुयुतं देवि कुलमिश्रं रवि, रतिः।
चन्द्रखण्डसमायुक्तम् ततो नीलपदम् ततः।।२३।।

पताके हुं फडन्ते स्यात् पूर्वकूट मनुर्मतः ।
सुगुप्तेयम् महाविद्या तव स्नेहात् मयोच्यता ।।२४।।

पद्मा—हे महादेवि ! **हूँ हूँ हौं कलरीं नीलपताके हुं फट् हूँ हूँ हौं कलरीं** यह नीलपताका महाविद्या का मन्त्र है । हे प्रिये । यह महाविद्या अत्यन्त ही गोपनीय है और तुम्हारे स्नेहवश इसे कहा है ॥२२-२४॥

जयश्रीकरणी देवी पताकेव रणस्थले ।
तेन नीलपताकेयं विद्यां वै वीरसाधने ।।१५।।
उग्रचण्डा महाविद्या या पुरा कथिता प्रिये ।
ललजिह्वा तु सा प्रोक्ता योज्या वै वीरसाधने ।।२६।।
या सौ विद्या महातारा सा करालेति कीर्त्तिता ।

पद्मा—रणस्थल मे जय प्रदान करने वाली तथा साधक को लक्ष्मीप्रदानकरने वाली नीलपताका विद्या वीर साधन में कही गयी है। हे प्रिये! उग्रचण्डा महाविद्या पहलेकही गयी है। वह ललजिह्वा नाम वाली है। वह वीरसाधन में प्रयुक्त करे। जो महाविद्या तारा है वही कराला कही गयी है॥२५-२६.५॥

भूमिपुत्र समायुक्ता यामावस्या शुभोदया।।२७।।
भाद्रेषुनृक्षयोगेन तस्यां वीरवरोत्तमः ।
विष्णुक्रान्तां समानीय निक्षिपेन्मृतभूमिष ।।२८।।
तत्र तां साधितां कृत्वा तद्दिने मत्स्यहट्टके ।
तत्र तं साधितं मत्स्यमेकमूल्येन दापयेत् ।।२९।।
तज्जलेनाभिषेकं च पूर्ववच्च शिरोपरि ।
साधितां विजयां तस्य उदरे मुखवर्त्मना ।।३०।।
क्षिप्त्वा तत्र खनेन्मत्स्यमञ्जनाञ्चितलोचनः ।
पूर्वद्रव्येण तिलकमुत्थाय च मनुं जपेत् ।।३१।।
स्वयं वै तत्र भगवान् भैरवो लगुड़ान्वितः ।
गतभीतिस्ततो वीरस्तं विलोक्य जपेन्मनुम् ।।३२।।
यदि भाग्यवशाद्देवि! लगुड़रतत्र लभ्यते ।
तदा स्वयं भैरवोऽसौ स्वयं वीरेश्वरो भवेत् ।।३३।।

पद्मा—साधक भाद्रपद (भादों) के महीने में जब भी कभी अमावस्या के दिन मंगल हो और पुष्य नक्षत्र भी हो तब श्रेष्ठ साधक विष्णु क्रान्ता (अपराजिता, कोयल) नामक औषधि को श्मशान भूमि में लाये और वहाँ पर उसका संस्कार करे। इसके पश्चात् उसी दिन बाजार से एक मत्स्य को क्रय करके लाये और उसका संस्कार कर मन्त्र द्वारा

सिद्ध करे। इसके बाद शव के सिर के ऊपर मत्स्य जलका अभिषेक करे। तत्पश्चात् साधित त्रिष्णुक्रान्ता (मूल पाठ में विजया है जिसका अर्थ होगा संस्कृत (शुद्ध) भाँग) औषधि को उसके उदर में मुखमार्ग से रखकर स्वयं अञ्जन लगाये हुए वहाँ पर मत्स्य की आकृति को खोदकर पूर्वकथित तिलक की विधि से तिलक करे तथा मन्त्र का जप करे। वहाँ पर भगवान् भैरव लगुड़ (दण्ड) सहित उपस्थित रहते हैं। साधक भयरहित होकर भैरव जी के श्मशान में दर्शन कर मन्त्र का जप करे। यदि भाग्यवश वीरसाधक भगवान् भैरव की कृपा से लगुड़ प्राप्त कर लेता है तो वह स्वयं भैरव के समान हो जाता है तथा वीर साधकों का अधिपति होता है ॥२७-३॥

मत्स्यमानीय देवेशि! निक्षिपेत् पितृकानने।
तत्रासकृज्जपित्वा तु देवतामेलनं भवेत्॥३४॥
तत्र नत्वा महादेवं महादेवीं च भामिनि!।
तद् भस्मातिलक कृत्वा स्वयं वीरेश्वरो भवेत्॥३५॥

पद्मा—हे देवेशि! साधक एकमत्स्य लाकर उसे श्मशान में छोड़ दे। १००८ (एक हजार आठ) बार मन्त्र का जप करने से देवता का साक्षात्कार होता है। इसके पश्चात् महादेव एवं महादेवी को प्रणाम कर चिता की भस्म से तिलक करे तो साधक वीर साधकों का अधिपति हो जाता है ॥३४-३५॥

निशायां मृतहट्टे च उन्मत्तानन्दभैरवः।
दिग्वासा विमलीभस्मभूषणो मुक्तकेशकः॥३६॥
कपाली खड्गहस्तश्च जपेन् मातृकया यदि।
तदा तस्य महादेवि! सर्वसिद्धिः करे स्थिता॥३७॥
डाकिनीं योगिनीं वापि अन्यं वा भूतलाङ्गनाम्।
तत्राथानीय संपूज्य सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्॥३८॥

पद्मा—साधक रात्रि में श्मशान में नग्न होकरपवित्र भस्म लगाये हुये अपने केश खोले हुए हाथ में कपाल एवं खड्ग सहित उन्मत्तानन्द भैरव के स्वरूप को धारण किये हुए मातृका मन्त्र का जप करे। हे महादेवि! ऐसा करने परसभी सिद्धियाँ उसके हाथ में हो जाती हैं।

डाकिनी योगिनी या अन्य कोई अथवा भूतल स्थित कोई सुन्दर स्त्री को मन्त्र के द्वारा ला करके जप करने पर साधक सर्वसिद्धीश्वर हो जाता है ॥३६-३८॥

सर्वेषां जीवहीनानां जन्तूनां वीरसाधने।
ब्राह्मणं गोमयं त्यक्त्वा साधयेद् वीरसाधनम्॥३९॥

मृतासनम् विना देवि! पूजयेत् पार्वतीं शिवाम् ।
तावत् कालं वसेद् घोरं यावदाहूतसंप्लवम् ।।४०।।
महाशवाः प्रशस्ताः स्युः प्रधानम् वीरसाधने ।
क्षुद्रा प्रयोग कर्तृणां प्रशस्ताः सर्वसिद्धिदाः ।।४१।।
एवं वीरक्रमम् देवि कथितम् च तवानघे ।
न कस्यचित् प्रक्तव्यम् मम प्रीत्या महेश्वरि !।।४२।।

इति श्री कालीतन्त्रे वीरसाधना नीम षष्ठः पटलः ।।६।।

पद्मा—सभी मृत प्राणियों के शरीर वीर साधना में प्रशक्त हैं। ब्राह्मण तथा गोमय को त्याग कर वीर साधन करे। हे देवि! वीर साधना में बिना मृतासन के यदि देवी पार्वती की पूजा की जाती है तो वह साधक महाप्रलय तक घोर नरक में निवास करता है। वीर साधन में महाशव ही प्रधान है। क्षुद्र शव काम्य प्रयोगकर्ताओं के लिए प्रशस्त एवं सभी सिद्धियों को देने वाला है। हे देवि ! हे अनघे! तुम्हारे निकट यह वीर क्रम का वर्णन किया है। हे महेश्वरि ! मेरी प्रसनता के लिए तुम इसे किसी और से न कहना ।।३९-४२।।

इस प्रकार सिद्धाश्रमस्थ परमहंस स्वामी श्रीनिखिलेश्वरानन्द जी के शिष्य अजय कुमार उत्तम द्वारा श्री कालीतन्त्र के वीरसाधना नामक षष्ट पटल की पद्मा हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।६।।

❖

अथ सप्तमः पटलः

।। रहस्य पुरश्चरण विधिः ।।

देव्युवाच

ज्ञातमेतन्मया देव! त्वत्प्रसादान्महेश्वरम् ।
अशक्तानां तु मे देव! पुरश्चरणमुच्यताम् ।।१।।
सिध्यन्ते च यथा मन्त्रा लभन्ते सिद्धिमुत्तमाम् ।

पद्मा—श्री देवी ने कहा–हे देव ! आपकी कृपा से मैने वीर साधन की विधि जान लिया । अब आप अशक्त साधकों के लिए मुझे आप पुरश्चरण बतायें । किस प्रकार से मन्त्रों की सिद्धि होती है तथा श्रेष्ठ सिद्धि किस प्रकार से प्राप्त होती है ? ॥१-१.१/२॥

भैरव उवाच

श्मशानेषु पुरश्चर्या कथिता भुवि दुर्लभा ।
अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।।२।।
कुजे वा शनिवारे वा नरमुण्डं समाहृतम् ।
पञ्चगव्येन मिलितं चन्दनाद्यैर्विशेषतः ।।३।।
निक्षिप्य भूमौ हस्तार्द्धमानतः कानने वने ।
तत्र तद्दिवसे रात्रौ सहस्रम् यदि मानवः ।।४।।
एकाकी प्रजपेन्मन्त्रं स भवेत् कल्प पादपः ।

पद्मा—श्री भैरव ने कहा–श्मशान स्थल में किया जाने वाला पुरश्चरण अत्यन्त ही कठिन है और उसके ज्ञाता भी कम है इसलिए अन्य प्रकार से पुरश्चरण करे । मंगलवार अथवा शनिवार को एक नरमुण्ड लकार पञ्चगव्य और विशेष रूप से चन्दनादि से संस्कार करे । इसके उपरान्तु श्मशान भूमि में एक गड्ढा खोदकर आधे हाथ तक भूमि में गाड़ दे । वहाँ उस दिन रात्रि में यदि साधक अकेला रहकर एक हजार मन्त्र का जप करे तो वह कल्पवृक्ष के समान हो जाता है ॥१-४.१/२॥

अथवाऽन्य प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।।५।।
शवमानीय तद्द्वारे तेनैव परिखन्यते ।
तद्दिनात् तद्दिनं यावत् जपेदष्टोत्तरं शतम् ।।६।।
स भवेत् सर्वसिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा ।

पद्मा—अथवा अन्य प्रकार से पुरश्चरण कहते हैं। साधक शव को लाकर अपने द्वार पर गाड़े दे। यह कर्म मंगलवार या शनिवार को करे। उस दिन (मंगल अथवा शनिवार) से आरम्भ कर मंगलवार या शनिवार तक शव के ऊपर बैठकर प्रतिदिन रात्रि मे मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे तो निश्चित रूप से वह सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है ॥५-६.१/२॥

अथवाऽन्य प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।।७।।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ।
सूर्योदयात् समारभ्य यावत् सूर्योदयान्तरम् ।।८।।
तावज्जप्त्वा निरातङ्कः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।

पद्मा—अब अन्य प्रकार से पुरश्चरण कहता हूँ। दोनों पक्षों (शुक्ल तथा कृष्ण) की अष्टमी और चतुर्दशी को एक सूर्योदय से लेकर दूसरे सूर्योदय तक साधक निर्भय होकर जप करे तो समस्त सिद्धियों का स्वामी होता है ॥७-८.१/२॥

अथवाऽन्य प्रकारणे पुरश्चरणमिष्यते ।।९।।
चन्द्रसूर्यग्रहे चैव ग्रासावधि विमुक्तितः ।
यावत्संख्यम् मनुं जप्यात्तावद्धोमादिकम् चरेत् ।।१०।।
सूर्यग्रहणकालाद्धि नान्यः कालः प्रशस्यते ।
तत्र यद्यत् कृतम् कर्म तदनन्तफलम् लभेत् ।।११।।

पद्मा—अब अन्य प्रकार का पुरश्चरण कहता हूँ। चन्द्र और सूर्यग्रहण के समय ग्रास से लेकर मुक्ति तक जितनी संख्या में जप करे उसके अनुसार ही होमादि कर्म करे। सूर्यग्रहण काल से बढ़कर और अन्य कोई काल प्रशस्त नही है। इस समय जो भी कर्म किया जाता है उसका अनन्तफल प्राप्त होता है ॥९-११॥

अथवाऽन्य प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।
शरत्काले चतुर्थ्यादिनवम्यन्तम् विशेषतः ।।१२।।
भक्तितः पूजयित्वा तु रात्रौ तावत् सहस्त्रकम् ।
जपेदेकाकी विजने केवलं तिमिरालये ।।१३।।
अष्टम्यादिनवम्यन्तमुपवासपरो भवेत् ।
अन्यत्र गुरुमार्गस्य लंघनं नैव कारयेत् ।।१४।।

पद्मा—अब अन्य प्रकार से पुरश्चरण को कहूँगा। शरत्काल में चतुर्थी से लेकर नवमी तक साधक भक्तिपूर्वक देवी की पूजा करे तथा प्रत्येक रात्रि में अन्धकार में बैठकर

एक हजार मन्त्र का जप करे। जप करते समय साधक अकेले ही रहे। अष्टमी और नवमी को उपवास करे। अन्यत्र गुरुमार्ग का उल्लंघन न करे ॥१२-१४॥

अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते।
अष्टमीसन्धिवेलायां अष्टोत्तरलतागृहम् ॥१५॥
प्रविश्य मन्त्री विधिवत्तां समभ्यर्च्य यत्नतः।
पूर्वोक्तकल्पमासाद्य पूजादिकम् समाचरेत् ॥१६॥
केवलम् कामदेवोऽसौ जपेदष्टोत्तरं शतम्।
तासां तु पत्रमूलेन उग्रां संपूज्य कर्णिके ॥१७॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेत् सद्यो लतादर्शनपूजनात्।

पद्मा—अब मैं अन्य प्रकर से पुरश्चरण कहता हूँ। अष्टमी तिथि की सन्धि वेला में १०८ लता (नवयुवती) गृह में साधक प्रवेश करके उन नवयुवतियों की विधिवत पूजा करे। पहले कहे गये विधान के अनुसार पूजादि कर्म करे। साधक कामदेव के स्वरूप में स्थित होकर मन्त्र का १०८ जप करे। उनके पत्र मूल में उग्रा की पूजा करे। नवयुवतियों के दर्शन एवं पूजन से निश्चय ही मन्त्र की सिद्धि होती है ॥१५-१७.१/२॥

अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ॥१८॥
आकृष्टायाः कुलागारे लिखित्वामन्त्रमेव।
सम्पूज्य तत्र संस्कारं कृत्वा तस्यै निवेद्य च ॥१९॥
किञ्चिज्जप्त्वा मनुं नीत्वा देवताभावतत्परः।
तां विसृज्य नमस्कृत्य स्वयं जप्त्वा सुसंयतः ॥२०॥
प्रातः स्त्रीभ्ये बलिं दत्त्वा मन्त्रसिद्धिर्न संशयः।

पद्मा—अथवा अन्य प्रकार से पुरुश्चरण कहता हूँ। नवयौवना स्त्री को आकर्षित कर उसकी योनि मे मन्त्र लिखकर पूजन और संस्कार करके उसको कुछ मन्त्र जप कर देवता भावना से निवेदित करे। इसके पश्चात् उसको प्रणाम और विसर्जित कर स्वयं सुसंयत मन से जप करे। प्रातः काल स्त्रियों को बलि प्रदान करे। इससे निश्चित रूप से मन्त्र की सिद्धि होती है इसमे संशय नही है ॥१८-२०.१/२॥

अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ॥२१॥
गुरुमानीय संस्थाप्य देववत् पूजनम् विभो।
वस्त्रालङ्कारहेमाद्यैः सन्तोष्य गुरुमेव च ॥२२॥
तत्सुतम् तत्सुताम् चैव तत्पत्नीम् च विशेषतः।
पूजयित्वा मनुं जप्त्वा स्वयं सिद्धीश्वरो भवेत् ॥२३॥

पद्मा—अब अन्य प्रकार से पुरश्चरण कहता हूँ। श्रीगुरुदेव को आदर सहित लाकर उन्हें बैठाकर उनका देवता की भाँति पूजन करे। वस्त्र-आभूषण तथा स्वर्णादि से गुरुदेव को सन्तुष्ट करे। उनके पुत्र, पुत्री और विशेष रूप से उनकी पत्नी की पूजा करे। इसके पश्चात् मन्त्र का जप करे तो साधक सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है ॥२१-२३॥

अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।
सहस्त्रारे गुरोः पादपद्मम् ध्यात्वा प्रपूज्य च ॥२४॥
केवलम् देवभावेन जप्त्वा सिद्धीश्वरो भवेत् ।
गुरवे दक्षिणां दद्याद् यथाविभवमात्मनः ॥२५॥
गुरोरनुज्ञामात्रेण दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ।
गुरुं विलंघ्य शास्त्रेऽस्मिन्नाधिकारः सुरैरपि ॥२६॥
एषां च मन्त्रतन्त्राणां प्रयोगः क्रियते यदि ।
गुरुवक्त्रं विना देवि! सिद्धिहानिः प्रजायते ॥२७॥

पद्मा—अथवा अन्य प्रकार से पुरश्चरण कहा जाता है। सहस्त्रार कमल में गुरु के चरणकमलों का ध्यान कर देवभाव से पूजन कर मन्त्र का जप करने पर साधक समस्त सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। साधक अपनी सामर्थ्य के अनुसार श्री गुरुदेव को दक्षिणा दे। श्री गुरुदेव की आज्ञा से साधना करने पर दुष्ट मन्त्र भी सिद्ध हो जाते हैं। गुरुदेव की आज्ञा का उल्लंघन करने वाला चाहे वह देवता ही क्यों न हो, उसका इस तन्त्रशास्त्र में अधिकार नहीं है। हे देवि ! बिना श्री गुरुदेव की आज्ञा से यदि तन्त्र-मन्त्र की क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है तो सिद्धि की हानि होती है ॥२४-२७॥

अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।
स्वकीयां परकीयां वा स्त्रियमानीय साधकः ॥२८॥
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा योनिमामन्त्र्य तत्ववित् ।
गच्छन् परमतत्वज्ञः सहस्त्रं जपते यदि ॥२९॥
तदा मन्त्रो भवेत् सिद्धो दुष्टमन्त्रोऽपि पार्वति ।
एतत्प्रयोगं देवेशि! न कस्मै दर्शयेत् क्वचित् ॥३०॥
यदि वा दर्शयेन्मोहात् कुबुद्धि कुलनाशकः ।
अन्यथा प्रेतराजस्य भवनम् याति निश्चितम् ॥३१॥

इति श्रीकालीतन्त्रे रहस्यपुरश्चरण विधिः नाम सप्तमः पटलः ॥७॥

पद्मा—अथवा अन्य प्रकार से पुरश्चरण करे। अपनी अथवा परकीया

नवयौवना स्त्री को साधक अपने साधना स्थल में लाये। तत्त्ववेत्ता साधक मन्त्र का १०८ बार जप कर योनि को आमन्त्रित करे। श्रेष्ठ तत्त्व को जानने वाला साधक यदि उस स्त्री के साथ सम्भोग करते हुए एक हजार मन्त्र का जप करे तो हे पार्वति ! दुष्टमन्त्र भी सिद्ध हो जाता है। हे देवेशि ! इस प्रयोग को किसी को भी न दिखाये। यदि मोहवश साधक किसी को भी इस प्रयोग को दिखाता है तो उसकी बुद्धि एवं कुल का नाश हो जाता है और साधक निश्चित रूप से मृत्यु को प्राप्त होता है ॥२८-३१॥

इस प्रकार सिद्धाश्रमस्थ परमहंस स्वामी श्रीनिखिलेश्वरानन्द जी
के शिष्य अजय कुमार उत्तम द्वारा श्री कालीतन्त्र के रहस्य-
पुरश्चरण विधि नामक सप्तम पटल की ***पद्मा*** *नामक*
हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥७॥

❖

अथ अष्टमः पटलः

आचारविधिः

भैरव उवाच

अथाचारं प्रवक्ष्यामि यत्कृतेऽमृतमश्नुते ।
सर्वभूतहिते युक्तः समयाचारपालकः ।।१।।
अनित्यकर्मसन्त्यागी नित्यानुष्ठानतत्परः ।
मन्त्राराधनमात्रेण शिवभावेनतत्परः ।।२।।
परस्यां देवतायां च सर्वकर्मनिवेदकः ।
अन्यमन्त्रार्चनं श्रद्धामन्यमन्त्र प्रपूजनम् ।।३।।
कुलस्त्रीवीरनिन्दां च तद्द्रव्यस्यापहारणम् ।
स्त्रीषु रोषं प्रहार च वर्जयेन्मतिमान् सदा ।।४।।

पद्मा—अब मैं आचार का वर्णन करूँगा जिससे मनुष्य अमृत प्राप्त करता है। साधक को समस्त प्राणियों के हित में लगे रहना चाहिए। उसे समयाचार नामक आचार का पालन करना चाहिए। अनित्य कर्मों का त्याग कर नित्य के अनुष्ठान में लगा रहे। मन्त्र अराधना के द्वारा कल्याण कार्यो में लगा रहे। परदेवता में समस्त कर्मों का निवेदन करे। अन्य मन्त्र में श्रद्धा अन्य मन्त्र के अर्चन एवं पूजन में रूचि, कुल स्त्री, वीर की निन्दा उनके द्रव्य का अपहरण, स्त्रियों के साथ मारपीट तथा क्रोध को बुद्धिमान साधक त्याग दे ॥१-४॥

स्त्रीमयं च जगत्सर्वम् स्वयं तावत् तथा भवेत् ।
पेयं चर्व्यं तथा चोष्यं भक्ष्यं भोज्यम् गृहम् स्वयम् ।।५।।
सर्वं च युवतीरूपम् भावयेन्मतिमान् सदा ।
कुलजां युवतीं वीक्ष्य नमस्कुर्यात् समाहितः ।।६।।
यदि भाग्यवशेनैव कुलदृष्टिस्तु जायते ।
तदैव मानसीं पूजां तत्र तासां प्रकल्पयेत् ।।७।।
बालां वा यौवनोन्मत्तां वृद्धां वा सुन्दरी तथा ।
कुत्सितां वा महादुष्टां नमस्कृत्य विभावयेत् ।।८।।

तासां प्रहारं निन्दां च कौटिल्यमपि वर्जयेत् ।
सर्वथा नैव कर्तव्यमन्यथा सिद्धिरोधकृत् ।।९।।
स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रियः एव विभूषणम् ।
स्त्रीसङ्गिना सदाभाव्यमन्यथा स्वस्त्रिया अपि ।।१०।।
विपरीतरता सा तु भविता हृदयोपरि ।
तद्धस्तावर्चितम् पुष्पम् तद्धस्तावर्चितम् जलम् ।।११।।
तद्धस्तावर्चितम् भोज्यम् देवताभ्यो निवेदयेत् ।
सर्वं तदक्षयं प्रोक्तम् देवतापूजनात् प्रिये ।।१२।।

पद्मा—साधक श्रेष्ठ इसे जगत् को स्त्रीरूप में समझे और स्वयं को भी स्त्रीरूप में स्वीकार करे। बुद्धिमान साधक पेय, चर्व्य, चोष्य, भक्ष्य, भोज्य, गृह सभी युवती रूप है, ऐसी भावना करे। यदि भाग्यवश कुल दृष्टि हो जाये तो उसी समय उनकी मानसिक पूजा कल्पित करे। बाला, यौवनोन्मत्ता, वृद्धा अथवा सुन्दरी कुत्सिता या अत्यन्त ही दुष्टा जो भी हो उसे प्रणाम कर मानसिक पूजन करे। उन पर प्रहार करना, उनकी निन्दा करना या उनके साथ कुटिलता कभी भी न करे अन्यथा सिद्धि की हानि होती है। स्त्रियाँ ही देवता हैं, स्त्रियाँ ही प्राण है, स्त्रियाँ ही विभूषण है। साधक को सदैव ही स्त्रियों के साथ रहना चाहिए अन्यथा अपनी स्त्री के साथ रहना चाहिए। इससे विपरीत रहने पर वह साधक के हृदय के ऊपर आसीन हो जाएगी। हे प्रिये ! स्त्री द्वारा लाये गये पुष्प जल और भोज्य पदार्थों को देवता को निवेदित करे और देवता की पूजा करे तो अक्षय फल प्राप्त होता है ॥५-१२॥

विपरीतरतासक्तोऽप्यष्टोत्तर सहस्रकम् ।
अष्टोत्तरशतं वापि तदा सिद्धिः प्रजायते ।।१३।।

पद्मा—साधक अपनी अथवा दूसरे की सुन्दरी व यौवनोन्मत्ता स्त्री के साथ विपरीत रति करते हुये भगवती काली के मन्त्र का मन्त्र का १००८ अथवा १०८ बार जप करें तो सिद्धि प्राप्त होती है ॥१३॥

स्त्री द्वेषो नैव कर्त्तव्यो विशेषात् पूजनम् स्त्रियाः ।
जपस्थाने महाशंखं निवेश्योर्ध्व जपम् चरेत् ।।१४।।
स्त्रियं पश्यन् स्पृशन् गच्छन् विशेषात् कुलजाम् शुभाम् ।
भक्षन् ताम्बूल मत्स्यांश्च भक्ष्यद्रव्यम् यथारुचि ।।१५।।
मत्स्यं मांसं तथा क्षौद्रं नाना द्रव्यसमन्वितम् ।
भक्ताद्यशेषभक्ष्याणि दत्वा द्रव्यम् जपेन्मनुम् ।।१६।।

दिक्कालनियमो नात्र स्थित्यादि नियमो न च ।
सर्वथा पूजयेद् देवीमस्नातः कृतिभोजनः ।।१७।।

महानिश्यांऽशुचौदेशे बलिं मन्त्रेण दापयेत् ।
न जपे कालनियमो नार्चादिषु वलिष्वपि ।।१८।।

स्वेच्छानियम उक्तोऽत्र महामन्त्रस्य साधने ।
वस्त्रासनदेहागारस्थानस्पर्शादि वारिणः।।१९।।
शुद्धिं न चाचरेत्तत्र निर्विकल्पम् मनश्चरेत् ।
सर्व एव शुभः कालो नाशुद्धिर्विद्यते क्वचित् ।।२०।।
न विशेषो दिवारात्रो न सन्ध्यायां महानिशिम् ।
गात्र शुद्धरपेक्षास्ति न चामेध्यदिदूषणम् ।।२१।।
सुगन्धितश्वेत लौहित्यं कुसुमैरर्चयेद् दलैः ।
विल्वैर्मरुवकाद्यैश्च तुलसी वर्जितः शुभैः ।।२२।।
नाधर्मो विद्येत सुभ्रु ! किं च धर्मो महान् भवेत् ।
स्वेच्छाचारोऽत्र गदितः प्रचरेद् धृष्टमासः ।।२३।।
कृतार्थमन्यमानस्तु सन्तुष्टो हृष्टमानस ।
इत्याचारपरः श्रीमान् जपपूजादि तत्परः ।।२४।।

पालकः कुलतत्वानां परतत्वे प्रलीयते ।
उदिताकृतिरानन्दमयः संसारमोचकः ।
अणिमाद्याष्ट सिद्धीशः साधकोदेवता भवेत् ।।२५।।

इति श्रीकालीतन्त्रे आचारविधिः नाम अष्टमः पटलः ।।८।।

पद्मा—स्त्रियों से कभी भी द्वेष न करे विशेष कर स्त्रियों के पूजन में । जपस्थान में महाशंख को ऊर्ध्व रखकर जप करे । स्त्रियों को देखना, उनका स्पर्श करना, उनके साथ सम्भोग करना, विशेषकर कुल स्त्री के साथ ऐसा करना अत्यन्त ही शुभ होता है । अपनी रुचि के अनुसार विविध भक्ष्यद्रव्य, ताम्बूल, मत्स्यादि का भक्षण कर जप करे । मत्स्य, मांस, मधु, अनेक प्रकार के भक्ष्य द्रव्य, भात (पके चावल) आदि कुल स्त्री को प्रदान कर मन्त्र का जप करे । इस कुलाचार में जप हेतु दिशा, काल तथा आसन का कोई भी नियम नहीं है । देवी की सदैव बिना नहाये हुए तथा खा-पीकर महानिशा में अपवित्र स्थान में बलि प्रदान कर पूजन करे। इस आचार में जपकाल पूजन नियम तथा बलि समय का कोई विधान नहीं है । भगवती काली के महामन्त्र साधन में स्वेच्छा नियम कहा गया है।

वस्त्र, आसन, देह, आगार, स्थान, स्पर्शादि इन सभी के लिये शुद्धाशुद्धि की आवश्यकता नहीं है। पूजनादि के लिए सभी काल शुभ हैं, कहीं पर कोई भी अशुद्धता नहीं है। दिन, रात्रि, संध्या एवं महानिशा में कोई भी भेद नहीं है, न देहशुद्धि की आवश्यकता है और न ही अपवित्रता आदि के शोधन की। सुगन्धित, श्वेत, रक्त पुष्प, विल्व मरुवक आदि के दलों से पूजा करे। तुलसीदल से पूजा न करे। हे सुभ्रु ! इसमें किसी प्रकार का अधर्म नहीं है बल्कि इससे धर्म होता है। यहाँ पर स्वेच्छाचार कहा है, इसे स्वेच्छाचार से करे। मन से सन्तुष्ट होकर प्रसन्न होकर करे। इसके आचार में लगा हुआ साधक पालक, कुलतत्त्व का ज्ञाता होता है तथा परतत्त्व में लीन हो जाता है। वह तेजस्वी, आनन्द, संसार का मोचक अणिमादि सिद्धियों का स्वामी तथा देवतास्वरूप हो जाता है ॥१४-२५॥

इस प्रकार सिद्धाश्रमस्थ परमहंस स्वामी श्रीनिखिलेश्वरानन्द जी
के शिष्य अजय कुमार उत्तम द्वारा श्री कालीतन्त्र के आचारविधि
नामक आठवें पटल की ***पद्मा*** *नामक*
हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥८॥

❖

अथ नवमः पटलः

विद्याफलविधिः

भैरव उवाच

एवं समस्तविद्यानां राज्ञी स्तोतुं न शक्यते ।
वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि ।।१।।

सर्वसिद्धिप्रदा भूमिरनिरुद्धसरस्वती ।
तस्मादस्या ज्ञानमात्रात् सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ।।२।।

अनिरुद्धसरस्वत्या ज्ञानमात्रेण साधकः ।
पाण्डित्ये च कवित्वे च वागीशं समतां व्रजेत् ।।३।।

तस्य पाण्डित्य वैदग्ध्यं विचित्रपदजल्पनात् ।
देवा अपि विलज्जन्ते किं पुनर्मानुषादयः ।।४।।

अपि चेत् त्वत्समा नारी मत्समः पुरुषोऽस्ति चेत् ।
अनिरुद्धसरस्वत्याः समानो नास्ति वै भुवि ।।५।।

अस्या जपो ब्रह्मजपो ज्ञानमस्यात्मचिन्तनम् ।
योगसन्धारणा सम्यक् ध्यानमस्या न संशयः ।।६।।

महापदि महापापे महाग्रह निवारणे ।
महाभये महोत्पाते महाशोके महोत्सवे ।।७।।

महामोहे महासौख्ये महादारिद्र्य सङ्कटे ।
महारण्ये महाशून्ये महास्थाने महारणे ।।८।।

दुराख्याने दुरावासे दुर्भिक्षे दुर्निमित्तके ।
समस्तक्लेशसंघाते स्मरणादेव नाशयेत् ।।९।।

पद्मा—इस प्रकार समस्त विद्याओं में से महाराज्ञीविद्या की स्तुति करोड़ों मुखों तथा करोड़ों जिह्वाओं से भी नहीं कही जा सकती है। अनिरुद्धसरस्वती समस्त सिद्धियों को प्रदान करनेवाली भूमि है। इसलिए इसके ज्ञानमात्र से ही अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। अनिरुद्धसरस्वतीके ज्ञानमात्र से साधक पाण्डित्य तथा कविता में बृहस्पति के

समानहोजाता है। विचित्र संभाषण से उसके पाण्डित्य निपुणताको देखकर देवता भी लज्जित हो जाते हैं फिर मनुष्यों का क्या कहना? यदि तुम्हारे समान नारी तथा मेरे समान पुरुष है तो अनिरुद्ध सरस्वती के समान भूलोक में और कोई मन्त्र नहीं है। इसका जप ब्रह्म जप है। इसका ज्ञान आत्मचिन्तन है। इसका सम्यक् ध्यान योग की धारणा है इसमें संशय नहीं है। घोर आपदा में, महापाप में, महाग्रह निवारण में, महाभय में, महोत्पात् में, महाशोक में, महोत्सव में, महामोह में, महासौख्य में, महादारिद्र्य में, संकट में, भयानक वन में, महास्थान में, महारण में, दुराख्यान में, दुरावास में, दुर्भिक्ष में, दुर्निमित्तक मे, समस्त क्लेश में इसके स्मरण मात्र से ही समस्त विघ्नों का नाश हो जाता है ॥१-९॥

अस्या ज्ञानं ब्रह्मज्ञानं ध्यानमस्यात्मचिन्तनम्।
तस्मादस्याः समाविद्या नास्तितन्त्रे न संशयः ॥१०॥
कुलामृतनिषेवी च कालीत्त्वार्थचिन्तकः।
ब्रह्मादिर्भुवने तस्य समो नास्ति कुतः परः ॥११॥
स एव सुकृती लोके स एवकुलभूषणः।
धन्या च जननी तस्य येन देवी समर्चिता ॥१२॥
वक्त्रे सरस्वती तस्य लक्ष्मीस्तस्य सदा गृहे।
तीर्थानि देहे तिष्ठन्ति येन देवी समर्चिता ॥१३॥
धनेन धननाथश्च तेजसा भास्करोपमः।
बलेन पवनो ह्येष येन देवी समर्चिता ॥१४॥
गानेन तुम्बुरुः साक्षाद्दाने कर्णसमस्तथा।
दत्तात्रेयसमो ज्ञानी येन देवी समर्चिता ॥१५॥
वह्निरिव रिपोर्हन्ता गङ्गेव मलनाशकः।
भुवि सूर्यसमः साक्षादिन्दोरिव सुखप्रदः ॥१६॥
पितृदेवसमः शास्ता कालस्यैव दुरासदः।
समुद्र इव गम्भीरो निर्ऋतेरिव दुर्द्धरः ॥१७॥
वृहस्पति समो वाग्मी धरणी सदृशः क्षमी।
कन्दर्पसदृशः स्त्रीणां येन देवीसमर्चिता ॥१८॥

पद्मा—इसका ज्ञान ब्रह्मज्ञान है इसका ध्यान आत्मचिन्तन है। इसलिए तन्त्रशास्त्र में इसके समान अन्य कोई विद्या नहीं है यह निःसन्देह सत्य है। जो कुलामृत का सेवन करनेवाला तथा काली के तत्त्वार्थ का चिन्तक है उसके समान ब्रह्मादि लोकों

में भी नहीं है अन्य की बात ही क्या है ? संसार में वही तपस्वी है और वही कुलभूषण है। उस साधक की माता धन्य है जिसके द्वारा देवी की पूजा की गयी है। उसके मुख में सरस्वती का वास होता है तथा लक्ष्मी घरमें निवास करती है। उसकी देह में तीर्थ स्थित रहते हैं जिसने देवी की पूजा की है। वह धनमें कुबेर के समान तथा तेज में सूर्य के समान, बल में पवन के समान है। जिसने देवी की पूजा की वह गायन में तुम्बुरु गन्धर्व के समान तथा दान में कर्ण के समान है तथा ज्ञानमें महायोगी दत्तात्रेय के समान है। जिसने देवी की पूजा की है वह शत्रुओं के मारने में अग्नि के समान तथा पवित्रता में गंगा के समान है। पृथ्वी पर वह सूर्य के समान तेजस्वी तथा चन्द्रमा के समान सुखप्रद है। वह पितृदेव के समान मार्गदर्शक तथा काल के समान दुर्धर्ष है। वह समुद्र के समान गम्भीर तथा निर्ऋति के समान दुर्धर है। वह वृहस्पति के समान वक्ता तथा पृथ्वी के समान क्षमाशील है, स्त्रियों के लिए कामदेव के समान है जिसने देवी की पूजा की है ॥१०-१८॥

अहोभाग्यमहो लोके कुलज्ञानपरायणः ।
तेषां मध्येऽपि य कोऽपि कालीसाधनतत्परः ॥१९॥
त्यजसि त्वं वरं चैतत् पुमांसं परमम् प्रियम् ।
मादृशं तु क्वचित् काले त्यजसि त्वं कथाचन् ॥२०॥
काली ज्ञानिनमासाद्य न त्यजसि कदाचन् ।
नहि काली समा विद्या नहि काली समं फलम् ॥२१॥
नहि कालीसमं ज्ञानम् नहि कालीसमम् तपः ।
ये गुणाः परमेशस्य पञ्चकृत्यविधायिनः ॥२२॥
ते गुणाः सन्ति सर्वज्ञे कालीतत्त्वस्य नान्यथा ।
कालिकाहृदयज्ञानी लतासाधनतत्परः ॥२३॥
देववन्मानवो भूत्वा लभेत् मुक्तिं शाश्वतीम् ।
इति ते कथितं सम्यक् कालिकातत्वमुत्तमम् ॥२४॥
अनेन सम्यगास्थाय सर्वधर्म फलम् लभेत् ॥२५॥

इति श्रीकालीतन्त्रे विद्याफलविधिः नाम नवमः पटलः ॥९॥

पद्मा—कुलज्ञानपरायण साधक पृथ्वी लोक में अहोभाग्यशाली होता है। इनके मध्य में जो कोई भी काली साधन में तत्पर होता है वह भी कुलज्ञानी हो जाता है। हे देवि! वह साधक तुम्हारा परमप्रिय होता है। तुम ऐसे परम प्रिय पुरुष का कभी भी त्याग नहीं करती हो। मुझ जैसे पुरुष को कदाचित् तुम छोड़ भी दोगे परन्तु काली के ज्ञानवाले पुरुषको तुम कभी भी नहीं छोड़ती है। काली के समान कोई विद्या नहीं है और काली के

समान कोई फल नहीं है। काली के समान कोई ज्ञान नहीं है और काली के समान कोई तप नहीं है। पञ्चकृत्यविधायी परमेश के जो गुण हैं हे सर्वज्ञे! वही कालीतत्व के ज्ञाता के भी गुण हैं। इसमें सन्देह नहीं है। कालिकाहृदय का ज्ञानी लतासाधन में तत्पर साधक पृथ्वी पर मनुष्यरूप में देवता जैसा होता है और शाश्वती मुक्ति प्राप्त करता है। यह मैंने श्रेष्ठ कालिकातत्व तुमसे कहा है। इसमें सम्यक् आस्था रखकर साधक सभी इच्छित फल प्राप्त कर लेता है ॥१९-२५॥

इस प्रकार सिद्धाश्रमस्थ परमहंस स्वामीनिखिलेश्वरानन्दजी के शिष्य आचार्य अजय कुमार उत्तम द्वारा श्री कालीतन्त्र के विद्याफलविधि नामक नवम पटल की **पद्मा** हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥९॥

❖

अथ दशमः पटलः

सिद्धविद्याविधिः

यथा काली तथा दुर्गा यथा दुर्था तथोन्मुखीम् ।
यथा तारा तथा काली यथा नीला तथोन्मुखी ।।१।।
दुर्गायाः कालिकायास्तु ध्यानम् सममिहोच्युते ।
महाचीनक्रमेणैव ताराशीघ्र फलप्रदा ।।२।।
गन्धर्वाख्य क्रमेणैव पञ्चमी भुक्तिमुक्तिदा ।
महाचीन क्रमेणैव कालिका फलदायिनी ।।३।।
कालिकोग्रमुखी शस्ता दत्तात्रेय विभाविता ।
सप्तसप्ततिभेदेन श्रीविद्या विदिता भुवि ।।४।।
तासां तु समता ज्ञेया गुप्त साधनसाधने ।
चत्वारिंशत् प्रकारा च भैरवी परिकीर्तिता ।।५।।
तासां तु समता ज्ञेया गुप्त साधन साधने ।
या या विद्या महाचण्डा तासामेष विधिर्मतः ।।६।।
महाचीन क्रमेणैव छिन्नमस्ता च सिद्धिदा ।
यस्मिन् मन्त्रे य आचारस्तस्मिन् धर्मस्तु तादृशः ।।७।।
कृतार्थस्तेन जायेत स्वर्गो वा मोक्ष एव वा ।
भ्रान्तिरत्र न कर्त्तव्या सिद्धिहानिस्तु जायते ।।८।।
विशुद्धचित्तोऽत्र भवेत् सिद्धिस्यादपवर्गदा ।
एवं तु तत्क्षणात् सिद्धिर्विस्मयो नास्ति चापरः ।
विस्मितां विलपं यान्ति पशवः शास्त्रमोहिताः ।।९।।

पद्मा—जो काली है वही दुर्गा है। जो दुर्गा है वही उन्मुखी है। जो तारा है वही काली है। जो नीला है वही उन्मुखी है। दुर्गा तथा काली के ध्यान भी एकसमान कहे गये है। महाचीन क्रम से तारा शीघ्र सिद्ध होती है। गन्धर्व क्रम से पञ्चमी (श्रीविद्या) भोग एवं मोक्ष देती है। महाचीन क्रम से कालिका फलदायिनी होती है। कालिका तथा उग्रमुखी श्रेष्ठ है। इनका दर्शन एवं ज्ञान भगवान् दत्तात्रेय ने प्राप्त किया। श्रीविद्या के ७७ भेद इस लोक में ज्ञात हैं। भैरवी विद्या के चालीस (४०) भेद ज्ञात हैं। इन सभी की समता गुप्त साधन की सिद्धि में है। जो जो विद्या महाचण्डा है उन सभी यही की विधि है। महाचीन क्रम से छिन्नमस्ता की सिद्धि होती है। जिस मन्त्र का जो आचार है उसी में

एकाग्रचित्त होकर साधन करे। ऐसा करने पर साधक को सिद्ध प्राप्त होती है तथा मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग व मोक्ष की प्राप्ति होती है। यदि भ्रमवश निर्दिष्ट आचरण से भिन्न किया जाता है तो सिद्धि की हानि होती है। विशुद्ध चित्त होने पर ही सिद्धि की पूर्णता होती है। इस प्रकार करने पर तत्क्षण सिद्धि होती है इसमें विस्मय नहीं करना चाहिए। विस्मय करने वाला व्यर्थ रुदन करता है और पशु शास्त्र से मोहित होता है ॥१-९॥

भैरव उवाच

कालीहृदयविद्याञ्च सिद्धविद्यां महोदयाम्।
पुरा येन यथा जप्त्वा सिद्धिमापुर्दिवौकसः ॥१०॥
कामाक्षरं वह्निसंस्थमिन्दिरानादविन्दुभिः।
मंत्रराजमिदं ख्यातं दुर्लभं पापचेतसाम् ॥११॥
सुलभं पुण्यचित्तानां साधकानां महात्मनाम्।
त्रिगुणा तु विशेषेण सर्वशास्त्रे प्रबोधिका ॥१२॥
अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशी पूजा नहि सारस्वतप्रदा ॥१३॥
आकर्षणवशीकारमारणोच्चाटनं तथा।
शान्तिपुष्ट्यादिकर्माणि साधयेदनयाऽचिरात् ॥१४॥
किं वक्तव्यमजेनापि वर्णितुं नैव शक्यते।
जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि ॥१५॥
अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं ज्ञानम् न भूतं न भविष्यति ॥१६॥
ध्यानपूजादिकं सर्वं स साधनपुरस्क्रियाम्।
अनिरुद्धसरस्वत्याः समानां समुदीरयेत् ॥१७॥

पद्मा—कालीहृदयविद्या ही महोदया सिद्धविद्या है। इसी विद्या को प्राचीन काल में देवताओं ने जपकर सिद्धि प्राप्त की थी। कामाक्षर 'क' वह्नि 'र' इन्दिरा 'ई' नाद बिन्दु (.) से संयुक्त होकर **क्रीं** यह मन्त्रराज बन जाता है। यह मन्त्रराज विद्या पापियों के लिए अत्यन्त ही दुर्लभ है। पुण्यचित्त वाले महात्मा साधकों के लिए यह विद्या अत्यन्त ही सुलभ है। क्रीं क्रीं क्रीं यह विद्या समस्त शास्त्रों में जाग्रत विद्या कही गयी है। इस विद्या के समान विद्या, जप, पूजा और कवित्व शक्ति प्रदायिनी कोई अन्य नहीं है। इस विद्या के द्वारा साधक आकर्षण, वशीकरण, मारण, उच्चाटन, शान्ति, पुष्टि आदि कर्मों में शीघ्र सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इस विद्या के सम्बन्ध में ब्रह्मा भी सैकड़ों करोड़ों जिह्वाओं तथा मुखों से वर्णन में समर्थ नहीं होसकते। इस विद्या के समान विद्या, इसके समान जप,

इसके समान ज्ञान न भूतकाल में हुआ है और न ही भविष्य में हीहोगा। इसका ध्यान, पूजा, साधन, पुरश्चरण सभी कुछ अनिरुद्ध सरस्वती के समान कहा गया है ॥१०-१७॥

रक्तैराकर्षणे पुष्पैः पीतैः स्तम्भनकर्मणि।
मारणे कृष्णपुष्पैस्तु पूजयेद् घोरदक्षिणाम्।।१८।।
आद्यैक बीजं बीजानां तथैवान्तेऽपि चैककं।
दक्षिणे कालिके चेति मध्ये संयोज्यमन्त्रवित्।।१९।।
स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य भवेदाकर्षणं महत्।
लोहिताकुशहस्तां च एकशूलधरां तथा।।२०।।
महाकालसमासीनां ध्यात्वा चाकर्षणं महत्।
स्थावरं जङ्गमं चैव पातालतलगं तथा।।२१।।
आकर्षयति मन्त्रज्ञः किमन्यद् भुवि योषितः।
अयुतैकजपः प्रोक्तः सदा कर्षणकर्मणि।।२२।।

पद्मा—लाल रंग के पुष्पों से आकर्षण का कार्य करे, स्तम्भनकर्म में पीले रंग के पुष्पों का प्रयोग करे, मारण कर्म में काले रंग के पुष्पों से दक्षिणाकाली का पूजन करे। **क्रीं हूँ ह्रीं दक्षिणेकालिके क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा** मन्त्र का उच्चारण करने पर अचूक आकर्षण होता है। इस आकर्षण कर्म में हाथ में लौह का अंकुश तथा एक शूल धारण किये हुये बैठे हुए महाकाल का ध्यान करे। इस मन्त्र का दश हजारजप करे। इस मन्त्र के प्रभाव से साधक स्थावर, जंगम, आकाश, पाताल आदि की समस्त युवतियों को आकर्षित कर लेता है। पृथ्वी लोक की युवतियों की बात ही क्या है ? इस मन्त्र का प्रयोग आकर्षण कर्मों में करे ॥१८-२२॥

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि वशीकरणमुत्तमम्।
कूर्चलज्जाद्वयं बीजद्वयं ठान्तं तथैव च।।२३।।
योजयित्वा जपेद् विद्यामयुतं वशयेद् ध्रुवम्।
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि येन वश्यं जगत् त्रयम्।।२४।।
नागयज्ञोपवीतां च चन्द्रार्धकृतशेखरां।
जटाजूटसमासीनां महाकाल समीपगाम्।।२५।।
एवं कामशराबिद्धा विह्वला काममोहिताः।
स्व स्व सन्त्यज्य भर्तारं यान्ति लोक त्रयाङ्गनाः।।२६।।

पद्मा—अब मैं वशीकरण के लिए श्रेष्ठ मन्त्र कहूँगा। **हूं हूं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा** लगाकर विद्या का दश हजार जप करने पर निश्चित रूप से वशीकरण होता है। इसका ध्यान कहता हूँ जिससे तीनों लोक वश में हो जाते हैं। भगवान् शिव (महाकाल)

नाग का यज्ञोपवीत धारण किये हुए हैं उनके सिर पर चन्द्रमा विराजित हैं वे जटाजूट से युक्त हैं। ऐसा ध्यान करके मन्त्र का जप करने पर काम बाणों से बिद्ध और विह्वल तथा काम मोहित होकर तीनों लोक की नवयौवनायें अपने अपने पतियों को छोड़कर साधक के समीप आती है ॥२३-२६॥

अथ वक्ष्ये महाविद्यां सिद्धविद्यां महोदयाम्।
भैरवेण पुरा प्रोक्ता कालीहृदयसंज्ञिता ।।२७।।
अस्या ज्ञान प्रभावेण पालयामि जगत्त्रयम्।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य पपञ्चमभगान्वितम्।
ठद्वयेन समायुक्ता विद्याराज्ञी मयोदिता ।।२९।।
अनया सदृशी विद्या कालिकायास्तु दुर्लभा।
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो विराट् छन्द उदीरितम् ।।३०।।
सिद्धकाली ब्रह्मरूपा देवता भुवनेश्वरी।
रतिबीजं बीजमस्या हल्लेखा शक्तिरुच्यते ।।३१।।
हल्लेखया षड्दीर्घेन प्रणवाद्येन कल्पयेत्।
अङ्गषट्कं ततो न्यस्य ध्यात्वा देवीं शिवो भवेत् ।।३२।।

पद्मा—अब मैं भगवती काली की महाविद्या को कहता हूँ। इसे ही सिद्धविद्या एवं महोदया भी कहा जाता है। इस कालीहृदय संज्ञक मन्त्र को सर्वप्रथम भैरव ने प्राचीन काल में कहा था। इस विद्या के ज्ञान से ही तीनों लोकों का पालन होता है। सर्वप्रथम प्रणव (ॐ) को उद्धृत्य कर हल्लेखा बीज (ह्रीं) को उद्धृत करे। इसके पश्चात् रतिबीज (क्रीं) का उद्धार कर भगयुक्त पपञ्चम (मे) का उद्धारकर ठद्वय (स्वाहा) से युक्त करें। इस प्रकार **ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा** यह विद्याराज्ञो मन्त्र मैंने कहा है। इसके समान कालिका की विद्या अतिदुर्लभ है। इस विद्या के ऋषि भैरव, छन्द विराट, देवता सिद्धकाली ब्रह्मरूपा भुवनेश्वरी, बीज क्रीं और शक्ति ह्रीं है। आदि में प्रणव लगाकर षडदीर्घ बीजों से न्यास करे। यथा—ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि। इस प्रकार न्यास करके देवी का ध्यान करने पर साधक शिवस्वरूप हो जाता है ॥२७-३२॥

खड्गोद्भिन्नेन्दुबिम्बस्रवदमृतरसाप्लाविताङ्गी त्रिनेत्रा।
सव्येपाणौ कपालाद्गलदमृतमथोमुक्तकेशी पिबन्ती ।।३३।।
दिग्वस्त्रा बद्धकाञ्ची मणिमयमुकुटाद्यैर्युता दीप्तजिह्वा।
पायान्नीलोत्पलाभा रविशशिविलसत्कुण्डलालीढ पादा ।।३४।।

पद्मा—खड्ग से उद्भिन्न चन्द्रमण्डल से चूते हुए अमृत की धारा से जिनका समपूर्ण शरीर भीगा हुआ है जिनके तीन नेत्र हैं। बायें हाथ में नरकपाल है और उसी में अमृत का पान कर रही हैं, जिनके केश बिखरे हैं, जो नग्नदेह की हैं, कमर में करधनी,

सिर पर मणियों का मुकुट है जिह्वा लपलपाती हुई है, समपूर्ण शरीर की कान्ति नीलकमल के समान है। दोनों कानों के कुण्डल सूर्य एवं चन्द्र के समान शोभायमान है, जो आलीढ़पद पर खड़ी हैं, ऐसी देवी हमारी रक्षा करें ॥३३-३४॥

जपेद् विंशतिसाहस्रं सहस्रैकेण संयुतम्।
होमयेत्तद्दशांशेन मृदुपुष्पेण मन्त्रवित्॥३५॥
त्रिकोणं कुण्डमालिख्य सिद्धविद्या शिवो भवेत्।
पूजनम् च प्रयोगं च दक्षिणावदुपचारेत्॥३६॥
एकाक्षर्या महाकल्प समानसर्वमेव वा।
रक्तपद्मस्थ होमेन साक्षाद् वैश्रवणो भवेत्॥३७॥
बिल्वपत्रस्य होमेन राज्यं भवति निश्चितम्।
रक्तप्रसून होमेन वशयेदखिलं जगत्॥३८॥
पीतपुष्पस्य होमेन स्तभयेद् वायुमप्यथ।
मालतीपुष्प होमेन साक्षाद् वाक्पतिसन्निभिः॥३९॥
कृष्णपुष्पस्य होमेन शत्रून् मारयतेऽचिरात्।
अत्र सर्वस्य होमस्य संख्या स्यादयुतावधि॥४०॥
अस्याः स्मरणमात्रेण महापातककोटयः।
सद्यः प्रलयमायान्ति साधकः खेचरो भवेत्॥४१॥

इति श्रीकालीतन्त्रे सिद्धविद्या विधिः नाम दशमः पटलः॥१०॥

पद्मा—इस छः अक्षर के मन्त्र का पुरश्चरण इक्कीस हजार मन्त्र के जप करने से होता है। साधक शिरीष के पुष्प से हवन करे। हवन त्रिकोण कुण्ड में ही करे। यह सिद्धविद्या का पुरश्चरण है। इसको करने वाला साक्षात् शिव ही हो जाता है। पूजन तथा प्रयोग भगवती दक्षिणा कालिका के एकाक्षर मन्त्र की भाँति करे। लाल कमल के होम से साधक साक्षात कुबेर के समान हो जाता है। बिल्वपत्र के होम से राज्य लाभ होता है यह निश्चित है। रक्त कुसुम के होम से सम्पूर्ण जगत् वशीभूत होता है। पीतपुष्प के होम से स्तम्भन तथा मालती पुष्प के होम से साक्षात् बृहस्पति के समान हो जाता है। काले पुष्पों के होम से शत्रु शीघ्र ही यम के यहाँ पहुँच जाता है। इन सभी होमों मे होम की संख्या दश हजार है। इस मन्त्र के स्मरण मात्र से करोड़ो पाप नष्ट होकर साधक शीघ्र ही खेचरता को प्राप्त हो जाता है ॥३५-४१॥

इस प्रकार सिद्धाश्रमस्थ परमहंस स्वामी श्री निखिलेश्वरानन्द जी के शिष्य आचार्य अजय कुमार उत्तम द्वारा श्रीकालीतन्त्र के सिद्धविद्याविधि नाम दशवें पटल की **पद्मा** हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥१०॥

अथ एकादशः पटलः

सामान्य साधनम्

भैरव उवाच

अथोच्यते कालिकायाः सामान्यसाधनं प्रिये !।
कृतेन येन विधिवत् पलायन्ते महापदः ।।१।।

पद्मा—श्री भैरव ने कहा–हे प्रिये ! अब मै कालिका का सामान्य साधन कहता हूँ जिसके विधिवत करने मात्र से ही सभी आपदायें दूर हो जाती हैं ॥१॥

शिवाबलिश्च दातव्यः सर्वसिद्धिमभीप्सुभिः ।
महोत्पाते महाघोरे महारोगे महाग्रहे ।।२।।
महापदि महायुद्धे महाविग्रहसंकुले ।
महादारिद्र्यशमने महादुःस्वप्नदर्शने ।।३।।
महाशान्तौ महावश्ये महास्वस्त्ययने तथा ।
घोराभिचारशमने घोरोपद्रवनाशने ।।४।।
कूटयुद्धादिशमने कूटशत्रुनिवारणे ।
रात्रादिभयशान्तौ च राजक्रोध प्रशान्तये ।।५।।
न ददाति बलिं यस्तु शिवायै शिवतृप्तये ।
स पापिष्ठो नाधिकारी कुलदेव्याः समर्चने ।।६।।

पद्मा—सिद्धि के इच्छुक सभी साधकों को शिवा बलि प्रदान करनी चाहिए महा उत्पात के समय, महाभय के समय, भयानक रोग के समय, ग्रह पीड़ा के समय, महान् विपदा के समय, भयानक युद्ध, महाविग्रहसंकुल, महादारिद्र्यशमन, महादुःस्वप्न दर्शन के समय, महाशान्ति के समय, महान् वशीकरण के समय, महास्वस्त्ययन, घोर अभिचार के शमन मे, घोर उपद्रव के नाश मे, कूटयुद्धादि के शमन मे, कूट शत्रु के निवारण मे, राजादि भय की शान्ति मे, राजक्रोध की शान्ति हेतु देवी के लिए शिवा बलि प्रदान करे। जो पापी पुरुष भगवान् शिव की तृप्ति हेतु शिवा बलि नही देता है वह कुल देवी के पूजन का अधिकारी नही है ॥२-६॥

कुलीनं नावमन्येत कुलजां परिपूजयेत् ।
कुलजेषु प्रसन्नेषु कालिकासन्निधिर्भवेत् ।।७।।

अहो धन्यवतां लोके जानाति कुलदर्शनम् ।
तेषां मध्ये च यः कोऽपि कुलदेवीं समर्ययेत् ।।८।।
कुलाचारविहीनो यः पूजयेत् कालिकां नरः ।
स स्वर्गमोक्षभागी च न स्यात् सत्यं न संशयः ।।९।।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं बलं पुष्टिर्महद्यशः ।
कवित्वं भुक्तिमुक्ति च कालिकापादपूजनात् ।।१०।।
शुक्लेन ध्यानयोगेन कवितावशवर्तिनी ।
पीतेन ध्यानयोगेन स्तम्भयेदखिलं जगत् ।।११।।
कृष्णाभा शत्रुमरणे धूम्राभा वैरिनिग्रहे ।
अनया विद्यया मन्त्री स्पृशेत् पातकिनं यदि ।।१२।।
स तु संस्पर्शमात्रेण वक्ति सौधीमनर्गलां ।
कुमारीपूजनं कुर्यात् सर्वधर्मफलाप्तये ।।१३।।

पद्मा—कुलीन साधक का अपमान न करे । कुलजा का पूजन करे । कुलजा के प्रसन्न होने पर कालिका का सान्निध्य प्राप्त होता है । अहो ! वह धन्य हैं जो कुलदर्शन को जानते हैं । उनके मध्य भी वह श्रेष्ठ है जो कुलदेवी का पूजन करता है । कुलाचार को जाने बिना जो साधक भगवती कालिका का पूजन करता है वह स्वर्ग एवं मोक्ष का भागी नही हो सकता यह नि:सन्देह रूप से सत्य है । आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, बल, पुष्टि, महायश, कविता, भोग एवं मोक्ष भगवती काली के चरणों के पूजन से प्राप्त हो जाते हैं । शुक्ल वर्ण के ध्यान से कविता करने की अपूर्व शक्ति आ जाती है । पीतवर्ण के ध्यान से सम्पूर्ण जगत् का वशीकरण होता है । कृष्णवर्ण के ध्यान से शत्रु का मारण, धूम्रवर्ण के ध्यान से शत्रु पर नियन्त्रण होता है । इस विद्या के द्वारा मन्त्र का साधक जिस पातकी व्यक्ति का स्पर्श कर लेता है उसके स्पर्श मात्र से वह अनियन्त्रित अमृतमयी वाणी बोलने लगता है । सर्व-धर्म के फल की प्राप्ति के लिए कुमारी पूजन करे ॥७-१३॥

भैरव उवाच

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि प्रयोगं शत्रुनिग्रहम् ।
सर्वान्ते वह्निवनितां योजयित्वाऽयुतं जपेत् ।।१४।।
कालिकां द्विभुजां कर्तृकपाले सव्यदक्षिणे ।
एवं ध्यात्वा तु शत्रूणां मारणं समुपचारेत् ।।१५।।

पद्मा—शत्रु निग्रह का अब मैं अन्य प्रयोग कहता हूँ । मन्त्र के अन्त में स्वाहा जोड़कर मन्त्र का दश हजार जप करे और द्विभुजा कालिका का ध्यान करे जो अपने बायें हाथ में कैची तथा दाहिने हाथ में कपाल लिये हुए हैं । इस प्रकार ध्यान कर शत्रु मारण का प्रयोग करे ॥१४-१५॥

एवं कालीमतं प्रोक्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
अनया विद्यया सम्यक् साधयेत् स्वमनीषितम् ।।१६।।
अनया विद्यया यद्यन्न साधयति साधकः ।
तत्तत् सर्वेषु तन्त्रेषु नास्ति सत्यं न संशयः ।।१७।।

पद्मा—इस प्रकार कालीमत सर्वसिद्धिप्रदायक कहा गया है । इस विद्या को अपनी बुद्धि विवेक के द्वारा भली भाँति साधन करे । यदि साधक इस विद्या का साधन नही करता है तो सभी तन्त्रों में उसके लिए अन्य कोई विद्या नही है यह नि:संदेह रूप से सत्य है ॥१६-१७॥

कालः नियन्त्रणात् काली ज्ञानतत्त्वप्रदायिनी ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यजेदुभयसिद्धये ।।१८।।
कालीमतमिदं दिव्यं भैरवेन प्रकाशितम् ।
न कुत्रापि प्रवक्तव्यं साधते च स्वपौरुषम् ।।१९।।
एतत्तन्त्रं च मन्त्रं च ध्यानं चैव प्रपूजनम् ।
प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यात् तस्माद् यत्नेन गोपयेत् ।।२०।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गोप्तव्यं देवतागणैः ।
यथा मनुष्यो लभ्येत तथा कार्यं महेश्वरि !।
यो भक्तः साधयेद् ज्ञानी तस्मै नित्यं प्रकाशयेत् ।।२१।।

इति श्रीकालीतन्त्रे सामान्य साधनं नाम एकादशः पटलः ।।११।।

पद्मा—काल को भी सभी काल में नियन्त्रण करने से भगवती कालिका काली कहलाती है । भगवती काली ज्ञान तत्त्व को देने वाली कही गयी हैं । इसीलिए मन्त्रसाधक इनकी उपासना सभी प्रयन्त करके करे । इस दिव्य काली मत को भगवान भैरव ने प्रकाशित किया है । इस दिव्य शास्त्र को कहीं भी किसी से नही कहना चाहिए और अपने पौरुष से सिद्ध करना चाहिए । इनका तन्त्र, मन्त्र, ध्यान तथा पूजन कहीं भी प्रकाशित नही करना चाहिए । प्रकाशित करने पर सिद्धि की हानि होती है इसलिए इसे प्रयत्न पूर्वक गोपनीय रखे, देवताओं को भी न बताये । हे महेश्वरि ! मनुष्य जिस प्रकार से इस विद्या से लाभ प्राप्त कर सके उसे बताये । जो देवी का भक्त हो उसे कुल ज्ञानी साधक उसको ज्ञान दे ।

इस प्रकार सिद्धाश्रमस्थ परमहंस स्वामी श्रीनिखिलेश्वरनन्द जी के शिष्य आचार्य अजय कुमार उत्तम द्वारा श्री कालीतन्त्र के सामान्य साधन नामक एकादश पटल की **पद्मा** हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥११॥

अथ द्वादशः पटलः

परमगुह्याचारः

भैरव्युवाच

त्वयोक्तं पूजनम् देवं! साधनेन पुरस्कृतम्।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि वीरनित्यक्रियाम् प्रभो!।।१।।

पद्मा—श्री भैरवी ने कहा–हे प्रभो ! हे देव ! आपने भगवती काली का पूजन एवं साधन कहा है । अब मेरी इच्छा वीर नित्य क्रिया को सुनने की है ॥१॥

भैरव उवाच

प्रातः कृत्यं ततो न्यास ऋष्याद्यङ्गाङ्गलैरपि।
वर्णव्यापक विन्यासः पीठन्यासस्ततः परम्।।२।।
ततोऽन्तर्यजनं देवि! योगियोगानिशा प्रिये!।
पञ्चमानाम् प्राशनम् च जपौ रात्रौ विधानतः।।३।।
स्तोत्रपाठो यत्र तत्र समये च वरानने।
वीरश्रद्धा तर्पणम् च तथालापः स्त्रियामपि।।४।।
विजयाङ्गी कृतिश्चैव स्वसुखोद्देशिनम् तथा।
अप्रकाशः कुलाचारे मृदुभाषा च सर्वतः।।५।।
गुर्वनुज्ञामात्रेणैव सर्वाचारविधिः प्रिये!।
एवमादीनि चान्यानि वीरनिन्दा न सुव्रते!।।६।।

पद्मा—श्री भैरव ने कहा–वीर साधक प्रातः कृत्य करने के पश्चात् ऋष्यादिन्यास, अङ्गन्यास एवं करन्यास का न्यास करे । वर्ण व्यापक न्यास करने के पश्चात् पीठन्यास रात्रि और अन्तर्यजन करे । यह सब निशाकाल मे करे । पञ्चमकार का सेवन करके वीर साधक रात्रि विधान के अनुसार जप करे । हे वरानने ! जब भी समय मिले स्तोत्र का पाठ करे । वीर साधक श्रद्धापूर्वक तर्पण तथा स्त्रियों से वार्तालाप करे । विजया (भाँग) के ग्रहण में उसकी रुचि अवश्य हो । कुलाचार को गोपनीय रखे तथा सभी से मीठी वाणी में बोले । हे प्रिये ! सभी प्रकार के आचारों में श्री गुरुदेव की आज्ञा की एकमात्र विकल्प है । हे सुव्रते ! इसी प्रकार वीर साधकों की निन्दा न करे ॥२-६॥

ऐति परम्परया ह्येन तच्चीने च प्रतिष्ठितम्।
अन्यत्र विषयेन्नास्ति सत्यमेतद् ब्रवीमिते।।७।।

वामाचारः कुलाचारश्चीननाथेन शङ्करात् ।
प्रकाशितः शङ्करेण महारुद्रात प्रकाशितः ।।८।।
महाचीनाधिपो देवो महात्म्येन तयोर्द्वयोः ।
कुलाचारं कुलश्रेष्ठे ! वामाचारः प्रयत्नतः ।।९।।
अस्यैवाशेषमाहात्म्यं चीनतन्त्रं मयोदितम् ।
कुलाचारमशेषेण चीननाथेन वेत्त्यपि ।।१०।।

पद्मा—परम्परा से चीन देश में यह विद्या प्रतिष्ठित है, यह मैं सत्य कहता हूँ वामाचार और कुलाचार भगवान् शंकर से चीननाथ ने प्राप्त किया था । चीननाथ ने इस विद्या को तिब्बत व चीन में प्रचारित किया था । भारत से यह विद्या चीननाथ के द्वारा ही गयी थी । महाचीन का शासक भगवती काली व भगवान शिव की कृपा से प्रभाव में देवताओं के समान हो गया था । हे कुलश्रेष्ठे ! कुलाचार एवं वामाचार का विधान प्रयत्न करके भी प्राप्त करना चाहिए इसका शेष माहात्म्य मैने चीन तन्त्र मे कहा है । कुलाचार का शेष रहस्य चीननाथ भी जानते हैं ॥७-१०॥

यद्यद् दृष्टं श्रुतं यद् यद् गुरुः साधक वक्त्रतः ।
तत्तत् कार्यं वीरवर्यैस्तेन सिद्धिर्भवेत् प्रिये !।।११।।
क्वचिच्चण्डः क्वचिद्भण्डः क्वचिद्भूतपिशाचवत् ।
क्वचिद्देवार्च्चनरतः क्वचित्तन्निन्दकस्तथा ।।१२।।
भवेच्छीलरतो वीरो महारुद्रस्य शासनात् ।
भक्षणं च विधिं वक्ष्ये पञ्चमादेर्यथाविधि ।।१३।।

पद्मा—हे प्रिये ! वीर साधक श्री गुरुदेव को जो भी करते देखे सुने अथवा उनके कहे गये वाक्य का पालन करे । ऐसा करने पर ही वीर साधक को सिद्धि की प्राप्ति होती है । साधक को इस दुर्गम साधना मार्ग में कही पर चण्ड, कहीं भण्ड, कहीं भूतप्रेत पिशाच, कहीं पर पुजारी तथा कहीं पर कुलमार्ग का निन्दक बनकर साधना करनी होगी। भगवान् रुद्र की आज्ञानुसार वीर साधक शीलवान होकर रहे । अब मै पञ्चमकार के सेवन की विधि कहता हूँ ॥११-१३॥

आदौ गुरुं स्मरन् पश्चात्कुण्डलीं परिभाव्य च ।
आजिह्वान्तस्पर्शणेन भक्षयेन्नतिपूर्वकम् ।।१४।।
गुरु नत्वा तपोज्येष्ठं शक्तैर्नतिपरायणः ।
ज्येष्ठत्वं वा कनिष्ठित्वं वा कुलाचार विधानातः ।।१५।।
अभिषेक्ता गुरुः साक्षान्मन्त्रदेन समः स्मृतः ।
अभिषेके विनाभूते प्रधानत्वं करोति यः ।।१६।।

चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्यायशोबलम्।
तद्विधिश्चोत्तरातन्त्रे पाशवेन विमिश्रितः ।।१७।।
वीरैर्ग्राह्यः प्रयत्नेन हंसैः क्षीरंजलादूयथा।
आचारोऽयं शक्तिमन्त्रे सर्वत्र परिकथ्यते ।।१८।।

पद्मा—सर्वप्रथम श्रीगुरुदेव का स्मरण कर कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान करे और यह चिन्तन करे कि वह जिह्वा के अन्तिम भाग को स्पर्श कर रहा है उसे प्रणाम कर भक्षण करे। श्री गुरुदेव को प्रणाम कर तप में वरिष्ठ तथा शक्ति को प्रणाम कर ज्येष्ठ व कनिष्ठ के क्रम से कुलाचार का विधान करे। अभिषेकयुक्त साधक को साक्षात् मन्त्रप्रदाता गुरु सम्मान समझे। विना 'अभिषिक्त हुये जो साधक प्रधानता करता है उसके आयु, विद्या, यश एवं बल यह चार अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं। उसकी विधि उत्तरातन्त्र में कही गयी है जो पशुभाव से मिश्रित है। वीर साधक को उसको उसी प्रकार ग्रहण करना चाहिए जिस प्रकार से दुग्ध में मिश्रित जल को इस पृथक कर देता है। शक्ति मन्त्र के लिये यही आचार सर्वत्र कहा गया है ॥१४-१८॥

विशेषत् कालिका तारा भैरव्यादिषु पञ्चसु।
कालिका तारिणी भेदं यः करोति स नारकी ।।१९।।
यत्र तत्र कालिकेति नाम संश्रूयते प्रिये!
तत्र तारा विधानं च युते नात्र तु संशयः ।।२०।।
यद्यदन्यत् साधनं च नान्यदत्रापि नोदितम्।
तत् सर्वं पूर्वपूर्वेण तन्त्रेन ज्ञायते प्रिये!।।२१।।
न पूजा न्यासजालं वा स्त्रीणां केवल जापतः।
सिद्धिर्भवति देवेशि! कुलाचार विधानतः ।।२२।।
अथ चेत्क्रियते न्यासस्तदा शृणु विधिं प्रिये!।
ऋष्याद्यङ्गकपीठानां न्यासं कृत्वा च संस्मरेत् ।।२३।।
ततः सोऽहमिति ध्यायेन् महाचीन मतं यथा।
कालीतन्त्रं कौलतन्त्रं तारातन्त्रं तथा प्रिये!।।२४।।
चीनतन्त्रम् स्वतन्त्रम् च युगपदवक्त्रतः स्मृतम्।
अथ यद्यन्मतं प्रोक्तं तत्पञ्चसु समाचरेत् ।।२५।।
गुरुपाद प्रसादेन शुभादृष्टस्य योगतः।
आचारः प्राप्यते वीरैर्नात्रकार्यश्च संशयः।
तदैव तुष्टा सा देवी निर्विकल्पः स्वयं यदि ।।२६।।

इति श्रीकालीतन्त्रे परमगुह्याचारः नाम द्वादश पटलः ।।१२।।

पद्मा—इस आचार का काली, तारा, भैरवी, आदि पाँच महाविद्याओं की साधना में इसका विशेष महत्त्व है। हे प्रिये ! काली और तारा में जो भी भेद करता है वह नरकगामी होता है। जहाँ पर काली का विधान है वहीं पर तारा की विधि की समझना इसमें संशय नही है। हे प्रिये ! जो साधन यहाँ पर नही कहे गये है वे पूर्व में कहे गये अन्य तन्त्रों से प्राप्त कर लेना चाहिए। स्त्री यदि साधिका हो तो उसे पूजा व न्यासजाल में न पड़कर केवलमात्र कुलाचार की विधि से जप करना चाहिए। यदि वह न्यासादि करने की कामना करती हो तो उसे ऋष्यादि न्यास, अंगन्यास, पीठन्यास करने के पश्चात् ध्यान करना चाहिए। फिर सोऽहम अर्थात् वह महाकाली मै ही हूँ ऐसी भावना करके महाचीनमत से ध्यान करे। हे प्रिये ! कालीतन्त्र, कौल तन्त्र, तारातन्त्र, चीनतन्त्र, स्वतन्त्र तथा श्री गुरुदेव के मुख से निर्गत तन्त्र से इनके रहस्य कहे गये है। उन्हीं के अनुसार आचरण करे। श्री गुरुदेव की कृपा से शुभ तथा अदृष्ट भी ज्ञात हो जाता है। वीरों को ही आचार की प्राप्ति होता है इसमें संशय नही है इसलिए सभी कर्म गुरु उपदिष्ट मार्ग से करे। साधक आदि श्रीगुरुदेव और देवी के प्रति सन्देह रहित भक्ति रखता है तभी देवी सन्तुष्ट होती है ॥१९-२६॥

इस प्रकार सिद्धाश्रमस्थ परमहंस स्वामी श्री निखिलेश्वरानन्द जी के शिष्य आचार्य अजय कुमार उत्तम द्वारा श्री कालीतन्त्र के परमगुह्याचार नामक द्वादश पटल की **पद्मा** हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥१२॥

इस प्रकार यह काली तन्त्र भी पूर्ण हुआ।

❖

श्री कालीतन्त्रम्

उत्तरार्द्धम्

फेत्कारिणी तन्त्रोक्त–

श्रीदक्षिण कालिका साधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पुण्याप्त्यै दक्षिणाविधिम् ।
सर्वसिद्धिप्रदं साक्षान्महापातकनाशनम् ।।१।।
दैवैर्देवत्वविषये सिद्धैः खेचरसिद्धये ।
गन्धर्वैर्दानवैर्यक्षैः स्वस्वकार्यार्थसिद्धये ।।२।।
पन्नगै राक्षसैर्मर्त्यैर्मुनिभिश्च मुमुक्षुभिः ।
कामिभिर्धर्मिभिश्चार्थलिप्सुभिः सेवितां सदा ।।३।।
देवीं दक्षिणसंज्ञां तां प्रवक्ष्यामि यथा मुने ।
करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम् ।।४।।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषणम् ।
सद्यश्छिन्नशिरः खड्गवामाधोर्ध्वकराम्बुजाम् ।।५।।
अभयं वरदं चैव दक्षिणाधोर्ध्वपाणिकाम् ।
महामेघप्रभां श्यामां तव चैव दिगम्बराम् ।।६।।
कण्ठावसक्तमुण्डालीं गलद्रुधिरचर्चिताम् ।
कर्णावतंसतां नीतशवयुग्मभयानकाम् ।।७।।
घोरदंष्ट्रां करालास्या पीनोन्नतपयोधराम् ।
शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम् ।।८।।
सृक्कद्वयगलद्रक्तधारा विस्फुरिताननाम् ।
घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम् ।।९।।
दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम् ।
शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम् ।।१०।।
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम् ।
महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम् ।।११।।
सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम् ।
एवं सञ्चिन्त्य कालीं तु श्मशानालयवासिनीम् ।।१२।।

प्रवक्ष्यामि मनुं तस्याः सर्वकामप्रदायकम् ।
वर्गाद्यं वह्निसंस्थं च रतिबिन्दुसमन्वितम् ।।१३।।
त्रिगुणञ्च ततः कूर्चयुग्मं लज्जायुगं ततः ।
दक्षिणे कालिके चेति पूर्ववच्च ततः पुनः ।।१४।।
उद्वयेन समायुक्तं मनुमेनं विदुर्बुधाः ।
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदो नृणाम् ।।१५।।
क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं दक्षिण कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।
नात्र शुद्ध्याद्यपेक्षास्ति न वा मित्रारिदूषणम् ।
न वा प्रयासबाहुल्यं समयासमयादिकम् ।।१६।।
न वित्तव्ययबाहुल्यं कायक्लेशकरं न च ।
य एनं चिन्तयेन्मन्त्री सर्वकामसमृद्धिदम् ।।१७।।
तस्य हस्ते सदैवास्ति सर्वसिद्धिर्न संशयः ।
गद्यपद्यमयी कणी सभायां तस्य जायते ।।१८।।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनाश्च पराजिताः ।
राजानोऽपि हि दासत्व भजन्ते किं परे जनाः ।।१९।।
वह्नेः शैत्यं जलस्तम्भम् गतिस्तम्भं विवस्वतः ।
दिवारात्रिव्यत्ययश्च स कर्तुं भवति क्षमः ।।२०।।
ब्रह्महत्या सुरापानमगम्यागमनं तथा ।
सर्वमाशु हरत्येव दक्षिणामेव चिन्तयेत् ।।२१।।
वागीश्वरसमो वाचि धनैर्धनपतिर्भवेत् ।
कामतुल्यः स नारीणां रिपूणां च यमोपमः ।।२२।।
सर्वस्येह जनस्येह वल्लभः कीर्तिवर्द्धनः ।
अन्ते च लभते देव्या दुर्लभाञ्च गतिं नरः ।।२३।।
चन्द्रसूर्यप्रभो भूत्वा वसेत् कल्पायुतं दिवि ।
इत्येवमादिकं चैव बहुना कथ्यते पुनः ।।२४।।
न तस्य दुर्लभं किञ्चिद् यः स्मरेद् घोरदक्षिणाम् ।
नागयज्ञोपवीताञ्च चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।।२५।।
जटाजूटञ्च सञ्चिन्त्य महाकालीसमीपगाम् ।
कूर्चलज्जायुगं बीजद्वयं चान्ते तथैव च ।।२६।।
एवं सञ्चिन्त्य देवीं तु रक्तपुष्पैः समर्चयेत् ।
कामबाणसदाविद्धा निर्लज्जा विह्वला स्त्रियः ।।२७।।

स्वं स्वं सन्त्यज्य भर्त्तारमालिङ्गन्ते सदैव तम्।
लोहिता शूलहस्तां तामेकशूलधरां तथा ।।२८।।
महाकालसमीपस्थां ध्यात्वा पीतैः सुपुष्पकैः।
अभ्यर्च्य कालिकां पश्चात्तथैवान्तेऽपि योजयेत् ।।२९।।
आकर्षणाम् भवत्येव सदा स्थावरजङ्गमम्।
स्वर्गपातालगम् चापि किमन्यद् भूतले स्थितम् ।।३०।।
आकर्षयति सर्वं हि महाकालवचो यथा।
कपिलां द्विभुजां कर्तृकपालसव्यदक्षिणाम् ।।३१।।
ध्यात्वैवं हि च सर्वस्य चान्ते च द्वयमेव हि।
एवं प्रजप्य पुष्पेण कृष्णेनैनां प्रपूजयेत ।।३२।।
मारणं हि भवत्यस्य यमुद्दिश्य कृता क्रिया।
उच्चाटयति पिङ्गाक्षी संत्रासयति केकरी ।।३३।।
विद्रावयति मुक्तास्या प्रोन्मत्तयत्ति घूर्णिता।
विक्षोभपति संक्रुब्धा संपादयति सायुधा ।।३४।।
संकोचयति संक्रुद्धा विप्रलब्धा विरोधयेत्।
यं पं भावं जनो नेयस्तद्भावस्थां स्मरेद्यदि ।।३५।।
अत्र सर्वं प्रकर्तव्यं भावमात्रं विचिन्तयेत्।
उच्चाटयति नैवात्र सर्वत्र सुरतो मतः ।।३६।।
स्नातः शुक्लाम्बरधरः कृतनित्यक्रियो दिवा।
रात्रौ नग्नः शयानश्च मैथुने च व्यवस्थितः ।।३७।।
अथवा मुक्तकेशश्च तेन स्युः सर्वसिद्धयः।
स्तम्भन मोहनञ्चैव वशीकारो विशेषतः ।।३८।।
नग्नां परस्त्रियं वीक्षन् प्रजपेदयुतं नरः।
निकेतः सर्वविद्यानां पारगः सर्वदैव हि ।।३९।।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभा मताः।
गद्यपद्यमयी तस्य वाणी सर्वविधा भवेत् ।।४०।।
अथवा मुक्तकेशश्च हविष्यं भक्षयेन्नरः।
प्रजपेदयुतं तावदेवं प्रतिविधिः स्मृतः ।।४१।।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा भागमामन्त्रणेन च।
मैथुनं यः प्रयात्येवं धनधान्यसुतान्वितः ।।४२।।
सर्वविद्यावतां श्रेष्ठो भवेद्वै नात्र संशयः।
ऋतुमत्या भगं पश्यन् प्रजपेदयुतं नरः ।।४३।।

बालिशस्यापि तद्वाणी गद्यपद्यमयी भवेत् ।
छन्दोबद्धा च वै तस्य वाणी वक्त्रात् प्रवर्तते ।।४४।।
सुरतेषु सदा जप्यं महापातकमुक्तये ।
धनागमाय च तदा परयोषा समागते ।।४५।।
यदि योषिन्नसंसर्गस्तदा रेतः प्रयत्नतः ।
समुत्सार्य ततो जप्यं सर्वकामार्थसिद्धये ।।४६।।
श्मशानालयमागत्य मुक्तकेशो दिगम्बरः ।
जपेदयुतसंख्यं तु सर्वकामार्थसिद्धये ।।४७।।
तत्रैव प्रेतमावास्य यो जपेन्मन्त्रवित्तमः ।
अयुतं वाग्यतो भूत्वा बिभीषिकपरायणः ।।४८।।
स याति परमां सिद्धिं देवैरपि सुदुर्लभाम् ।
आकर्षणम् वशीकारोच्चाटनं बोधनं तथा ।।४९।।
स्तम्भनं मोहनञ्चैव भासनं द्रावणं तथा ।
वाग्मित्वञ्च धनित्वञ्च बहुपुत्रत्वमेव च ।।५०।।
बहुबल्लभतां चैव सर्वप्रियत्वमेव हि ।
समायाति खेचरत्वं देवत्वमपि चैव हि ।।५१।।
न जरा न च मृत्युर्वा न रोगो न च वा भयम् ।
न भीतिर्न मनुष्यस्य न च वाक् कायपातनम् ।।५२।।
अथवा स भवेन्नित्यं चतुर्विंशतिसिद्धियुक् ।
स्वदेहरूधिराक्तैश्च विल्वपत्रैः सहस्रशः ।।५३।।
श्मशानेऽभ्यर्च्य देवीं तु वागीशसमतां व्रजेत् ।
रेतोयुक्तेन पुष्पेण अर्कस्येह सहस्रशः ।।५४।।
श्मशानेऽभ्यर्च्य कालीं तु सर्वसिद्धिं स विन्दति ।
धनवान् बलवान् वाग्मी सर्वयोषित्प्रियः सुधीः ।।५५।।
जायते नात्र संदेहो महाकालवचो यथा ।
श्मशाने योषितं नीत्वा सुवस्त्रां गणिकां तथा ।।५६।।
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गीं रक्तपुष्पैरलङ्कृताम् ।
जवापुष्पैर्मनुं प्रोक्ष्य ततो ध्यायेत्तु चण्डिकाम् ।।५७।।
ततो गत्वा लभेद्राज्यं यदिसा न भयायते ।
श्मशान शयने चैव शवासनगतः पुनः ।।५८।।
असकृत्तु जपेन्मन्त्रं सर्वथा वाऽयुतैस्तथा ।
तर्पयेच्च श्मशाने तां रक्तमांसास्थिभिस्त्रिधा ।।५९।।

त्रिस्त्रिर्मन्त्रमुदीर्यैवं सर्वसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
तर्पयेच्च पयोभिश्च रक्तधारायुतैस्तथा ।।६०।।
रेतोभिश्च तथा तद्वत् स्वकीयेन कचेन च ।
मैथुनायितयोषाया भगप्रक्षालनेन च ।।६१।।
मेषमाहिषरक्तेन नररक्तेन चैव हि ।
मूषमार्जाररक्तेन वाग्मिता तस्य जायते ।।६२।।
धनित्वं जायते तस्य सर्वसिद्धिः प्रजायते ।
वचसा स भवेज्जीवो धनेन च धनाधिपः ।।६३।।
आज्ञया देवराजोऽपि रूपेणापि मनोभवः ।
बलेन पवनो ह्येष सर्वतत्त्वार्थसाधकः ।।६४।।
साधिता साधितं मांसं सास्थि दद्यात् सदा बलिम् ।
मूषमार्जारमांसञ्च मेषमाहिषमेव च ।।६५।।
शवस्यास्थि प्रदातव्यं तथा मद्यसमन्वितम् ।
स्वनखछिन्नमार्जारकेशं सम्मार्जनागतम् ।।६६।।
निवेदयेत श्मशाने तत् सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
नारीरजोऽन्वितं कृत्वा पर्णानां शतमुत्तमम् ।।६७।।
प्रत्येकं प्रजपेन्मन्त्रं ततस्तद्धोमयेद् बुधः ।
युगानांमयुतं तेन पूजिता दक्षिणा भवेत् ।।६८।।
भूमिसंशोधनं कृत्वा कृत्वा वेदिं तथा बुधः ।
सर्वसिद्धिर्भवेत् तस्य वाग्मी वीरश्च जायते ।।६९।।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित् पृथिव्यां चारु विद्यते ।
योनिरूपं हि कुण्डं वै कृत्वा वितस्तिमानतः ।।७०।।
हस्तविस्तारतः कृत्वा हस्ताञ्चापि तथाप्यधः ।
तत्र कार्या हि विप्रेण वह्निस्थापनकक्रिया ।।७१।।
महाकालाय देवाय प्रदद्यात् प्रथमाहुतिम् ।
दद्यादाज्येन भक्तेन मांसेन रुधिरेण च ।।७२।।
कृष्णपुष्पेण साज्येन रेतसापि विशेषतः ।
रुरुमांसेन साज्येन भक्तेन रुधिरेण च ।।७३।।
आमिषादिकमप्येवं जुहुयात् पितृकानेन ।
स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः प्रयतमानसः ।।७४।।
दिवा चैव प्रकर्तव्यं सर्वकामार्थसिद्धये ।
रात्रौ नग्नो मुक्तकेशो मैथुनेनापि तत्त्वतः ।।७५।।

प्रकर्त्तव्यं प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धये।
द्विजानाञ्चैव सर्वेषां दिवाविधिरिहोच्यते ।।७६।।

शूद्राणाञ्च तथा प्रोक्तं रात्रौ दृष्टं महामतम् ।
यद्यत् कामयते चित्ते तत्तदाप्नोति नित्यशः ।।७७।।

महाकालं हुनेद्यत्नात् पश्चाद्देवीं प्रयत्नतः ।
त्रिधा विभज्य मन्त्रं वै यत्नात् साधकसत्तमः ।।७८।।

मांसं रक्तं त्वचं केशं नखं भक्तञ्च पायसम् ।
आज्यञ्चेति प्रयत्नेन होतव्यं सर्वसिद्धये ।।७९।।

एवं कृत्वा विधातव्यं लभते सिद्धिमुत्तमाम् ।
यद्यत् प्रार्थयते चित्ते तत्तदाप्नोति नित्यशः ।।८०।।

देवत्वं दानवत्वञ्च सिद्धचारणतां तथा ।
सदा हुत्वा समाप्नोति नित्यमेवमतन्द्रितः ।।८१।।

अथ वक्ष्याम्यहं देव्या पूजाविधिमनुत्तमम् ।
त्रिकोणं विन्यसेत् पूर्व पुनः पश्चात् त्रिकोणकम् ।।८२।।

नवकोणं तु तस्यान्ते तन्मध्ये स्थापयेच्छिवाम् ।
तत्तु षट्कोणकं कृत्वा बहिः षट्कोणकं तथा ।।८३।।

एवं पञ्चदशारं वै रेखाभिः परिवेष्टयेत् ।
वहिरष्टदलं कार्यं चतुर्द्वारोपशोभितम् ।।८४।।

ततः पूर्वादिकोणेषु वामावर्तेन विन्यसेत् ।
कालीं कपालिनीं कुल्वां कुरुकुल्वां विरोधिनीम् ।।८५।।

विप्रचित्तां तु विन्यस्य बहिः षट्कोणके पुनः ।
उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां परत्रिकोणके न्यसेत् ।।८६।।

नीलां घनां बलाकाञ्च तथैवापरके त्रिके ।
मात्रां मुद्रां मितां चैवापरत्रिकोणके बुधः ।।८७।।

सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषिताः ।
तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यश्च सस्मिताः ।।८८।।

तद्बहिर्मूल तश्चापि ब्राह्मी नारायणी तथा ।
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता ।।८९।।

वाराही च तथा पूज्या नारसिंही तथैव च ।
ततो मध्ये त्रिकोणान्तर्न्यसेद् देवीञ्च दक्षिणाम् ।।९०।।

महाकालञ्च तथैव न्यसेच्चैष विधिः स्मृतः ।
सर्वासामपि देवीनां बलिपूजा तथैव च ।।९१।।

अनुलेपनकं चापि विभवेनोपकल्पितम् ।
त्रिस्त्रिः पूजा प्रकर्तव्या सर्वासामपि सर्वदा ।।९२।।
अङ्गन्यास करन्यासौ यथावत् कथयाम्यहम् ।
दीर्घषट्कयुताद्येन प्रणवाद्येन मन्त्रवित् ।।९३।।
षडङ्गानि न्यसेन्मन्त्री त्रिःसकृद् वा यथासुखम् ।
पञ्चाशद्भिश्च वर्णैश्च हृदयं द्वौ भुजौ तथा ।।९४।।
तथा जङ्घाद्वयञ्चैव योजनीयं दिशो दश ।
पञ्चधा दशधा वापि मूलमन्त्रेण सप्तधा ।।९५।।
समस्तांङ्ग प्रकुर्वीत शोधितं मन्त्रवित्तमः ।
ततः पूर्वोक्तरूपां तां ध्यायेद्वै घोरदक्षिणाम् ।।९६।।
योगिनीचक्रसहितां महाकालसमन्विताम् ।
संपूज्य प्रयतश्चापि बलिं स प्रतिपादयेत् ।।९७।।
बलिमुत्थाप्य नैवेद्यं नैर्ऋत्याञ्च निवेदयेत् ।
हृदये चैव देवीं स्वे समर्प्य विधिवद् बुधः ।।९८।।
निर्माल्यं वै शुचौ देशे धारणीयं प्रयत्नतः ।
लक्षञ्चैव जपेन्मन्त्री हविष्याशी दिवा शुचिः ।।९९।।
अशुचिश्च तथा रात्रौ लक्षमेकं तथैव च ।
दशांश होमयेन्मन्त्री तर्पयेदभिषेचयेत् ।।१००।।
होमेऽपि तर्पणे चैव यथावत् कथितो विधिः ।।१०१।।
एवं देवीं कलुषदहनीं पूजयित्वा यथावद
धृत्वा तावद् बलिमपि तथा तर्पयित्वाऽभिषिच्य ।
यं यं कामं रचयति मनः स्वाहितं मर्त्यलोक
स्तं तं प्राप्य प्रदाति प्रतिपदपदवीं योगिभिः प्रार्थनीयम् ।।१०२।।

इति श्रीफेत्कारिणी तन्त्रोक्तम् श्रीदक्षिण कालिका साधनम् ।

❖

२. श्रीमेरुतन्त्रोक्त

श्री दक्षिण कालिका साधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि देवीं दक्षिणकालिकाम्।
क्रीं क्रीं क्रीं हुं द्विरुच्चार्य्य लज्जाबीजद्वयं तथा ।।१।।
दक्षिणे कालिके पश्चात्पुनर्बीजानि संवदेत्।
क्रमेणैवाग्निगृहिणी मन्त्रो द्वाविंशदर्णकः ।।२।।
भैरवोऽस्य मुनिः प्रोक्तस्त्रिष्टुप्छन्द उदाहृतम्।
देवता कालिका देवी ह्रीं बीजं हुं च शक्तिका ।।३।।
दीर्घषट्कयुताद्येन बिन्दुना संयुतेन च।
षडङ्गानि न्यसेन्मन्त्री द्विः सकृद्वा यथाविधि ।।४।।
पञ्चाशद्भिर्मातृकार्णैर्हृदये च भुजद्वये।
दशभिर्दशभिः कुर्य्यात्तथा जङ्घाद्वये क्रमात् ।।५।।
एष्वङ्गेषु च मूलेन पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः।
सप्तभिश्चापि मन्त्रार्णव्व्यापकं च समन्ततः ।।६।।
करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम् ।।७।।
खड्गाभयवराञ्छिन्नं मुण्डं च दधतीं करैः।
महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बराम् ।।८।।
कण्ठावसक्तमुण्डाली गत्रद्रुधिरचर्चिताम्।
कर्णावतंसतानीतशवयुग्मविराजिताम् ।।९।।
घोरदंष्ट्राकरालस्यां पीनोन्नतपयोधराम्।
शवानां करसङ्घातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम् ।।१०।।
सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम्।
घोररूपां महारौद्री श्मशानालयवासिनीम् ।।११।।
दन्तुरां दक्षिणां व्यालीयुक्तालम्बिकचोच्चयाम्।
शवरूपमहादेवहृदयोपरिसंस्थिताम् ।।१२।।
शिवाभिर्घोरावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्।
महाकालसमायुक्तां शवोपरिरतान्विताम् ।।१३।।

सुखप्रसन्नवदनां स्मेरारुणसरोरुहाम् ।
एवं सञ्चिन्तयेत्कालीं श्मशानालयवासिम् ।।१४।।
आदौ विरचयेत् पञ्चत्रिकोणानि ततः परम् ।
पद्ममष्टदलं बाह्ये भूपुरं तत्र पूजयेत् ।।१५।।
ततो मध्यत्रिकोणान्तर्न्यसेद्देवीं च दक्षिणे ।
महाकालं च तत्रैव न्यसेदेष विधिः स्मृतः ।।१६।।
ततः पूर्वादिकोणेषु वामावर्तेन पूजयेत् ।
कालीं कपालिनीं कुल्लां प्रथमे तु त्रिकोणके ।।१७।।
नीलां घनां बलाकां च द्वितीये तु त्रिकोणके ।
कुरुकुल्लाविरोधिन्यौ विप्रचित्तां तृतीयके ।।१८।।
उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां चतुर्थे तु त्रिकोणके ।
मात्रां मुद्रां च मित्रां च त्रिकोणे पञ्चमे यजेत् ।।१९।।
सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषणाः ।
तर्ज्जनीं वामहस्तेन धारयन्ति च सस्मिताः ।।२०।।
ब्राह्मीं नारायणीं माहेश्वरीं मुण्डां कुमारिकाम् ।
अपराजितां च वाराहीं नारसिंहीं दलाष्टके ।।२१।।
सम्पूज्य यत्नतश्चापि बलिं सम्प्रतिपादयेत् ।
हृदयं चापि देवेश्यै समर्प्य विधिवद्बुधः ।।२२।।
निर्माल्यं वै शुचौ देशे धारयेच्च सदैव हि ।
एकलक्षं जपेन्मन्त्र हविष्याशी दिवा शुचिः ।।२३।।
अशुचिश्च तथा रात्रौ लक्षमेकं जपेन्मनुम् ।
दशांशं जुहुयादाज्यैस्तर्पयेदभिषेचयेत् ।।२४।।
होमश्च तर्पणं पूजा कर्त्तव्या च विशेषतः ।
ततः प्रयोगान्कुर्वीत काम्यानिष्टफलाप्तये ।।२५।।
नागयज्ञोपवीतिनीं चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।
देवीमेवं च सञ्चिन्त्य महाकालसमीगाम् ।।२६।।
हुं हुं क्रीं च तथा क्रीं क्रीं पञ्चबीजानि योजयेत् ।
अन्ते तु मूलमन्त्रस्य जपपूजादिकम् चरेत् ।।२७।।
वश्यकामः साधकश्चेद्रक्तपुष्पैः प्रपूजयेत् ।
कामबाणसमाविद्धा निर्लज्जा विह्वलाः स्त्रियः ।।२८।।
स्वंस्वं सन्त्यज्य भर्तारमालिङ्गन्ति सदैव तम् ।
एवमाकर्षणे योज्यमादौ हुंक्रीं ततः परम् ।।२९।।

लोहितां शूलहस्तां च महाकालाग्रसंस्थिताम् ।
ध्यात्वा सम्पूजयेत्पुष्पैः पीतैराकर्षणं भवेत् ।।३०।।
कपिलां द्विभुजां कर्त्रीं सव्ये दक्षे कपालकम् ।
ध्यात्वैवं सर्वमन्त्रान्ते हृद्वयं परिकीर्तयेत् ।।३१।।
एवं प्रजप्य पुष्पेण कृष्णेनैव तु पूजयेत् ।
मरणं तु भवेत्तस्य यमुद्दिश्य कृता क्रिया ।।३२।।
उच्चाटयति पिङ्गाक्षी सन्त्रासयति केकरा ।
विद्रावयति शुष्कास्या प्रोन्मत्तयति घूर्णिका ।।३३।।
विक्षोभयति संक्षुब्धा सम्पादयति सम्मता ।
सङ्कोचपति संरुद्धा विरुद्धा च विरोधयेत् ।।३४।।
यो यो भावो यत्र ज्ञेयस्तं भावं स्थापयेदिति ।
अत्र सर्वत्र कर्त्तव्यं भावमत्रस्य चिन्तनम् ।।३५।।
उच्चाटनं विनान्यत्र सर्वत्र सुरतं मतम् ।
स्नातः शुक्लाम्बरधरः कृतनित्यक्रियो दिवा ।।३६।।
रात्रौ नग्न शयानश्च मैथुने च व्यवस्थितः ।
अवाक्यो मुक्तकेशश्च तेन स्युः सर्वसिद्धयः ।।३७।।
नग्नां वरस्त्रियं पश्यन्प्रजपेदयुतं मनुम् ।
स भवेत्सर्वसिद्धीनां पारगः सर्वदैव हि ।।३८।।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभा मताः ।
गद्यपद्यमयी वाणी तस्य सर्वविधा भवेत् ।।३९।।
अवाक्यो मुक्तकेशश्च हविष्यं भक्षयेन्नरः ।
प्रजपेदयुतं तावदेवं प्रतिनिधिर्भवेत् ।।४०।।
ऋतुमत्यां भगं पश्यन्नयुतं प्रजपेन्नरः ।
अनर्घकविता तस्य गद्यपद्यमयी भवेत् ।।४१।।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा भगमालोक्य चान्ततः ।
प्रयाति मैथुनं योऽसौ धनधान्यसुतान्वितः ।।४२।।
सुरते जपितव्यश्च सदापापविशुद्धये ।
यदि योषित्प्रसङ्गेन रेतः पतति यत्नतः ।।४३।।
समुत्सार्य ततो जप्तं सर्वकामसमृद्धये ।
श्मशानाङ्गारमादाय मुक्तकेशो दिगम्बरः ।।४४।।

जपेदयुतसंख्यं तु सर्वकामसमृद्धये ।
प्रेतमारुह्य तत्रैव यो जपेन्मन्त्रवित्तमः ।।४५।।
अयुतं वाग्यतो भूत्वा कविभिः स तु पूजितः ।
स याति परमां सिद्धिं देवैरपि सुदुर्लभाम् ।।४६।।
स्वदेहरुधिराक्तैश्च बिल्वपत्रैः सहस्रशः ।
श्मशानेऽभ्यर्चयेद्देवीं सर्वां सिद्धिं स विन्दति ।।४७।।
धन्वाब्जपत्रैः सम्पूज्य देवीं सर्वफलप्रदाम् ।
लोके स कुलवान् वाग्मी सर्वयोषित्प्रियो भवेत् ।।४८।।
सुखी स्यान्नात्र सन्देहो महाकालवचो यथा ।
श्मशाने योषितं नीत्वा मन्त्रैः प्राच्यं सहस्रकैः ।।४९।।
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गीं रक्तपुष्पैरलङ्कृताम् ।
तावत्पुष्पैर्मनुं प्राच्यं ततो ध्यायेच्च चण्डिकाम् ।।५०।।
ततरे गत्वाप्नुयाद्राज्यं यद्यसौ न बिभेति वै ।
श्मशाने ह्यने चैवं शवासनगतः स्थिरः ।।५१।।
असकृत्तु जपेन्मन्त्रं सर्वसिद्धिप्रदो भवेत् ।
तर्पयेच्च शवास्यं तु रक्तमांसादिभिस्त्रिधा ।।५२।।
त्रिस्त्रिर्मन्त्रानुदीर्य्यैवं सर्वसिद्धिर्भवेत्ततः ।
तर्पयेच्च पयोभिर्हि सुधाधारायुतैस्तथा ।।५३।।
रेतोभिश्च तथा तद्वत् स्वकीयेन कचेन च ।
मैथुनोपचिताद्भिश्च भगप्रक्षालनाम्बुभिः ।।५४।।
मेषमाहिषरक्तेन नररक्तेन चैव हि ।
मूषमार्ज्जाररक्तेन वाग्मित्वं तस्य जायते ।।५५।।
धनित्वं जायते तस्य सर्वसिद्धिः प्रजायते ।
वचसा स भवेज्जीवो धनेन च धनाधिपः ।।५६।।
आज्ञया देवराजोऽसौ रूपेण च मनोभवः ।
बलेन पवनो ज्येष्ठस्सर्वतत्त्वार्थसाधकः ।।५७।।
साधितासाधितं मांसं सास्थि दद्यात्सदा बलिम् ।
मूषमांसं मेषमांसं छागं माहिषमेव च ।।५८।।
सर्वं सास्थि प्रदातव्यं सदा त्वग्लोमसंयुतम् ।
अजकस्य नखं छित्रं केशं स्वमार्जनीगतम् ।।५९।।

निवेदयेच्छमशाने तत्सर्वसिद्धिप्रदो भवेत् ।
नारीरजोयुजां कृत्वा पर्णानां शतमुत्तमम् ।।६०।।
प्रत्येकं प्रजपेन्मन्त्रं ततस्तद्धोमयेद्बुधः ।
युगानामयुतं तेन पूजिता दक्षिणा भवेत् ।।६१।।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य वाग्मी धीरस्य जायते ।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित्पृथिव्यां जातु जायते ।।६२।।
योनिरूपं हि कृत्वा तु कुण्डं वितस्त्यरत्नितः ।
हस्तविस्तारतो वापि कृत्वा चैव यथाविधि ।।६३।।
तत्र कार्या हि मन्त्रेण वह्निस्थापनिकाः क्रियाः ।
महाकालाय देवाय दद्यात्प्रथमाहुतिम् ।।६४।।
स्रुवेणाज्येन मांसेन भक्तेन रुधिरेण च ।
कृष्णपुष्पेण साज्येन सरक्तेन विशेषतः ।।६५।।
आमिषादिभिरप्येवं जुहुयाच्च श्मशानके ।
स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः प्रयतमानसः ।।६६।।
दिवा सर्वं प्रकुर्वीत सर्वकामार्थसिद्धये ।
रात्रौ नग्नो मुक्तकेशो मैथुनेनापि संयुतः ।।६७।।
प्रकुर्वीत प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धये ।
द्विजानामत्र सर्वेषां विधिः रात्रौ प्रदर्शितः ।।६८।।
शूद्राणां चैव संप्रोक्तो रात्रावेव विधिर्मया ।
महाकालं यजेद्यत्नात्पश्चाद्देवीं प्रपूजयेत् ।।६९।।
त्रिधा विभज्य मन्त्राद्यैर्यत्नात् साधकसत्तमः ।
मांसं रक्तं तिलं केशो नखो भक्तं च पायसम ।।७०।।
आज्यं चेति प्रयत्नेन होतव्यं सर्वसिद्धये ।
एवं कृत्वा विधानेन भजते सिद्धिमुत्तमाम् ।।७१।।
यद्यत् प्रार्थयते जन्तुस्तत्तत्प्राप्नोति नित्यशः ।
देवत्वं दानवत्वं च सिद्धचारणतां तथा ।।७२।।
हवनात्सर्वमाप्नोति नित्यमेवमतन्द्रितः ।
एकचित्तो जपेन्मन्त्रं चत्वारिंशत्सहस्रकम् ।।७३।।
होमं तु रक्तपुष्पेण कुण्डे कुर्याद् यथाविधि ।
एतन्मन्त्रजपान्मन्त्री मुच्यते ब्रह्महत्यया ।।७४।।

पितृमातृवधाद्यैश्च किमन्यैः क्षुद्रपातकैः ।
कपिलारत्नसम्पूर्णपृथ्वी दानस्य यत्फलम् ।।७५।।
कोटिहोमसहस्रैर्य्यद्ध्यानेन फलभाग्भवेत् ।
यं यं स्पृष्टवा जपेन्मन्त्री स तं तं वशमानयेत् ।।७६।।
जपित्वाष्टोत्तरशतं जुहुयाद्रक्तपुष्पकैः ।
कुर्यान्नृपं वशे मन्त्री नासाध्यं भुवनत्रये ।।७७।।
शून्यागारे देवगृहे स्वयम्भूस्थान एव च ।
ब्रह्मचारी हविष्याशी भवेदिन्द्रसमो जपात् ।।७८।।
कुण्डे त्रिकोणसंज्ञे तु शान्तौ पुष्टौ तथैव च ।
अयुतं जुहुयान्मन्त्री सहस्रत्रितयं पुनः ।।७९।।
काम्ये सहस्रमारक्तैः पुष्पैर्हुत्वा दशांशतः ।
तर्पयेच्च पुनस्तद्वद्देवीं ध्यात्वा हुताशने ।।८०।।
सम्पूज्य मूलमन्त्रेण बिल्वपत्रैर्घृतान्वितैः ।
सहस्रं प्रत्यहं हुत्वा प्राप्नोति परमां गतिम् ।।८१।।
घृताक्तमालतीपुष्पैर्होमाद्द्रुतकविर्भवेत् ।
नासाध्यं विद्यते किञ्चिदिह मन्त्रविदस्सदा ।।८२।।
देव्याराधनशक्तिश्च गुरुभक्तश्च नान्यथा ।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रमष्टाक्षरं परम् ।।८३।।
दक्षिणे कालिके स्वाहा मन्त्रोऽष्टाक्षर ईरितः ।
न्यासः प्राग्वद्ध्यानमत्रशवरूप शिवस्थिताम् ।।८४।।
महाकालरतासक्तां शिवाभिर्दिक्षु वेष्टिताम् ।
नवशक्तियुते पीठेनन्ता च विजया जया ।।८५।।
तथा पराजया नित्या विलासिन्यापि कीर्त्तिता ।
क्षुब्धा घोरा मङ्गलेति पीठमन्त्रोऽर्कवर्णकः ।।८६।।
ह्रीं कालिकायोगपीठात्मने नम उदाहृतः ।
अङ्गानि पूर्वमाराध्य षड्दलेषु ततोऽर्चयेत् ।।८७।।
कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम् ।
विप्रचितां च सम्पूज्य नवकोणेष्व योर्चयेत् ।।८८।।
उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां नीलां घनां वाचालिकाम् ।
मात्रां मुद्रां तथामितां पूज्याः पत्रेषु मातरः ।।८९।।

पूर्वोक्तभूपुरे पूज्या भैरव्योऽष्टौ च भैरवीः ।
ततो महाभैरवी च तृतीया सिंहभैरवी ।।९०।।
धूम्राख्या भैरवी तुर्य्या पञ्चमी भीमभैरवी ।
उन्मत्तभैरवी षष्ठी वशीकरणभैरवी ।।९१।।
सप्तमी भैरवी ख्याताष्टमी मोहनभैरवी ।
दिक्पतींश्च तदस्त्राणि पूजैवं परिकीर्तिता ।।९२।।
पुरश्चर्यादिकं प्राग्वत्प्रयोगानाचरेत्तथा ।
स्त्रीप्रहारं च निन्दां च कौटिल्यं चाप्रियं वचः ।।९३।।
आत्मनो हितमन्विच्छन्कालीभक्तो विवर्जयेत् ।
असृजा महिषादीनां कालिकां यस्तु तर्प्पयेत् ।।९४।।
तस्य स्युचिरादेव करस्थाः सर्वसिद्धयः ।
अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि चैकविंशतिवर्णकम् ।।९५।।
ॐ ह्रीं ह्रीं हुं युगं त्रिः क्रीं दक्षिण कालिके वदेत् ।
त्रि क्रीं हुँ हुँ च होमश्चात्र घृतेनैव विधेयः ।।९६।।
साधकेन हि शक्ति युग्ममस्य न्यासादि पूर्ववत् ।
बिल्वमूले शवारूढो वटमूले तथैव च ।।९७।।
लक्षं मनुं जपित्वेमं सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
पञ्चमप्रतिभित्यायं दक्षिणाम्नाय सिद्धिदः ।।९८।।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शक्रार्णं मनुमुत्तमम् ।
क्रीं हुं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हुं ह्रीं दहनप्रिया ।।९९।।
पूजनम् पूर्ववत्प्रोक्तं न्यास ध्यान जपादिकम् ।
विशेषान्नसुरादीनामयमाकर्षणक्षमः ।।१००।।
हुं हुं त्रिः क्रीं द्विश्च लज्जा दक्षिणे कालिके पुनः ।
हुं च त्रिर्द्विश्च लज्जा स्वाहेत्याकृतिवर्णवान् ।।१०१।।
न्यासपूजादिकं प्राग्वद्विशेषेण वशीकृतिः ।
जपादेतस्य भूतिश्च सर्वमन्यत्तु पूर्ववत् ।।१०२।।
क्रीं क्रीं क्रीं हुँ समुच्चार्यं हुंलज्जाद्वमुच्चरेत् ।
दक्षिणे कालिके स्वाहा नृपवर्णः प्रकीर्त्तितः ।।१०३।।
मन्त्रराजोयमाख्यातः पूर्ववत्यादुपासना ।
विशेषाङ्गतराज्यानामयं राज्यप्रदो मतः ।।१०४।।

क्रीमित्येकाक्षरो मन्त्रः कालिकायाः प्रकीर्तितः ।
जपेत्कृष्णचतुर्दश्यां शून्यागारे मनुं निशि ।।१०५।।
उपवासपरश्चैवमेकाहात्सिद्धिमाप्नुयात् ।
यद्वा श्मशाने विपिने जपेल्लक्षं तु वाग्यतः ।।१०६।।
आर्द्रोष्णीष आर्द्रवासास्तेन मन्त्रः प्रसिध्यति ।
होमश्चात्र घृतेनैव तर्पणादि ततश्चरेत् ।।१०७।।
अथवा प्रजपेन्मन्त्रं श्मशाने विगतज्वरः ।
निशाभोजी दशांशेन तिलैर्हवनमाचरेत् ।।१०८।।
जपपूजादिप्राग्वद्विशेषाद्भोगमोक्षदम ।
क्रीमुक्त्वा कालिके स्वाहाषडर्णो मन्त्र ईरितः ।।१०९।।
न्यासपूजादिकं प्राग्वद्द्विशेषाद्भोगदो मतः ।
क्रीं हुं ह्लीं त्र्यक्षरात्मायं मन्त्र काल्याः प्रकीर्त्तितः ।
प्राग्वज्जपादिकं चास्य विशेषात्सन्ततिप्रदः ।।११०।।
कालीबीजं च हुं माया हुंफट् पञ्चाक्षरो मनुः ।
न्यासध्यानादिकं प्राग्वद्विशेषाद्भूतनाशनः ।।१११।।
क्रीं हुं ह्लीं च हुं फट् स्वाहान्तः सप्ताक्षरो मतः ।
प्राग्वन्न्यासादिकं सर्वं विशेषाच्छान्तिकारकः ।।११२।।

इति श्रीमेरुतन्त्रे श्रीदक्षिणकालिका साधनविधिः सम्पूर्णम् ।।

३. श्री कङ्कालमालिनी तन्त्रोक्त

श्रीकालीविधानम्

श्री पार्वत्युवाच

कथयस्व विरुपाक्ष ! महाकालीमनु प्रभो !।।१।।

पद्मा—श्री पार्वती ने कहा–हे विरुपक्ष ! हे प्रभो ! महाकाली के मंत्र का वर्णन करिये ॥१॥

श्री ईश्वरउवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महाकालीमनुं प्रिये !
यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।।२।।
श्रिया विष्णुं समः कान्त्या षड्मुखेन समः सुखी ।
शौचेन शुचिना तुल्यो बलेन पवनोपमः ।।३।।
वागीश्वरसमो वाची धनेन धनपः स्वयम् ।
सार्वज्ञे शम्भुना तुल्यो दानेन दधीचिना समः ।।४।।
आज्ञया देवराजोऽसौ ब्राह्मण्येन प्रजापतिः ।
भृगोरिव तपस्वी च चन्द्रवत् प्रीतिवर्द्धनः ।।५।।
तेजसाग्निसमो भक्त्या नारदः शिवकृष्णयोः ।
रूपेण मदनः साक्षात् प्रतापे भानुसन्निभः ।।६।।
शास्त्रचर्चास्वाङ्गिरसो जामदग्न्याः प्रतिज्ञया ।
सिद्धानां भैरवः साक्षात् गङ्गे च मलनाशकः ।।७।।
अथवा बहुनोक्तेन किंवा तेन वरानने ।
न तस्य दुरितं किञ्चित् महाकाली स्मरेद्विधा ।।८।।
शब्दब्रह्ममयीं स्वाहां भोगमोक्षैकदायिकाम् ।
भोगेन मोक्षमाप्नोति श्रुत्वा गुरुमुखात् परम् ।।९।।
तां विद्यां शृणु वक्ष्यामि यथा भैरवतां व्रजेत् ।।१०।।

पद्मा—श्री ईश्वर ने कहा-हे प्रिये ! इस समय मैं महाकाली का मन्त्र कहता हूँ। इस मन्त्र के ज्ञानमात्र से साधक सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है । वह श्री मे विष्णु के समान तथा बल में वायु के समान हो जाता है । वह वाणी में बृहस्पति के समान, धन में कुबेर के समान, सर्वज्ञता में भगवान् शिव के समान, दान में दधीचि के समान, आज्ञा देने

में देवराज इन्द्र के समान, ब्राह्मणों में ब्रह्मा के समान, भृगु के समान तेजस्वी, नारद के समान शिव तथा कृष्ण की भक्ति करने वाला, रूप में कामदेव के समान, प्रतापियों में सूर्य के समान, शास्त्र चर्चा करने में आंगिरस के समान, प्रतिज्ञा में जमदग्नि के समान, सिद्धों में भैरव के समान, मलनाशन में गंगा के समान हो जाता है । हे प्रिये ! बहुत क्या कहा जाय? जो साधक भगवती काली का स्मरण करते हैं उनको कोई भी पाप व्याप्त नही होता है । भगवती काली शब्द ब्रह्ममयी, स्वाहारूपिणी, भोग, मोक्ष को देने वाली हैं । इस विद्या को श्री गुरुदेव के मुख से ग्रहण करने पर भोग में ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है । अब उस विद्या को कहता हूँ जिससे मुझै भैरवत्व की प्राप्ति हुई है, सुनो ॥२-१०॥

क्रोधीशं क्षतजारूढ़ं धूम्रभैरवीलक्षितम् ।
नादबिन्दुसमायुक्तं मन्त्रं स्वर्गेऽपि दुर्लभम् ।।११।।
एकाक्षरीसमा नास्ति विद्या त्रिभुवन प्रिये !।
महाकाली गुह्यविद्या कलिकाले च सिद्धिदा ।।१२।।

पद्मा—क्रोधीश (क) को क्षतजारूढ (र) करके धूम्र भैरवी (ई) से संयुक्त करे । उसमे नादबिन्दु (ँ) का योग करने पर जो मंत्र (क्रीं) बनता है वह स्वर्ग में भी दुर्लभ है । हे प्रिये ! इस एकाक्षरी विद्या के समान अन्य कोई विद्या तीनो लोक मे नही है । महाकाली कलियुग में सिद्धि देने वाली विद्या है ॥११-१२॥

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि दक्षिणां कालिकां पराम् ।
वाग्भवं बीजमुच्चार्य कामराजं ततः परम् ।
मायाबीजं ततो भद्रे त्र्यक्षरं मन्त्रमीरितम् ।।१३।।

पद्मा—सर्वप्रथमा वागगभवबीज (ऐं) का उच्चारण करे। इसके पश्चात् कामबीज क्लीं का उच्चारण करे तदुपरान्त मायाबीज ह्रीं का उच्चारण करे । इस प्रकार **ऐं क्लीं ह्रीं** यह तीन अक्षरों का मन्त्र बना ॥१३॥

कामराजं ततो कूर्च्चं मायाबीजमतः परम् ।
अपरं त्र्यक्षरं प्रोक्तं पूर्वोक्तं फलदं प्रिये !।।१४।।
हालाहलं समुच्चार्य मायाद्वयमतः परम् ।
एतत्तु त्र्यक्षरं देवि ! सर्वकामफलप्रदम् ।।१५।।

पद्मा—सर्वप्रथम कामबीज (क्लीं) का उच्चारण करके कूर्च बीज (हूँ) का उच्चारण करके मायाबीज (ह्रीं) का उच्चारण करे। इस प्रकार **क्लीं हूं ह्री** मन्त्र बनता है जो पहले कहे गये मन्त्र के समान फल देने वाला है। हे देवि ! हालाहल (ॐ) का उच्चारण करके दो मायाबीज (ह्रीं ह्रीं) का उच्चारण करें। इससे भी तीन अक्षर **ॐ ह्रीं ह्रीं** का निर्माण होता है। यह मन्त्र सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने वाला है ॥१४-१५॥

एतेषाञ्चैव मन्त्राणां फलमन्यत् श्रृणु प्रिये !
न कालनियमोऽत्रास्ति नारिमित्रादिदूषणम् ।।१६।।
कायक्लेशकरं नैव प्रयासो नास्य साधने ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ जपः सर्वत्र शोभनः ।।१७।।
भोगमोक्षविरोधोऽत्र साधने नास्ति निश्चितम् ।
भोगेन लभते मोक्षं नरोऽपि विद्ययानया ।।१८।।

पद्मा—हे प्रिये ! इन समस्त मन्त्रों का और भी फल सुनो । इन मन्त्रों के जप में समय का कोई नियम है और न ही शत्रु मित्रादि से सम्बन्धित किसी दोष का । इन मन्त्रों की साधना में किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट भी नही उठाना पड़ता । दिन अथवा रात्रि में किसी भी समय सदैव इनका जप किया जा सकता है । इन मन्त्रों की साधना से भोग एवं मोक्ष दोनो ही प्राप्त होते हैं यह निश्चित है । इन मन्त्रों की साधना से मनुष्य को भोग से ही मोक्ष मिल जाता है ॥१६-१८॥

अस्या जपात्तथा ध्यानात् लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम् ।
नानया सदृशीविद्या नानया सदृशो जपः ।।१९।।
नानया सदृशं ध्यानं नानया सदृशं तपः ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्पूर्वं वदाम्यहम् ।।२०।।
अनया सदृशी विद्यानास्ति सिद्धिः सुगोचरे ।
अक्ष संक्षेपतो वक्ष्ये पूजाविधिमनुत्तमम् ।।२१।।
विस्तारे कस्य वा शक्तिः को वा जानाति तत्त्वतः ।
पूजा च त्रिविधा प्रोक्तानित्यनैमित्तिकाम्यतः ।।२२।।
तत्रैव नित्यपूजाञ्च वक्ष्ये ताञ्च निशामय ।
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तः उष्णिक् छन्द उदाहृतम् ।।२३।।
देवता मुनिभिः प्रोक्ता महाकाली पुरातनी ।
विनियोगस्तु विद्यायाः पुरुषार्थचतुष्टये ।।२४।।

पद्मा—इन मन्त्रों के जप व ध्यान से चार प्रकार की (सालोक्य सारूप्य सार्ष्ट्य व सायुज्य) मुक्ति प्राप्त होती है । इसके सदृश कोई विद्या है और न ही इसके समान कोई जप । न इसके समान कोई ध्यान है और न ही इसके समान कोई तप । यह निश्चित रूप से सत्य है और मै शपथ लेकर कहता हूँ । इसके समान न ही कोई विद्या है और न ही इसके समान कोई सिद्धि । अब मैं संक्षेप में इसकी श्रेष्ठ पूजा विधि कहता हूँ । इसकी विस्तृत पूजा विधि न तो कोई तत्त्वपूर्वक जानता है और नही विस्तार से पूजन करने की शक्ति किसी में है । पूजा तीन प्रकार की कही गयी है । नित्य, नैमित्तिक व काम्य । अब

काली की नित्यपूजा कहता हूँ उसे सुनो ! इसके ऋषि भैरव तथा छन्द उष्णिक कहे गये हैं। मुनियों ने सनातनी महाकाली को देवता कहा है। इस विद्या का विनियोग चारों पुरुषार्थो की प्राप्ति के लिये किया जाता है ॥१९-२४॥

पञ्चशुद्धिविहीनेन यत्कृतं न च तत्कृतम्।
पञ्चशुद्धिं विना पूजा अभिचाराय कल्प्यते ।।२५।।
आत्मशुद्धिः स्थानशुद्धिर्द्रव्यस्य शोधनस्तथा।
मन्त्रशुद्धिर्देवशुद्धिः पञ्चशुद्धिरितीरिता ।।२६।।

पद्मा—विना पञ्चशुद्धि के पूजा करना अथवा न करना समान है। पञ्चशुद्धि के विना पूजा अभिचार ही है। आत्मशुद्धि, स्थानशुद्धि, द्रव्यशुद्धि मन्त्रशुद्धि तथा देवशुद्धि यह पञ्चशुद्धि कही गयी हैं ॥२५-२६॥

भूप्रदेशे समे शुद्धिः पुष्पः प्रकरसंकुले।
आसनं कल्पयेदादौ कोमलं कम्बलन्तु वा ।।२७।।
वामे गुरुन् पुनर्नत्वा दक्षिणे गणपतिं विभुम्।
भूतशुद्धिं तथा कुर्यात् पूजायोग्या यथा भवेत् ।।२८।।

पद्मा—सर्वप्रथम समतल भूमि का शोधन करे। साधना के उपकरणों का भी शोधन करे। केवल मात्र पुष्प के द्वारा शोधन करे। साधक कोमल आसन अथवा कम्बलासन बिछाये। अपने बायीं ओर श्री गुरुदेव को प्रणाम कर दाहिनी ओर गणपति को प्रणाम करे। भूतशुद्धि इस प्रकार करे जिससे पूजा करने की पात्रता आ सके ॥२७-२८॥

प्राणायामि विधिवत् ऋष्यादिन्यासमाचरेत्।
आदौ शुद्धिभैरवाय ऋषये नम इत्यथ ।।२९।।
उष्णिक् छन्दसे नमसा मुखे छन्दो विनिर्दिशेत्।
मम प्रिये! महाकाली देवतायै नमो हृदि ।।३०।।

पद्मा—विधिपूर्वक प्राणायाम आदि करे। इसके पश्चात् ऋषिन्यास, अंगन्यास आदि को करे। सर्वप्रथम शुद्धि के ऋषि भैरव को प्रणाम करे और उष्णिक् छन्द को नमस्कार करते हुए कहे कि उष्णिक छन्द को नमस्कार करता हूँ। हे प्रिये ! महाकाली के देवता को हृदय से नमन करे ॥२९-३०॥

ह्रीं बीजाय नमः पूर्वं हुं शक्तये नमोऽप्यथ।
कवित्वार्थे विनियोग इति विन्यस्य वाञ्छया ।।३१।।
केवलां मातृकां न्यस्य बीजन्यासं समाचरेत्।
ॐ क्रां अङ्गुष्ठयोर्न्यस्य ॐ क्रीं तर्जन्योर्नमः ।।३२।।

पद्मा—पूर्व में ह्रीं बीज को नमस्कार करने के लिये "ह्रीं बीजाय नमः का

प्रयोग करे। इसके पश्चात् **हुं शक्तये नमः** द्वारा शक्ति को नमस्कार करे। कवित्व की प्राप्ति की प्राप्ति के लिए इस प्रकार अपनी कामनानुसार न्यास करे। केवल मात मातृका न्यास कर बीजन्यास करे। **ॐ क्रां** से अगूठों का न्यास करे। ॐ क्रीं से तर्ज्जनी का न्यास करे ॥३१-३२॥

ॐ क्रूँ मध्यमयोर्न्यस्य ॐ क्रैं अनामिकाद्वयोः।
ॐ क्रौं कनिष्ठायुगले ॐ क्रः करतले तथा ।।३३।।
पुनर्हृदयादिष्वेतैर्जातियुक्तैः षडङ्गकम्।
षड्दीर्घभावं स्वबीजैः प्रणवाद्यैस्तु विन्यसेत् ।।३४।।

पद्मा—ॐ क्रूं के द्वारा दोनो मध्यमा अंगुली का, ॐ क्रैं के द्वारा दोनों अनामिका अंगुली का, ॐ क्रौं के द्वारा दोनो कनिष्ठा अंगुली का, ॐ क्रः करतले फट् से दोनो करतल का न्यास करे। पुनः हृदयादि अंग का न्यास करे। इसमें प्रणावादि स्वबीज (गुरु प्रदत्त मन्त्र) के द्वारा ही अंगन्यास करे। यथा–ॐ हृदयाय नमः ॐ शिरसे स्वाहा ॐ शिखायै वषट्, ॐ कवचाय हुँ, ॐ नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ करतल कर पृष्ठाभ्यां फट् ॥३३-३४॥

वर्णन्यासं तथा कुर्याद् येन देवीमयो भवेत्।
अ आ इ ई उ उ, ऋ, ॠ ऌ ॡ च हृदये न्यसेत् ।।३५।।
ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ वै दक्षिणे भुजे।
ङ च छ ज झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, वै वामके भुजे ।।३६।।
ण त थ द ध न, प फ, ब भ दक्षजङ्घके न्यसेत्।
म य र ल, व, श, ष, स, ह, ल, क्ष वामजङ्घके ।।३७।।
पञ्चधा सप्तधा वापि मूलविद्यां समुच्चरन्।
शिरादि च पादान्तं न्यसेद् व्यापकमुत्तमम् ।।३८।।
नित्यन्यासं इति प्रोक्तः सर्व एव सुखावहः।

पद्मा—साधक वर्णन्यास इस प्रकार करे कि वह देवीमय हो जाए। यथा–अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, ऌं, ॡं नमः यह उच्चारण कर हृदय न्यास करे। एं, ऐं, ओं, औं, अं, अंः, कं, खं, गं, घं, नमः कह कर दाहिनी भुजा का न्यास करे। ङ, चं, छं, जं, झं, ञं, टं, ठं, डं, ढं, नमः से वाम भुजा का न्यास करे। णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं, बं, भं, नमः से दाहिनी जांघ का न्यास करे। मं, यं, रं, लं, वं, शं, षं, सं, हं, लं, क्षं नमः से बायीं जाँघ का न्यास करे। मूलविद्या से पाँच या सात बार न्यास करे। मस्तक से लेकर पैर तक उत्तमरूप से न्यास करे। इस प्रकार स साधकों के लिए सुखप्रद नित्यन्यास कहा गया ॥३५-३८.१/२॥

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि भैरवाकारदायकम् ।।३९।।
हिमालयगिरेर्मध्ये नगरे भैरवस्य च ।
दिव्यस्थाने महापीठे मणिमण्डपराजिते ।।४०।।
नारदाद्यैर्मुनिश्रेष्ठैः संसेवितपदाम्बुजाम् ।
तत्र ध्यायेन्महाकालीमाद्यां भैरववन्दिताम् ।।४१।।
नीलेन्दीवरवर्णिनी युग्मापीनतुङ्गस्तनीम् ।
सुप्तश्रीहरिपीठराजितवतीं भीमां त्रिनेत्रां शिवाम् ।
मुद्राखड्गकरां वराभययुतां चित्राम्बरोद्दीपनीम्,
वन्दे चञ्चलचन्द्रकान्तमणिभिर्मालां दधानां पराम् ।।४२।।

पद्मा—अब ध्यान का वर्णन करता हूँ जो भैरव के आकार को प्रदान करता है। हिमालय पर्वत के मध्य में, भैरव की नगरी मे, दिव्यस्थान में मणिमण्डप के द्वारा सुशोभित महापीठ में, नारदादि मुनिगण द्वारा जिनका चरणकमण सेवित है, भैरव वन्दित उन महाकाली का ध्यान करे। जिनके शरीर का रंग नील कमल के पुष्प के समान है जिनके स्तन अत्यन्त ही पुष्ट एवं ऊँचे हैं जो सोये हुए श्रीहरि की शय्या के समीप विराजमान हैं, जो अत्यन्त ही भयंकर, तीन नेत्रों वाली एवं शिवस्वरूपा है, जो मुद्रा, खड्ग वर एवं अभय धारण करती हैं। वे भगवती महाकाली विचित्र वर्ण के वस्त्रों से उद्दीप्त हैं जो चञ्चल चन्द्रकान्तमणि द्वारा बनी हुई माला धारण करती है हम उन भगवती की वन्दना करते है ॥३९-४२॥

ध्यानान्तरं प्रवक्ष्यामि शृणु गौरि! गिरेः सुते ।
तत्र पीठे महादेवीं कालीं दानवसेविताम् ।।४३।।
मेघाङ्गीविगताम्बरां शवशिरारूढ़ां त्रिनेत्रा परां ।
कर्णालम्बितबाणयुग्मलसितां मुण्डावलीमण्डिताम् ।
वामाधोर्ध्वकराम्बुजे नरशिरःखड्गञ्च सव्येतरे ।
दानभीतिविमुक्तकेशनिचया ध्येया सदा कालिका ।।४४।।

पद्मा—हे गौरि ! हे गिरिसुते ! अब मै एक और ध्यान को कहता हूँ उसे सुनो। भगवती महाकाली दानवों के द्वारा सेविता हैं। इन देवी के अंग मेघ के समान हैं, वे नग्ना, शिविका पर चढ़ी हुई, तीन नेत्र वाली है। इनके कान लम्बे तथा दो बाण के द्वारा सुशोभित हैं। वे मुण्डावली से मण्डित हैं। इनके दोनों बायें हाथों में ऊपर व नीचे मुण्डमाला विभूषित हैं। दाहिने हाथ में खड्ग सुशोभित हैं। इनके केश खुले हुए हैं। इस प्रकार के स्वरूप वाली भगवती कालिका का सदा ही ध्यान करना चाहिए ॥४१-४२॥

अपरञ्च प्रवक्ष्यामि ध्यानं परमदुर्लभम् ।
कालीं करालवदनां घोरदंष्ट्रां त्रिलोचनाम् ।।४५।।

स्मरेच्छरकरश्रेणिकृतकाञ्चीं दिगम्बराम् ।
वीरासनसमासीनां महाकालोपरि स्थिताम् ।।४६।।

पद्मा—अब एक और परमदुर्लभ ध्यान का वर्णन करता हूँ। भयंकर मुख वाली, भयंकर दाढ़ो वाली, तीन नेत्रों वाली, शव के हाथों को अपनी करधनी बनाने, नग्ना, वीरासन में आसीन, महाकाल के ऊपर स्थित, नग्ना भगवती काली का स्मरण करना चाहिए ॥४५-४६॥

श्रुतिमूलसमाकीर्णां सृक्कणीं घोरनादिनीम् ।
मुण्डमालागलद्रक्तचर्चितां पीवरस्तनीम् ।।४७।।
मदिरामोदितास्फालकम्पिताखिलमेदिनीम् ।
वामे खड्गं छिन्नमुण्डं धारिणीं दक्षिणे करे ।।४८।।
वराभययुतां घोरवदनां लोलजिह्विकाम् ।
शकुन्तपक्षसंयुक्तबाणकर्णविभूषिताम् ।।४९।।
शिवाभिर्घोररावाभिः सेवितां प्रलयोदिताम् ।
चण्डहासचण्डनादचण्डाख्यानैश्च भैरवैः ।।५०।।
गृहीत्वा नरकङ्कालं जयशब्दपरायणैः ।
सेविताखिलसिद्धौघैर्मुनिभिः सेवितां पराम् ।।५१।।
एषामन्यतमं ध्यानं कृत्वा च साधकोत्तमः ।
मानसैरुपचारैश्च सोऽहमात्मानमर्चयेत् ।।५२।।

पद्मा—जिनके होंठो के किनारे कानों तक फैले हैं, वे भयानकर स्वर करने वाली है। उनकी देह मुण्डमाला से बह रहे रक्त से भीगी है, उनके दोनो स्तन मांसल एवं ऊँचे हैं। वे मदिरा पान से मत्त होकर धरती को कंपा रही है। उनके बायें हाथों में खड्ग तथा दाहिने हाथों में कटा हुआ सिर है। वे वर एवं अभय युक्त भयानक मुख और लपलपाती जीभ वाली हैं। इनके कान शकुन्त पक्षी के पंख से युक्त बाण द्वारा सुशोभित है। यह भयानक स्वर करने वाली सियारिनों (शिवाओं) के द्वारा सेविता हैं। इनके प्रचण्ड हास्य एवं प्रचण्डनाद व प्रचण्ड कलरव के द्वारा जय शब्द करनेवाले भैरवगण नरकंकाल धारण करके स्थित रहते हैं, जो सम्पूर्ण सिद्ध मुनिगण द्वारा सेविता हैं इस प्रकार का ध्यान श्रेष्ठ साधक करे। इस ध्यान में मानसिक उपचार के बाद सोऽहं मन्त्र से आत्मार्चन करे ॥४६-५२॥

ततो देवीं समभ्यर्च्य अर्घ्यद्वयं निवेदयेत् ।
दशपञ्चारपद्मेषु पीठपूजां समाचरेत् ।।५३।।
तत्रावाह्य महादेवीं नियमेन समाहितः ।
ततो ध्यायेन्महादेवीं कालिकां कुलभूषणाम् ।।५४।।

महाकालं यजेद् यत्नात् पीठशक्तिं ततो यजेत्।
कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम्।।५५।।
विप्रचित्तां तथा चैव बहिः षट्कोणके पुनः।
उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां तत्र त्रिकोणके पुनः।।५६।।
नीलां घनां वलाकाञ्च तथा परत्रिकोणके।
मात्रां मुद्रां नित्याञ्चैव तथैवान्तस्त्रिकोणके।।५७।।
सर्वा श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषणा।
तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्ती शुचिस्मिता।।५८।।

पद्मा—इसके पश्चात् देवी की पूजा का समापन करते हुये उन्हे दो अर्घ्य प्रदान करे। मणिपूर चक्र में पूजन करके पीठ पूजन करे। वहाँ पर देवी का आवाहन करते हुये नियम सहित कौलिकों की कुलभूषणा महादेवी काली का ध्यान करे। सर्व प्रथम महाकाल का पूजन करे। इसके पश्चात् पीठ शक्तियों की पूजा करे। काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, तथा विप्रचित्ता का स्वाधिष्ठान चक्र में पूजन करें। इसके पश्चात् उग्रा, उग्रप्रभा तथा दीप्ता का त्रिकोण में (मूलाधारमे) पूजन करे। तत्पश्चात् परत्रिकोण में नीला, घना तथा बला का पूजन करे। यह सभी शक्तियाँ श्याम वर्णा, खड्गधारिणी, मुण्डमाला से विभूषिता, बायें हाथ में तर्जनी धारण करने वाली तथा पवित्र मुस्कान वाली हैं॥५३-५८॥

ब्राह्मयाद्यास्तथावाह्य यजेत् पूर्वदलक्रमात्।
ब्राह्मी नारायणी चैव तथैव च महेश्वरी।।५९।।
चामुण्डापि च कौमारी तथा चैवापराजिता।
वाराही च तथा पूज्या नारसिंही तथैव च।।६०।।
सर्वासामपि दातव्या बलिः पूजा तथैव च।
अनुलेपनकं गन्धं धूपदीपौ च पानकम्।।६१।।
त्रिस्त्रिः पूजा च कर्त्तव्या सर्वासामपि साधकैः।
पुनर्गन्धादिभिः पूजा जप्त्वा शेषं समर्पयेत्।।६२।।
समयं चार्ययेद् देव्या योगिनीयोगिभिः सह।
मधु मांसं तथा मत्स्यं यत् किञ्चित् कुलसाधनम्।।६३।।
शक्त्यै दत्वा ततः पश्चाद् गुरवे विनिवेदयेत्।
तदनुज्ञां मूर्ध्नि कृत्वा शेषं चात्मनि योजयेत्।।६४।।
मधु मांसं विना यस्तु कुलपूजां समाचरेत्।
जन्मान्तरसहस्राय सुकृतिस्तस्य नश्यति।।६५।।

पद्मा—अब ब्राह्मी आदि देवी गणों का आवाहन का पूर्वदल के क्रम से पूजा करे। ब्राह्मी, नारायणी, महेश्वरी, चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, वाराही, तथा नारसिंही इन सभी को वलि प्रदान कर पूजन करे। उन्हे अनुलेपन, गन्ध, धूप, दीप तथा पानक (पेय पदार्थ) प्रदान करे। साधक इन सभी का तीन तीन बार पूजन करे। पुनः गन्धादि द्वारा पूजन करे और जप करे। जप के अन्त में जप का समर्पण करे। देवी के साथ ही योगिनी योगी की पूजा करे। मधु, मांस तथा मत्स्य जो कुछ भी कुल साधन में दे सके शक्ति को प्रदान करे। इसके पश्चात् इन वस्तुओं को गुरु को समर्पित करे। इसके पश्चात् गुरु का आदेश शिरोधार्य कर शेष प्रसाद साधक स्वयं ग्रहण करे। जो साधक बिना मधु एवं मांस के कुलपूजा करता है उसके हजारों जन्मों के सुकर्म नष्ट हो जाते हैं ॥५९-६५॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मकारपञ्चकैर्यजेत्।
मधुना न विना मन्त्रं न मन्त्रेण विना मधु॥६६॥
परस्परविरोधेन कथं सिध्यन्ति साधकाः।
कुण्डकुम्भकपालादिपदार्थानां निषेवणम्॥६७॥
सौरे तन्त्रे विरुद्ध च शैवे शाक्ते महाफलम्।
ब्रह्माण्डखण्डसम्भूतमशेषरत्नसम्भवम्॥६८॥
श्वेतं पीतं सुगन्धं च निर्मलं भूरितेजसम्।
अथवा कुम्भमध्येऽस्मिन् स्रवन्तं परमामृतम्॥६९॥
अन्तर्लयो बह्निर्मध्ये त्रिकोणोदरवर्तिनि।
तद् बाह्यं स्फाटिकोदारमणिचन्द्रं च मण्डलम्॥७०॥
तेनामृतेन तद्बाह्ये चिन्तयेत् परमामृतम्।
आरम्भस्तरुणः प्रौढ़स्तदन्ते तरुणः पुनः॥७१॥
एभिरुल्लासवान् योगी स्वयं शिवमयो यतः।
सर्वशेषे च देवेशि सामान्यार्घ्यं पदेऽर्पयेत्॥७२॥
विशेषार्घ्यं शिवे दत्वा देव्याः प्रियतमो भवेत्।
साङ्गक्रियां पदे दत्वा सामान्यार्घ्यं शिवे भवेत्॥७३॥
इत्युक्त्वा स परामयी शक्तितोषणकारक।
भोगेन लभते मोक्षं बहुना जल्पितेन किम्॥७४॥
नियमः पुरुषे ज्ञेयो न योषित्सु कदाचन।
यद्वा यद्वा येन केन सर्वदा सर्वतोऽपि च॥७५॥
योषितां ध्यानयोगेन शुद्धशेषं न संशयः।
बालां वा यौवनोन्मत्तां वृद्धा वा युवतीं तथा॥७६॥

कुत्सितां वा महादुष्टां नमस्कृत्य विसर्जयेत् ।
तासां प्रहारो निन्दा च कौटिल्यमप्रियं तथा ।।७७।।
सर्वथा न च कर्तव्यमन्यथा सिद्धिरोधकृत ।
इति ते कथितं शेषमाचरेद् लक्षणं प्रिये ।
नित्यपूजाक्रमं भक्त्या ज्ञात्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ।।७८।।

इति श्रीकङ्कालमालिनी तन्त्रोक्त महाकालीमन्त्रपूजा कथनम् सम्पूर्णम् ।

पद्मा—इसलिए सभी प्रयत्न करके पञ्च मकार (मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा एवं मैथुन) के द्वारा पूजन करे। मद्य के बिना मंत्र तथा मंत्र के विना मद्य परस्पर विरोधी बाते हैं। ऐसे मे साधक को सिद्धि कैसे प्राप्त होगी। सौरतन्त्र में कुण्ड, कुम्भ, कपालादि पदार्थो का सेवन निषिद्ध है किन्तु शैव एवं शाक्त तन्त्र में यह सब महाफलदायक है। ब्रह्माण्ड खण्ड से उत्पन्न अनन्तर रत्न, श्वेत पीत, सुगन्ध, निर्मल तथा अत्यन्त तेजस्वी इस शरीर के ऊर्ध्वभाग से श्रेष्ठ अमृत सदैव ही झरता रहताहै। सहस्रार चक्र में जो त्रिकोण विद्यमान हैं उसमें से झरते हुए अमृत का चिन्तन करने से अन्तर्लय हो जाता है। स्फटिक के समान स्वच्छ मणियुक्त पात्र जो चन्द्रमण्डल की भाँति है उसमें जो अमृत है उस अमृत के द्वारा परमामृत का चिन्तन करे। आरम्भ में तरूण, तत्पश्चात् प्रौढ़ इसके पश्चात् पुनः तरुण इन उल्लासों का चिन्तन करने पर योगी स्वयं शिवमय हो जाता है। हे देवेशि ! सबसे अन्त में शक्ति के चरणों में सामान्य अर्घ्य प्रदान करे। हे शिवे ! विशेषार्घ्य प्रदान करने पर वह साधक देवी को प्रिय हो जाता है। सभी क्रियायें करने के बाद देवी को सामान्यार्घ्य प्रदान करे। ऐसा कहकर परामयी शक्ति को सन्तुष्ट रखने वाले शिव ने कहा कि इस मार्ग में भोग से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है अधिक क्या कहा जाय ? इस मार्ग के समस्त नियम पुरुषों के लिये ही है। शक्ति के लिये कोई नियम नहीं है। वे कहीं पर भी किसी प्रकार से भी भगवती का ध्यान कर सकती हैं। बालिका, जवानी से मदमस्त स्त्री, वृद्धा, युवती, कुत्सिता, महादुष्ट को प्रणाम कर विसर्जित करे। स्त्रियों पर प्रहार करना, उनके प्रति कुटिल व्यवहार करना तथा उनके साथ अप्रिय आचरण करना निषिद्ध है। ऐसा करने पर सिद्धि के मार्ग से अवरोध उत्पन्न हो जाता है। हे प्रिये ! इस प्रकार से सभी आचरण करे। इस प्रकार से नित्यपूजा करके से अनुष्ठान करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है ॥६६-७८॥

इस प्रकार सिद्धाश्रमस्थ परमहंस स्वामी श्री निखिलेश्वरानन्द जी के शिष्य आचार्य अजय कुमार उत्तम द्वारा श्री कङ्कालमालिनीतन्त्रोक्त महाकालीमन्त्रपूजा नामक प्रकरण की **पद्मा** हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥

४. श्रीकालीप्रकरण

महानिर्वाणतन्त्रे चतुर्थोल्लासे सदाशिववाक्यम्

तव रूपं महाकाली जगत्संहारकारकः ।
महासंहारसमये कालः सर्वं ग्रसिष्यति ।।१।।
कलनात् सर्वभूतानां महाकालः प्रकीर्त्तितः ।
महाकालस्य कलनात् त्वमाद्या कालिका परा ।।२।।
कालसङ्कलनात् काली सर्वेषामादिरूपिणी ।
कालत्वादादिभूतत्वादाद्या कालीति गीयते ।।३।।
पुनः स्वरूपमासाद्य तमोरूपं निराकृति ।
वाचातीतं मनोऽगम्यं त्वमेकैवावशिष्यसे ।।४।।
साकारापि निराकारा मायया बहुरूपिणी ।
त्वं सर्वादिरनादिस्त्वं कर्त्री हर्त्री च पालिका ।।५।।
अतस्ते कथितं भद्रे! ब्रह्मन्त्रेण दीक्षितः ।
यत् फलं समवाप्नोति तथैव फलसाधनात् ।।६।।

गुप्तसाधनतन्त्रे षष्ठपटले

आलीढं कीदृशं नाथ! प्रत्यालीढन्तु कीदृशम् ।
कथं सा दक्षिणाकाली श्मशानालयवासिनी ।।७।।

इति देवीप्रश्नोत्तरम् ।

आलीढं वामपादन्तु प्रत्यालीढन्तु दक्षिणम् ।
संहाररूपिणी काली जगन्मोहनकारिणी ।।८।।
वह्निरूपा महामाया सत्यं सत्यं न संशयः ।
अतएव महेशानि! श्मशानालयवासिनी ।।९।।
आलीढपादा सा देवी प्रत्यालीढा क्षणे क्षणे ।
अनन्तरूपिणी श्यामा को वक्तुं शक्यते प्रिये!।
अनन्तरूपिणी श्यामा चतुर्वर्गप्रदायिणी ।।१०।।

पिच्छिलातन्त्रे द्वितीय पटले

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां शिरोरत्नपदाम्बुजा ।
कलौ काली कलौ काली नान्यदेवः कलौ युगे ।।११।।

शान्त्यादावपि सा काली पूजनीया विशेषतः ।
कालिकापूजने श्रद्धा यदि सञ्जायते हृदि ।
न तदा ग्रहरोगाणां भयमस्ति कदाचन ।।१२।।
सर्वेषां देवि! मन्त्राणां श्रेष्ठोऽत्र कालिकामनुः ।
यस्य ग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तोऽधर्मोऽपि ।।१३।।

कुब्जिकातन्त्रे प्रथमपटले

के मे गोत्रे समुत्पन्नाः कालीं साधितुमुद्यताः ।
तच्छ्रुत्वा पितरः सर्वे नृत्यन्ति हृष्टमानसाः ।।१४।।

तथा–

अदेया परमा विद्या कलौ पूर्णफलप्रदा ।
कालिका मोक्षदा देवि! कलौ शीघ्रफलप्रदा ।।१५।।
गुरोर्मुखान्महाविद्या गृह्णीयात् पापनाशिनीम् ।

तथा–

धर्माधर्मादिकं यत्तु कुरुते साधकोत्तमः ।।१६।।
तत् सर्वमनुगृह्णाति कालिकापूजने ध्रुवम् ।
सम्प्रदायविधानेन कर्त्तव्यश्च महेश्वरिः ।
सम्प्रदायविहीनानां फलं न स्यात् सुरेश्वरि!।।१७।।

इत्याद्याप्रशंसा ।

पिच्छिलातन्त्रे

कालीनिन्दाकरा लोके भविष्यन्ति गतायुषः ।
तेषां पुत्रकलत्राणां नाशोऽन्ते नरकं व्रजेत् ।।१८।।

इत्याद्यानिन्दादोषः ॥

तथा/एकादशपटले

अथ कालीमनुं वक्ष्ये येन सर्वार्थसाधकः ।
सर्वसिद्धीश्वरो वीरः सर्वलोकप्रपूजितः ।।१९।।
यस्य विज्ञानमात्रेण चतुर्वर्गफलं लभेत् ।
सर्वासु देवदेवीषु दक्षिणा प्रकृतिः प्रिये!।।२०।।
तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि दुर्लभं भुवनत्रये ।
यक्षस्कन्दं समुद्धृत्य वह्निवामाक्षिसंयुतम् ।।२१।।

इन्दुविन्दुसमायुक्तं कालीवीजमिदं स्मृतम् ।
प्राप्यैतं परमं गुह्यं सारात्सारं परात्परम् ।।२२।।
चतुर्वर्गं लभेन्मन्त्री हेलया हरभाविनि !।
त्रिगुणं चेन्महेशानि ! बीजं साररतरं भवेत् ।।२३।।
नैवास्याः सदृशी विद्या काचिदस्ति महेश्वरि !।
शान्तिपुष्ट्यादिकमपि साधयेदनयाचिरात् ।।२४।।
महापदि महात्रासे महादारिद्र्यसङ्कटे ।
वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ महाघोरे भयङ्करे ।।२५।।
राजादिभयमापन्ने राजचक्रे विशेषतः ।
उक्तं मन्त्रमिमं देवि ! लक्षमात्रं समभ्यसेत् ।।२६।।
देवक्रोधे भये भीमे गृहदोषे भयानके ।
प्रान्तरे भूमिसंस्थेषु दस्युभिर्वाथ संवृते ।।२७।।
शान्तिकार्य्येषु सर्वत्र धननाश उपस्थिते ।
स्वजनानान्तु विद्वेषे अयुतं प्रजपेन्मनुम् ।।२८।।
जापिनः पाति सा काली भयेभ्यः स्कन्दवत् सदा ।
तस्मात् परमयत्नेन कालिकां भज सुन्दरि !।।२९।।
विना जपान्महाविद्या सिद्धिविद्यापि हानिदा ।
विना होमैर्न चैश्वर्य न सिद्धिर्जपनं विना ।।३०।।
पूजां विना न पूजास्ति सर्वत्र परमेश्वरि !

तथा ।

एतन्मन्त्रद्वयं देवि ! न देयं प्राणसङ्कटे ।।३२।।
स्नेहेन यदि तद्द्यादयुतं जपमाचरेत् ।
ज्ञात्वा मन्त्रं महेशानि ! सर्वशास्त्रार्थविद्भवेत् ।।३३।।
कविर्वाग्मी भवेच्छूरः सर्वेषां प्रियदर्शनः ।
विख्यातिश्चापि लोकेषु प्राप्यान्ते मोक्षमाप्नुयात् ।।३४।।

गुप्तसाधन तन्त्रे षष्ठपटले

श्रृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि दक्षिणाकल्पमुत्तमम् ।
यस्याः प्रसादमात्रेण भवाब्धौ न निमज्जति ।।३५।।
स्वरान्तं वह्निसंयुक्तं वामनेत्रविभूषितम् ।
विन्दुनादकलायुक्तं मन्त्रं त्रैलोक्यमोहनम् ।।३६।।

स्वरान्तं ककारः ।।

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक्छन्द उदाहृतम् ।
दक्षिणा कालिका प्रोक्ता देवता सर्वसिद्धिदा ।।३७।।
मायाबीजं वीजमस्याः कूर्च्चवीजन्तु शक्तिम् ।
निजवीजं महेशानि! कीलकं सर्वमोहनम् ।।३८।।
धर्म्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।

तथा ।

पूजायाः पूर्वदिवसे आदौ क्षौरादिकं चरेत् ।।३९।।
हविष्यान्नं महेशानि! भोजनं वा निरामिषम् ।
ततः परस्मिन् दिवसे प्रातः स्नात्वा तु साधकः ।।४०।।
नित्यपूजां समाप्यादौ देववत् शुद्धमानसः ।
गुरुर्वा गुरुपुत्रो वा गुरुपत्नी च सुव्रते!।।४१।।
आगमोक्तपूजने तु अधिकारी गुरुः स्वयम् ।
गुरोरभावे देवेशि! स्वयं पूजादिकं चरेत् ।।४२।।

वरदातन्त्रे दशमपटले तु यत् ।।

तन्त्रोक्तानि स्वकल्पोक्तकर्म्माणि स्वयमाचरेत् ।
गुरुणा कारयेद्वापि पुत्रवत्या स्त्रिया तथा ।।४३।।
अन्यथानुष्ठितं सर्वं भवत्येव निरर्थकम् ।

इत्यनेन विकल्पितं तदनेनैकवाक्यतया गुरोरभावे स्वयं कणमिति व्यवस्थितं मुख्यापेक्षतया प्रतिनिधेः प्राधान्यं वचन् बलात् ।। स्वयमसामर्थ्ये तु पुत्रवत्या स्त्रिया कारयितव्यमित्यपि सुतरामायातम् ।।

अन्य द्वारा तान्त्रिकपूजादिकरणे दोषमाह–

गुप्तसाधनतन्त्रे

एभिर्विना महेशानि! तान्त्रिकैर्देशिकैर्यदि ।।४४।।
तस्यपूजाफलं सर्वं ग्रस्यते यक्षराक्षसैः ।
अतएव महेशानि! गुरुः कर्ता विधीयते ।।४५।।
ब्रह्मरूपो गुरुः साक्षाद् यदि पूजादिकं चरेत् ।
तत्तत् सर्वं महेशानि! शतकोटिगुणं भवेत् ।।४६।।
अथ वा परमेशानि! स्वयं पूजादिकं चरेत् ।
स्वयं पूजादिकं कृत्वा पूजाद्रव्यादिकञ्च यत् ।।४७।।
तत् सर्व परमेशानि! गुरोरग्रे निवेदयेत् ।

गुरौ दत्तं महेशानि! सर्वं कोटिगुणं भवेत् ।।४८।।

गुरुपत्न्या पूजादिकरणे होमादि नास्ति तदुक्तंतत्रैव—

गुरुपत्नी महेशानि! यदि पूजादिकं चरेत् ।
बलिदानादिकं कार्य तत्र होमं विवर्ज्जयेत् ।।४९।।
होमीयद्रव्यमानीय देव्यग्रे स्थापयेद् बुधः ।
मूलमन्त्रं समुच्चार्यं महादेव्यै निवेदयेत् ।।५०।।
तेन होमफलं जातं न वह्नौ होमयेद् बुधः ।

तथा

गुरुणा यत् छतं देवि! तत् सर्वमक्षयं भवेत् ।।५१।।
ऋत्विकपुत्रादयो देवि! स्मृत्युक्ता बहवः प्रिये!
तन्त्रोक्ते परमेशानि! पूजादौ नैव कारयेत् ।।५२।।
पुरोहितं समानीय यदि पूजादि कारयेत् ।
तस्य सर्वार्थहानिः स्यात् क्रुद्धा भवति कालिका ।।५३।।
पूजाकाले महेशानि! नान्यवक्त्रं विलोकयेत् ।
इष्टपूजादिकं सर्वं यः कुर्याज्जनसन्निधौ ।।५४।।
तस्य सर्वार्थहानिः स्यात् क्रुद्धा भवति कालिका ।
वरं पूजा न कर्त्तव्या न कुर्यादन्यसन्निधौ ।।५५।।
अन्य सन्निहिते देवि! यदि पूजापरो भवेत् ।
विष्णुतन्त्रोक्तपूजादि तत्तन्मुद्रा प्रदर्शयेत् ।।५६।।
तेन पूजादिकं जातं न च व्यक्तं कदाचन ।

वरदातन्त्रे

विशेषकर्म गोप्तव्यं मन्त्रवत् परमेश्वरि!।।५७।।
दीपान्वितादिपूजासु परमोत्सवमाचरेत् ।
भवानीप्रीतये सर्वं कर्म कुर्यात् प्रसन्नधीः ।।५८।।
तत्र भक्तिः सदा कार्या यस्य या इष्टदेवता ।
तत्राभक्तिर्महादुःखदायिनी कुष्ठकारिणी ।।५९।।
निजदेवीं परित्यज्य तथैव च निजं गुरुम् ।
योऽन्यत्र भक्तिमान् देवि! तस्य सर्वं विनश्यति ।।६०।।
नान्यनिन्दा प्रकर्त्तव्या कदाचिदपि साधकैः ।
एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं सर्वत्र कथितं मया ।।६१।।

उपाधिभावभेदेन नानात्वं भजते सति !।
एकं पूजयते यस्तु सर्वानर्चयतिस्म सः ।।६२।।

अथ पूजा सा तु त्रिविधा मानसान्तर्यागात्मिका वाह्या च । यथा मुण्डमालातन्त्रे पञ्चमपटले–

महासिद्धिकरी पूजा मानसी मुक्तिदायिनी ।
अन्तर्यागात्मिका सर्वजीवत्वपरिणाशिनी ।।६३।।
वाह्यपूजा राजसी च सर्वसौभाग्यदायिनी ।
भुक्तिमुक्तिप्रदा चैव सर्वापत्परिणाशिनी ।।६४।।
सर्वदोषक्षयकरी सर्वशत्रुनिपातिनी ।
सर्वरोगक्षयकरी सर्वबन्धनमोचनी ।।६५।।
न वीराणां पशूनाञ्च वाह्यपूजाधमा प्रिये !
केवलानाञ्च दिव्यानां वाह्यपूजाधमा स्मृता ।।६६।।

तोड़लतन्त्रे तृतीयपटले

सूत्राकारेण देवेशि ! पूजाविधिरिहोच्यते ।
स्वस्ति वाच्य च सङ्कल्प्य घटं संस्थाप्य यत्नतः ।।६७।।
मन्त्रेणाचमनं कार्यं सामान्यार्घ्यं ततो न्यसेत् ।
तज्जलैर्द्वारमभ्युक्ष्य द्वारपूजां समाचरेत् ।।६८।।
त्रिविधं विघ्नमुत्सार्य भूतापसरणं ततः ।
आसनञ्च समभ्यर्च्च्य गुरुदेवं नमो सुधीः ।।६९।।
करशुद्धिञ्च तालञ्च त्रयं दिग्बन्धनं ततः ।
वह्निना वेष्टनं कार्यं भूतशुद्धिमथाचरेत् ।।७०।।
मातृकयाः षडङ्गञ्च कुर्यादन्तरमातृकाम् ।
मातृकाध्यानमाचर्य वाह्ये तु मातृकां न्यसेत् ।।७१।।
पीठन्यासं ततः कृत्वा प्राणायामं समाचरेत् ।
ऋष्यादिकं कराङ्गञ्च वर्णन्यासं समाचरेत् ।।७२।।
षोढ़ा न्यासं ततो देवि ! व्यापकं तदनन्तरम् ।
एवं समाहितमनास्तत्वन्यासं समाचरेत् ।।७३।।
बीजन्यासं ततो देवि ! व्यापकं विन्यसेत् सुधीः ।
मूलेन सप्तधा न्यासं मानसैः पूजनं चरेत् ।।७४।।
विशेषार्घ्यं पीठपूजां पुनर्ध्यानं सनेत्रकम् ।
मुद्रादिदर्शनं कार्यमावाहनषडङ्गकम् ।।७५।।

धेन्वादिकं ततः प्राणप्रतिष्ठां मूलपूजनम् ।
आज्ञाप्रार्थनमङ्गानि काल्यादींश्च प्रपूजयेत् ।।७६।।
ब्राह्म्यादीरसिताङ्गादीन् महाकालं प्रपूजयेत् ।
बलिदानं ततो होमं प्राणायामं ततो जपम् ।।७७।।
जपं समर्पयेद्धीमान् प्राणायामं ततश्चरेत् ।
स्तुतिश्च कवचं स्मृत्वा चाष्टाङ्गं प्रणमेतसुधीः ।।७८।।
शिवोऽहमिति सञ्चिन्त्य संहारेण विसर्जयेत ।
ऐशान्यां मण्डलं कृत्वा चाण्डाल्युच्छिष्टपूर्विका ।।७९।।
अर्घ्यं सन्धार्य शिरसि चन्दनन्तु ललाटके ।
नैवेद्यं किञ्चित् स्वीकृत्य विहरेच्च निजेच्छया ।।८०।।

महाकालध्यानं निरुत्तरतन्त्रेतृतीयपटले ।। यथा–

धूम्र-वर्णं महाकालं जटाभारान्वितं यजेत् ।
त्रिनेत्रं शिवरूपञ्च शक्तियुक्तं निरामयम् ।।८१।।
दिगम्बरं घोररूपं नीलाञ्जनचयप्रभम् ।
निर्गुणञ्च गुणाधारं कालीस्थानं पुनः पुनः ।।८२।।

खड्गादिपूजाक्रमस्तु निरुत्तरे । तथा–

खड्गं मुण्डं यजेद्वामे हस्ते च कुलसुन्दरि !।
पूजयेद्दक्षिणे हस्ते अभयञ्च वरं तथा ।।८३।।

एवमसिताङ्गादिपूजाक्रमोऽपि तथैव–

चतुर्द्वारि यजेद्देवि ! असिताङ्गादिभैरवान् ।
पूर्वादिक्रमतो देवि ! द्वारि द्वारि द्वयं द्वयमिति ।।८४।।

संक्षेपपूजासूत्रन्तु तोड़लतन्त्रे तृतीयपटले–

संक्षेपपूजामथवा कुर्यान्मन्त्री समाहितः ।
आदावृष्यादि विन्यस्य करशुद्धिस्ततःपरम् ।।८५।।
अङ्गुलीव्यापकन्यासौ हृदादिन्यास एव च ।
तालत्रयञ्च दिग्बन्धः प्राणायामस्ततः परम् ।।८६।।
ध्यानं मानसयागञ्च अर्घ्यस्थापनमेव च ।
पीठपूजां पुनर्ध्यानं ततश्चावाहनं चरेत् ।।८७।।
जीवन्यासं ततः कृत्वा पूजयेत् परदेवताम् ।
अङ्गपूजाञ्च काल्यादिं ब्राह्म्यादिञ्चाष्टभैरवान ।
महाकालं पूजयित्वा गुरुपङ्क्तिं यजेत्ततः ।।८८।।

खड्गादीन् पूजयित्वा तु पुनर्देवीं प्रपूजयेत् ।
प्राणायामं ततः कृत्वा चाष्टाङ्गं प्रणमेत् सुधीः ।।९०।।
स्तुतिञ्च कवचं स्मृत्वा विशेषार्घ्यं प्रदापयेत् ।
आत्मसमर्पणं कृत्वा संहारेणविसर्जयेत् ।।९१।।
ऐशान्यां मण्डलं कृत्वा चाण्डल्युच्छिष्टपूर्विका ।
नैवेद्यं किञ्चित् स्वीकृत्य विहरेच्चनिजेच्छया ।।९२।।

पिच्छिलातन्त्रे द्वादशपटले

नित्यपूजाविधिं वक्ष्ये शृणुष्व प्राणवल्लभे !।
यत पूजादिकं देवि ! न ददाति फलं क्वचित् ।।९३।।
पूजया लभते पूजां तस्मात् पूजापरो भवेत् ।
नित्यपूजाविहीनस्य न काम्यं सिध्यते क्वचित् ।।९४।।

तथा

आचम्य द्वारदेशे तु सामान्यार्घ्यं समाचरेत् ।
लिपिऋष्यादिविन्यासो मूलेन करशोधनम् ।।९५।।
करव्यापकविन्यासं कृत्वाङ्गानि न्यसेत् सुधीः ।
तालत्रयं दिशां बन्धः प्राणायामत्रयं तथा ।।९६।।
ध्यानमिष्टस्यैव पूजा जपश्च कालिकार्च्चनम् ।
अयमेव विधिः प्रोक्तः सर्वेषां यजनक्रमः ।।९७।।
उपचारैः षोडशैस्तु तद्भवेत् पूजनं महत् ।
नित्ये दशोपचारास्तु पञ्च वा विचरेत् शिवे !।।९८।।
अभावे गन्धपुष्पाभ्यां पुष्पेण तद्भावतः ।
तदभावे यजेत् पत्रेस्तण्डुलेन जलेन वा ।।९९।।
मानसीं तदभावेऽपि पूजां न लङ्घयेत् क्वचित् ।
लङ्घने सर्वनाशः स्यादापदश्च पदे पदे ।।१००।।
एतयोः पुरश्चरणं लक्षजपः ।

कालीतन्त्रे द्वितीय पटले

आदौ पुरस्क्रियां कुर्यान्नियमेनयथास्थितः ।
लक्षमेकं जपेद्विद्यां हविष्याशी दिवा शुचिः ।।१०१।।
रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः ।
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगार्हो न चान्यथा ।।१०२।।

एतद्वचनं तन्त्रसारेऽपि धृतमस्ति किन्तु अर्वाचीना एतद्वचने लक्षद्वयदर्शनात् तन्त्रसारकारलिखितानिरुद्धसरस्वतीप्रकरणीयलक्षद्वयजपदर्शनाच्चैतयोरपि लक्षद्वयजपेनदिवारात्रिभेदकृतेन पुरश्चरणं वदन्ति। तन्न। तन्त्रसारकारेणापि एतयोर्लक्षजपेन पुरश्चरणं स्पष्टमुक्तम्। तत्प्रमाणं तद्धृतसिद्धेश्वरीयवचनं द्रष्टव्यम्। वस्तुतस्तु एतयोरनिरुद्धसरस्वत्याश्च लक्षद्वयेन् यत् पुरश्चरणमुक्तं तत् पशुकल्पवीरकल्पभेदेन। तदुक्तं श्यामारहस्यधृतस्वतन्त्रतन्त्रे। यथा–

दिवा लक्षं शुचिर्भूत्वाहविष्याशीजपेन्नरः।
ततस्तु तद्दशांशेन होयेद्धविषा प्रिये!।।१०३।।

तर्पयेत्तीर्थतोयेन पयसा हविषा तथा।
मधुना वा सितामिश्रतोयेन परमेश्वरि !।।१०४।।

देवीश्चाभिषिचेत्तोयैस्तर्पणस्यदशांशतः।
तद्दशांश हविष्यान्नैर्भोजयेद्भक्तितः प्रिये।।१०५।।

कालीतन्त्रविदो विप्रान् गुरवे दक्षिणां ददेत्।
पाशवं कथितं कल्पं श्रृणु वैरं ततः प्रिये।।१०६।।

इति

निरुत्तरतन्त्रे चतुर्थपटलेऽपि–

दिवा लक्षं जपेद्विद्यां हविष्याशी सदा शुचिः।
दशांशं जुहुयाद्वह्नौ तद्दशांशञ्च तर्पणम्।।१०७।।

तद्दशांशाभिषेकञ्च तीर्थतोयेन पार्वति!।
तद्दशांशं हविष्यान्नैर्भक्तितो भोजयेद्द्विजान्।।१०८।।

पाशवं कथितं कल्पं श्रृणु वैरमतः परम्।
नक्तं यामगते देवि! स्वकुल परिचिन्तयेत्।।१०९।।

इत्युपक्रम्य।

तत्त्वचिन्तापरो मन्त्री जपेल्लक्षं कुलाकुलम्।
तद्दशांश जुहुयादग्नावामवैः पललान्वितैः।।११०।।

तद्दशांशं तर्पणञ्च सुधापललसंयुतम्।
अभिषेकं तद्दशांशं तीर्थतोयेन पार्वति!।।१११।।

कुलद्रव्यैस्तद्दशांशं भक्तितो भोजयेद् द्विजान्।
आदावन्ते च मध्ये शक्तीनां भोजयेत् कुलम्।।११२।।

तद्भावे महेशानि ! शक्तिमात्रं प्रपूजयेत् ।
पुरश्चरणकाले हि यदि शक्तिं न पूजयेत् ।।११३।।
तस्य पूजा जपो होमो अभिचाराय कल्पते ।

प्रथमपटलेऽपि–

दिवा च पाशवं कर्म रात्रिकर्म च कौलिकम् ।
पुरश्चर्यादिकं कर्म द्विविधं भावभेदतः ।।११४।। इति

तस्मात् पशुकल्पे पुरश्चरणं दिवा लक्ष जपः । वीरकल्पे तु रात्रौ लक्षजप इति सिद्धम् । यदि वा कालीतन्त्रलिखनानुसारेण पशुकल्पेऽपि दिवारात्रिभेदेन लक्षद्वयजपेन पुरश्चरणमङ्गीक्रियते तदा तत्तन्त्रोक्तम् । नानाचारं न कर्त्तव्यं न चारणमितस्ततः । भूतहिंसा न कर्त्तव्या पशुहिंसा विशेषतः । बलिदानं विना देवि ! हिंसा सर्वत्र गर्हितम् । इति वचनेन नानाचारनिषेधस्य वैयर्थ्यापत्तिरतएवं कर्पूरादिस्तवे । वशी लक्षं मन्त्रं प्रजपति हविष्याशनरतो दिवा मातर्युष्मश्चरणयुगलध्याननिपुणः । परं नक्त नग्नो निधुवनविनोदेन च मनुं जपेल्लक्षं सम्यक् स्मरहरसमानः क्षितितले । इत्यत्र परमित्यनेन निधुवनविनोदेनेत्यनेन च वीरकल्प एव रात्रिपुरश्चरणमुक्तम् । निधुवनविनोदेन रतिक्रीड़ानन्देन तेषां मन्त्राणां यजनविधिस्तन्त्रसारकारेणैव बहुधा लिखितस्तत्र सर्वं द्रष्टव्यम् ।।

श्री काली का प्रकरण

महानिर्वाणतन्त्र चतुर्थ उल्लास मे सदाशिव का कथन हैं कि हे महाकाली ! तुम्हारा रूप जगत् का संहार कारक है । महाप्रलय के समय काल सभी को ग्रस लेगा । काल सभी का ग्रास करता है इसी से उसका नाम महाकाल है । महाकाल का कलन करने से तुम परा आद्या कालिका कहलाती हो । तुम साकारा होकर भी निराकारा हो । अपनी माया के द्वारा तुम बहुत से रूप धारण करती हो । तुम अनादि होकर भी सबकी आदि हो । तुम सबकी जननी पालन करने वाली और नाश करने वाली हो ।

गुप्तसाधन तन्त्र षष्ठ पटल में कहा गया है कि आलीढ़ बायें पैर को कहते हैं और प्रत्यालीढ़ दायें पैर को । संहार स्वरूपिणी काली जग को मोहने वाली हैं । वे अग्निस्वरूपा महामाया श्मशानवासिनी हैं । आलीढ़पादा होते हुए भी वे महाकाली क्षण क्षण में प्रत्यालीढ़ा होती रहती हैं । अनन्तरूपिणी श्यामा का वर्णन करने मे कौन समर्थ है ? हे प्रिये ! वे धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का प्रदान करने वाली हैं ।

पिच्छिला तन्त्र द्वितीय पटल मे कहा गया है कि कलियुग में काली ही एकमात्र उपास्या है । ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देवता भी उन्हे प्रणाम करते हैं शान्ति आदि

कर्मों में भगवती काली की विशेष रूप से पूजा करनी चाहिए। भगवती काली के पूजन में श्रद्धा रखने से ग्रह, रोगादि का कभी भी भय नही होता है। हे देवि ! सभी मन्त्रों में काली का मन्त्र श्रेष्ठ है। इस मंत्र को ग्रहण करने से अधम प्राणी भी जीव-मुक्त हो जाता है।

कुब्जिका तन्त्र प्रथम पटल के अनुसार समस्त पितर गण तब हर्षित हो उठते हैं जब उनके कुल में कोई व्यक्ति भगवती काली की साधना करने को उद्यत होता है। यह परमाविद्या हर किसी को नही देना चाहिए। यह कलियुग में पूर्ण फल प्रदान करती है। कलियुग मे शीघ्र फल प्रदान करने वाली उस पापनाशिनी महाविद्या को श्री गुरुदेव के मुख से ग्रहण करना चाहिए। कालिका के पूजन से साधक के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। साधक को अपने सम्प्रदाय के अनुसार ही साधना करनी चाहिए। सम्प्रदाय विरुद्ध पूजन करने से उसका फल नही प्राप्त होता है।

पिच्छिला तन्त्र के अनुसार भगवती काली की निन्दा करने वाले मनुष्य की आयु कम हो जाती है और पुत्र स्त्री आदि का नाश हो जाता है और वे सब नरक मे जाते हैं।

पिच्छिला तन्त्र एकादश पटल अब मैं काली का मन्त्र कहता हूँ। यह साधक की सभी कामनाओं को पूर्ण करता है। काली का साधक सभी सिद्धियों का स्वामी, वीर तथा सभी लोकों में पूजनीय होता है। काली मन्त्र को जानने वाला धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। समस्त देव देवियों में दक्षिणा काली प्रकृति के समान है। उनका तीनो लोकों में दुर्लभ मन्त्र कहता हूँ। यक्ष स्कन्द (क) का उद्धार करके उसे वह्नि (र) और वामाक्षि (ई) से युक्त करे। इसे इन्दु (ँ) से युक्त करने पर काली बीज **क्रीं** बनता है। इसका त्रिगुणा करने पर **क्रीं क्रीं क्रीं** मन्त्र बनता है। हे महेश्वरि ! इसके समान कोई विद्या त्रिभुवन में भी नही है। इसका एक लाखमन्त्र जप करे। शान्ति, पुष्टि आदि कर्म इस विद्या के द्वारा शीघ्र ही सिद्ध हो जाते हैं। भयानक आपदा के समय, महान भय मे, अत्यन्त ही दरिद्रता के कारण संकट में होने पर, शत्रुओं की वृद्धि पर, रोग के बढ़ने में और भयङ्कर शासनादि के भय में उक्त मन्त्र का दस हजार जप करे तो देवसेनापति कार्त्तिकेय के समान भगवती काली जपकर्त्ता की रक्षा करती हैं। हे सुन्दरि ! इसलिए सभी प्रयास कर भगवती काली के मन्त्र का जप करे। जप के विना महाविद्या और सिद्ध विद्या भी हानि पहुँचाती है। होम के विना ऐश्वर्य तथा जप के विना अभीष्ट सिद्धि नही प्राप्त होती है। हे परमेश्वरि ! पूजा के बिना अर्चन पूर्ण नही होता है। हे देवि ! इन दो मन्त्रों को प्राणों के संकट में होने पर भी न दे। यदि किसी को स्नेह-वश मन्त्र दे भी तो सर्वप्रथम मन्त्र का दश हजार जप करे। हे महेशनि ! इस मन्त्र को जानने वाला सभी शास्त्रों का ज्ञाता

होता है। वह कवि, वक्ता, पराक्रमी, प्रियदर्शन और लोक प्रसिद्ध होकर अन्त में मोक्ष को प्राप्त करता है।

गुप्तसाधनतन्त्र षष्ठ पटल हे देवि ! श्रेष्ठ दक्षिणा कल्प कहता हूँ। इसका ज्ञान हो जाने पर साधक भवसागर से पार हो जाता है। स्वरान्त (क) वह्नि (र) से युक्त वामनेत्र (ई) से विभूषित और बिन्दु नाद कला (ँ) से युक्त **क्रीं** मन्त्र का उद्धार होता है। यह मन्त्र त्रैलोक्य मोहन है। इस मन्त्र के ऋषि भैरव, छन्द उष्णिक, देवता दक्षिणा कालिका, बीज माया अर्थात् ह्रीं शक्ति कूर्च (हूँ) कीलक निजबीज क्रीं और विनियोग धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के लिए है।

साधक पूजा के पहले दिन क्षौर कर्म करे। हे महेशानि ! हविष्यान्न अथवा निरामिष भोजन करे। इसके पश्चात् साधक अगले दिन प्रातः स्नान कर नित्य पूजा समाप्त कर देवता की भाँति शुद्ध होकर श्रीगुरुदेव अथवा गुरुपुत्र या गुरुपत्नी से आगमोक्त पूजा कराये क्योंकि आगमोक्त पूजा का एकमात्र अधिकार श्री गुरुदेव को है। श्री गुरुदेव के उपस्थित न होने पर साधक को स्वयं पूजन करना चाहिए।

वरदा तन्त्र दशम पटल तन्त्र में कहे अपने कल्प में कहे गये कर्मों को स्वयं करे। इसके अतिरिक्त अपने गुरुदेव अथवा पुत्रवती स्त्री से कराये। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार से कराने पर सम्पूर्ण अनुष्ठान व्यर्थ होता है। इस कथन से स्पष्ट है कि श्रीगुरुदेव के अभाव में स्वयं ही तान्त्रिक पूजा करनी चाहिए यदि स्वयं तान्त्रिक पूजा करने में असमर्थ हो तो पुत्रवती स्त्री के द्वारा कराना चाहिए।

अन्य द्वारा तान्त्रिक पूजा कराने में दोष-गुप्त साधन तन्त्र षष्ठ पटल तान्त्रिक साधक के अतिरिक्त अन्य किसी से तान्त्रिक पूजा कराने से उस पूजा का सम्पूर्ण फल राक्षसादि ग्रहण कर लेते हैं। अतः श्रीगुरुदेव ही पूजा करने के अधिकारी हैं। साक्षात् ब्रह्मरूपी गुरुदेव यदि स्वयं पूजा करें तो उसका फल सौ करोड़ गुणा अधिक मिलता है। अथवा हे परमेशनि ! साधक यदि स्वयं पूजा करे तो पूजा के सम्पन्न होने पर जो भी पूजा द्रव्यादि हो, उसे श्री गुरुदेव को निवेदित करे। श्रीगुरुदेव को जो कुछ दिया जाता है उसका करोड़ गुणा फल प्राप्त होता है। श्री गुरुपत्नी द्वारा पूजा कराने पर बलिदान और होमादि कार्य नही किये जाते। होम के पदार्थो को देवी के सम्मुख रखकर मूलमन्त्र के उच्चारण पूर्वक महादेवी को समर्पित करे, इसी से होम कर्म का फल मिल जाता है। अग्नि में होम कर्म न करे। गुरुदेव द्वारा जो कुछ भी किया जाता है उन सब का अक्षय फल प्राप्त होता है। पुरोहित द्वारा तान्त्रिक पूजन कभी न कराये अन्यथा सभी प्रकार से हानी होती है और भगवती काली भी अप्रसन्न हो जाती है। हे महेशानि ! पूजा काल में अन्य किसी का मुख

न देखे। जो साधक सभी के समाने इष्टपूजादि करता है तो उसकी सभी प्रकार से हानि होती है और भगवती काली भी क्रुद्ध हो जाती हैं। इसलिए अन्य लोगों के समक्ष पूजा न करे। हे देवि ! यदि अन्य लोगों के सामने पूजा करनी पड़े तो विष्णु तन्त्र में कही गयी विधि के अनुसार पूजा करे तथा वैसी ही मुद्रायें प्रदर्शित करे। ऐसा करने पर पूजा कभी भी व्यक्त नही होती है।

वरदातन्त्र–हे महेश्वरि ! विशेष कर्म को मन्त्र के समान गोपनीय रखे। दीपावली आदि की पूजा में परमोत्सव करे। भवानी की प्रसन्नता के लिए सभी कर्म प्रसन्न मन से करे। जिसकी जो भी इष्ट देवता हो, उसके प्रति भक्ति रखे। अपनी इष्ट देवता के प्रति भक्ति न रखने पर दुःख होता है और कुष्ठरोग जैसी महाव्याधियाँ हो जाती है। हे देवि ! अपनी इष्टदेवी और अपने गुरु को त्यागकर जो दूसरे में भक्ति रखता है उसका सभी कुछ नष्ट हो जाता है। साधकों को कभी भी दूसरे की निन्दा नही करनी चाहिए। एक ही ब्रह्म है दूसरा कुछ भी नही है, ऐसा मैने सर्वत्र कहा है। उपाधि के भाव भेद से विभिन्न रूप होने से जो एक रूप की पूजा करता है वह सभी की पूजा करने का फल प्राप्त करता है।

भगवती काली की पूजा तीन प्रकार की कही गयी है–१. मानस २. अन्तर्यागात्मिका और ३. बाह्ययागात्मिका। **मुण्डमाला तन्त्र पञ्चम पटल** मे कहा गया है। मानसी पूजा महासिद्धिकरी तथा मुक्ति देने वाली है। अन्तर्यागात्मिका पूजा सभी प्रकार के जीवत्व को दूर करती है। वाह्यपूजा, राजसीपूजा है तथा सर्वसौभाग्य प्रदान करने वाली है। यह पूजा भुक्ति एवं मोक्ष प्रदान करने वाली, सभी आपत्तियाँ का नाश करने वाली, सभी दोषों को हरने वाली, सभी शत्रुओं का नाश करने वाली, सभी रोगों को हरने वाली तथा सभी बन्धनों से मुक्ति प्रदान करने वाली है। यह बाह्य पूजा वीर भाव एवं पशु भाव के साधकों के लिए उत्तम है तथा दिव्य भाव के साधकों के लिए अधम है।

तोड़ल तन्त्र तृतीय पटल मे हे देवेशि ! पूजा विधि सूत्र रूप में कही गयी है (१) स्वस्ति पाठ (२) सङ्कल्प (३) घटस्थापन (४) मन्त्र द्वारा आचमन (५) सामान्यार्घ्य स्थापन (६) उसके जल से द्वार का अभ्युक्षण (७) द्वारपूजा (८) त्रिविध विघ्नों का निवारण (९) भूतों का अपसारण (१०) आसन पूजा (११) गुरुदेव को नमस्कार (१२) कर शुद्धि (१३) तालत्रय से दिग्बन्धन (१४) अग्निबीज (रं) से आवेष्टन (१५) भूतशुद्धि (१६) मातृका से षडङ्गन्यास (१७) अन्तर्मातृका का न्यास (१८) मातृका ध्यान पूर्वक वाह्यमातृकान्यास (१९) पीठन्यास (२०) प्राणायाम (२१) ऋष्यादि, कराङ्ग और वर्णन्यास (२२) षोढ़ान्यास (२३) व्यापक न्यास (२४) तत्त्वन्यास (२५) बीजन्यास और व्यापक न्यास (२६) मूल मन्त्र द्वारा सात बार न्यास (२७) मानसपूजन (२८) विशेषार्घ्य स्थापन (२९) पीठपूजा और पुनः ध्यान (३०) मुद्रा प्रदर्शनपूर्वक आवाहनादि षडङ्ग (३१)

धेनु आदि मुद्राप्रदर्शनपूर्वक प्राणप्रतिष्ठा (३२) ब्राह्मी आदि असिताङ्ग आदि महाकाल, खड्ग आदि, गुरु पंक्ति और पुनः देवी का पूजन (३४) बलिदान (३५) होम (३६) प्राणायामपूर्वक जप (३७) जप समर्पण और प्राणायाम (३८) स्तुति और कवच पाठ (३९) अष्टाङ्ग प्रणाम (४०) शिवोऽहम (मै शिव हूँ) ऐसा चिन्तन का संहारमुद्रा द्वारा विसर्जन (४१) ईशान कोण में मण्डल बनाकर उच्छिष्ट चाण्डालिनी को बलि प्रदान (४२) अर्घ्य को सिर में धारण कर ललाट में चन्दन का लेप (४३) नैवेद्य स्वीकार (४४) यथेच्छ विहार।

महाकाल का ध्यान निरुत्तरतन्त्र तृतीय पटल जिनका वर्ण धूम्र वर्ण के समान है, महाकाल स्वरूप, जटाभार से युक्त, तीन नेत्र, शिवस्वरूप, शक्तियुक्त निरामय, दिगम्बर, घोररूप, नीले अञ्जन के समान प्रभावाले, निर्गुण, गुणों के आधार तथा भवगती काली के स्थान में रहने वाले महाकाल का ध्यान करे। **निरुत्तरतन्त्र** मे खड्गादि पूजन कहा गया है। बाएँ हाथ में खड्ग और मुण्ड का दायें हाथ में अभय और वरमुद्रा का पूजन करे। इसी प्रकार **निरुत्तर तन्त्र में** वहीं पर कहा गया है चारों द्वारों में असिताङ्गादि भैरवों की पूजा पूर्वादि के क्रम से करे। हे देवि ! प्रत्येक द्वार में दो दो की पूजा करनी चाहिए।

तोड़ल तन्त्र तृतीय पटल के अनुसार **संक्षिप्त पूजा सूत्र** सर्वप्रथम ऋष्यादि न्यास, फिर कर-शुद्धि पूर्वक अंगुलि और व्यापक न्यास एवं हृदयादि न्यास। तालत्रय से दिग्बन्धन कर प्राणायाम। तदुपरान्त ध्यान, मानस याग और अर्घ्यस्थापन, फिर पीठपूजा इसके पश्चात् पुनः ध्यान और आवाहन करे। फिर जीवन्यास कर पर देवता की पूजा करे। अंगपूजा काल्यादि ब्राह्मी आदि अष्टभैरव और महाकाल की पूजा कर गुरुपंक्ति की पूजा। खड्गादि की पूजा कर पुनः देवी की पूजा। साधक श्रेष्ठ प्राणायाम कर जप करे। देवी के हाथ मे जप फल का समर्पण। पुनः प्रणायाम कर अष्टांग प्रणाम कर स्तुति एवं कवच पाठ। विशेषार्घ्य प्रदान कर आत्मसमर्पण पूर्वक संहार मुद्रा से विसर्जन। ईशान कोण में मण्डल बनाकर उच्छिष्टचाण्डालिनी को बलि। नैवेद्य स्वीकार कर स्वेच्छापूर्वक विहार।

पिच्छिलातन्त्र द्वादश पटल हे प्राणवल्लभे ! नित्यपूजा की विधि कह रहा हूँ सुनो। हे देवि ! विना पूजा के किसी प्रकार का फल नही मिलता है। पूजा करने से साधक स्वयं पूजा जाता है अतः पूजा अवश्य करे। नित्य पूजा न करने वाले की कोई भी इच्छा पूर्ण नही होती है।

साधक आचमन कर पूजागृह के द्वार पर सामान्यार्घ्य स्थापित करे। लिपि (मातृका) न्यास ऋष्यादिन्यास कर मूलमन्त्र से कर शोधन करे। इसके पश्चात् कर न्यास, व्यापकन्यास करके अङ्गन्यास करे। तालत्रय से दिग्बन्धन कर प्राणायाम त्रय करे। सभी प्रकार के पूजन की यही विधि है। हे शिवे ! सोलह उपचारों के द्वारा महापूजा होती है। नित्यपूजा में दश या पाँच उपचारों का प्रयोग करें। अभाव में गन्धपुष्प और ये दोनो न

हो तो मात्र पुष्प से, पुष्प के अभाव मे पत्तियों से उनके भी अभाव में अक्षत या जल से सबके अभाव में मानसिक भावना मात्र से पूजा करे किन्तु पूजा क्रम का लोप न करे। पूजा का लोप करने पर सर्वनाश होता है और पग पग आपत्ति का सामना करना पड़ता है। इसका पुरश्चरण एक लाख जप से होता है।

कालीतन्त्र द्वितीय पटल–साधक नियम में स्थित रहते हुए पुरश्चरण करे। दिन में पवित्रता पूर्वक हविष्य का भोजन करते हुए मन्त्र का एक लाख जप करे। रात्रि में ताम्बूल (पान) मुख से रख कर शय्या पर बैठकर एक लाख मन्त्र का जप करे। ऐसा करने पर ही मन्त्र सिद्ध होता है और तभी उसका प्रयोग किया जाता है अन्यथा नही।

उक्त बात को **तन्त्रसार** मे भी कहा गया है किन्तु आधुनिक विद्वान् यहाँ दो लाख जप के उल्लेख से दिन रात के भेद से जप कर पुरश्चरण करना मानते हैं जैसा कि **तन्त्रसार** मे **अनिरुद्ध सरस्वती** के प्रकरण में निर्देशित हुआ है किन्तु ऐसा नही है। **तन्त्रसार** के लेखक ने भी इसका जप एक लाख पुरश्चरण कहा है। इसके प्रमाण मे उन्होंने **सिद्धेश्वरीय** के वचन उद्धृत किये हैं जिसके अनुसार **अनिरुद्ध सरस्वती** के पुरश्चरण में जो दो लाख जप से पुरश्चरण कहा गया है वह **पशुकल्प** और **वीरकल्प** के भेद के अनुसार है। **श्यामा रहस्य** मे उद्धृत **स्वतन्त्र तन्त्र** के अनुसार दिन में पवित्र होकर हविष्य भोजन कर एक लाख जप करे। जप का दशांश हवि द्वारा होम करे। हे परमेश्वरि ! तीर्थ के जल, दुग्ध, हवि, मधु या शर्करा मिले जल से तर्पण करे। तर्पण का दशांश जल से अभिषेक करे। अभिषेक का दशांश हविष्य के अन्न द्वारा काली तन्त्र का ज्ञाता साधक ब्राह्मणों को भोजन कराये और श्रीगुरुदेव को दक्षिणा प्रदान करे। यही पशुकल्प हैं। हे प्रिये ! अब वीरकल्प सुनो।

निरुत्तरतन्त्र चतुर्थ पटल हे पार्वति ! दिन मे सदा हविष्य भोजन कर पवित्र रहते हुए मन्त्र का एक लाख जप करे। जप का दशांश अग्नि से हवन करे। उसका दशांश तर्पण करे। तर्पण का दशांश अभिषेक तीर्थ जल से करे। अभिषेक का दशांश हविष्य अन्न के द्वारा ब्राह्मणों को भोजन कराये। हे देवि ! यह पाशव कल्प कहा गया। अब वीर कल्प को सुनो। हे देवि ! रात्रि का एक प्रहर बीतने पर साधक अपने कुल का चिन्तन करे। इसके पश्चात् लिखा है कि तत्त्वचिन्तापरायण साधक कुलाकुल का एक लाख जप करे। उसका दशांश शुद्धियुक्त आसव से अग्नि में हवन करे। हवन का दशांश तर्पण शुद्धियुक्त सुधा से करे। तीर्थजल से उसका दशांश अभिषेक करे। अभिषेक का दशांश ब्राह्मणों को कुलद्रव्यों के द्वारा भक्तिपूर्वक भोजन कराये। आदि तथा अन्त में कुल शक्तियों को भोजन कराये। उनके अभाव में शक्तिमात्र का पूजन करे। पुरश्चरण काल में शक्ति की पूजा न करने पर साधक का समस्त पूजन, जप, होमादि अभिचार की भाँति निरर्थक हो जाता है।

निरुत्तरतन्त्र प्रथम पटल में लिखा है कि दिन में पशुभाव से और रात्रि में कौलिक भाव से इस प्रकार पुरश्चर्या भाव भेद से दो प्रकार की होती है। इसलिए पाशवकल्प में पुरुश्चरण दिन में एक लाख जप से होता है ऐसा सिद्धान्त स्पष्ट है। यदि **कालीतन्त्र** के अनुसार पाशवकल्प से भी दिन और रात्रि के भेद से दो लाख जप द्वारा पुरश्चरण करना माना जाय तो उसी तन्त्र में कहा है कि विविध प्रकार के आचारों का इधर उधर पालन नही करना चाहिए। प्राणीहिंसा विशेषरूप से पशु हिंसा नही करनी चाहिए। बलिदान के अतिरिक्त हिंसा सर्वत्र निन्दनीय है। इस प्रकार विभिन्न आचारों का निषेध होने से वैसा मानना तर्क-सम्मत नही होगा। **कर्पूरादि स्तव** मे भी लिखा है कि ''माता के चरणों का ध्यान करने में निपुण साधक दिन में हविष्य भोजन करता हुआ एक लाख मन्त्र का जप करता है परन्तु रात्रि में सम्भोग क्रीड़ा के आनन्द में मग्न नग्न साधक कामनाशक शिव के समान मन्त्र का एक लाख जप करता है''–इस कथन में रात्रि पुरश्चरण वीर कल्प में ही बताया गया है।

सम्भोग क्रीड़ा के आनन्द में मग्न रहते हुए मन्त्रों की जपविधि का वर्णन **तन्त्रसार** में हुआ है। उसे वहीं देखना चाहिए।

*__विमर्श__—इस प्रकार की मन्त्रों की विधि इसी ग्रन्थ के आगामी प्रकरणों में दी गयी हैं जिज्ञासु वहीं देखे।

इस प्रकार सिद्धाश्रमस्थ परमहंस स्वामी श्री निखिलेश्वरानन्द जी महाराज के शिष्य आचार्य अजय कुमार उत्तम द्वारा श्री काली प्रकरण की **पद्मा** हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

❖

* इस प्रकार की अनेक विधियाँ मैंने कामाख्या तन्त्र की व्याख्या में दी हैं। विस्तार के लिये ग्रन्थ को देखें। प्रकाशक– भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी।

श्री कालिकायाः गुह्यविधानम्

दक्षिणायाश्च विद्याया गुह्यायाश्चापि सुन्दरि!।
महाकाल्या महाविद्या सिद्धिकाल्याश्च पार्वतिः ।।१।।
श्मशानकालिकायाश्च नायिकायाश्च शैलजेः ।
तन्नायिकानां देवेशि! वक्ष्यते साधनं ततः ।।२।।
उक्तश्च परमेशानि! वक्तव्यश्चापि पार्वति!।
कालीबीजं महेशानि! मन्त्रः सर्वोत्तमोत्तमः ।।३।।
त्रिगुणा देवि! विख्याता विद्या परमदुर्लभा।
पूर्वोक्तं सकलं कुर्य्यात् फलं तावद् भवेत् प्रिये!।।४।।
नमोऽन्तो वा भवेन्मन्त्रो वषडन्तोऽपि भाविनि!।
लज्जाद्यो वा भवेद्देवि! वाग्भवाद्यो महामनुः ।।५।।
एतन्मन्त्रं वरारोहे! सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक् छन्द इति स्मृतम् ।।६।।
पूजाध्यानादिकं सर्वं पूर्ववत् परिकीर्त्तितम्।
साधनं सकलं देवि! पूर्ववत् परिकीर्त्तितम् ।।७।।
या ख्याता त्र्यक्षरी विद्या स्वाहान्ता परिकीर्तिता।
पञ्चाक्षरी महाविद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।।८।।
ध्यानं पूजादिकं सर्वं पूर्ववत् परिकीर्त्तितम्।
साधनं सकलं देवि! लतागणसमन्वितम् ।।९।।
एकाक्षरी महाविद्या स्वाहान्ता त्र्यक्षरी स्मृता।
साधनं परमेशनि! मद्यमांसोपचारतः ।।१०।।
एकाक्षरी महाविद्या स्वाहान्ता परिकीर्त्तिता।
फड़न्ता वा महेशानि! वषडन्ता समीरिता ।।११।।
नमोऽन्ता वा महेशानि! सर्वसिद्धिप्रदायिनी।
पूर्वबीजं वरारोहे! काली चान्द्रं वरानने ।।१२।।
कालिकाया महाविद्या गोपिता सर्वतन्त्रके।
धराबीजं वरारोहे! काली लक्ष्मीश्च वाभवम् ।।१३।।
एतन्मन्त्राक्षरं देवि! कालिकायाः सुदुर्लभम्।

एतेषां मन्त्रवर्याणां ऋषिः स्यादुग्रभैरवः ।
छन्दोऽनुष्टुबिति ख्यातं देवता दक्षिणेरिता ।।१४।।
अथ वक्ष्ये महेशानि! गुह्यकाल्याः शुभावहा ।
कालीबीजत्रयं देवि! गुह्यकालीयुतं ततः ।।१५।।
स्वाहान्ता कथिता विद्या विद्येयं परमा मता ।
नमोऽन्ता वापि सा ज्ञेया वषड़न्तापि सा स्मृता ।।१६।।
कालीबीजं समुद्धृत्य धराबीजं समुद्धरेत् ।
लज्जाबीजं समुद्धृत्य कूर्चबीजं समुद्धरेत् ।।१७।।
स्वाहान्ता कथिता विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ।
कूर्चलज्जायुगं देवि! तथा काली प्रकीर्त्तिता ।।१८।।
स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।
एतासामेव विद्यानां छन्द उष्णिगितिस्मृतम् ।।१९।।
ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्तिदेवता दक्षिण स्मृता ।
कूर्चत्रयं वरारोहे! स्वाहान्ता हि प्रकीर्तिता ।।२०।।
कालीबीजं समुद्धृत्य कालीकालीपदं तथा ।
महाकालीपदं तस्मात् स्वाहान्तः प्रतिमानतः ।।२१।।
सर्वतन्त्रेषु विख्यातो महाकाल्याः महामनुः ।
कालीबीजं समुद्धृत्य महाकाली च ङेयुता ।।२२।।
स्वाहान्ता कथिता विद्या महाभूतविवर्धिनी ।
असिताबीजमुद्धृत्य महाकालीपदं द्विधा ।।२३।।
स्वाहान्ता कथिता विद्या महाभूतविवर्धिनी ।
काली लक्ष्मी राम माया स्फें परः परिकीर्त्तितः ।।२४।।
नमोऽन्तोऽयं मनुर्देवि! साक्षान्मुक्तिप्रदो मतः ।
कालीबीजं समुद्धृत्य लज्जाबीजं समुद्धरेत् ।।२५।।
सिद्धिकालीपदं ङेऽन्तमसितान्तं वरानने!।
एतासामेव विद्यानां गायत्रीच्छन्द ईरितम् ।।२६।।
देवतास्या महाकाली चतुर्वर्गफलप्रदा ।
स्वाहान्ता वा वरारोहे! फड़न्ता वापि कालिका ।।२७।।
लज्जाबीजं समुद्धृत्य निजबीजं समुद्धरेत् ।
सिद्धिकाली ततो ङेऽन्ता स्वाहान्तेयं प्रकीर्त्तिता ।।२८।।
नमोऽन्ता सा महादेवी चतुर्वर्गफलप्रदा ।
असितामेतदुद्धृत्य भवानीबीजमुद्धरेत् ।।२९।।

वाग्भवं परमेशानि! पराबीजं ततः स्मृतम्।
कालीकालीपदं तस्मात् सिद्धिकालीपदं ततः ॥३०॥
फडन्तासौ महाविद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता।
रमाबीजत्रयं देवि! लज्जाबीजत्रयं तथा ॥३१॥
कामबीजत्रयं देवि! सिद्धिकाली च ङेयुता।
स्वाहान्ता कथिता विद्या मुक्तिमार्गप्रदीपिका ॥३२॥
एतासां सौम्यविद्यानां गायत्रीच्छन्द ईरितम्।
ऋषिः स्यात् कपिलो देवि! देवता सिद्धिकालिका ॥३३॥
कालीबीजं समुद्धृत्य श्मशानकालिकापदम्।
ङेयुतं परमेशानि! सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥३४॥
कालीबीजं समुद्धृत्य कूर्चबीजं वरानने!।
स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥३५॥
कूर्चद्वयं वरारोहे! देवीबीजं महेश्वरि!।
सर्वसिद्धिप्रदा विद्या सर्वशास्त्राविरोधिनी ॥३६॥
विश्वामित्रो मुनिः प्रोक्तो गायत्रीच्छन्द उच्यते।
श्मशानकालिका देवी सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥३७॥
एतासां साधनं देवि! पूर्वोक्तं परमेश्वरि!।
सर्वासां वक्ष्यमाणन्तु पुरश्चरण मुच्यते ॥३८॥
अनेनापि प्रयोगेण सिद्धिर्भवति नान्यथा।
श्मशानकालिकायास्तु कलायामुपवेशनम् ॥३९॥
कलास्थाने महेशानि! कुमारीयोग उच्यते।
अष्टवर्षा तु या बाला द्वादशाधो महेश्वरि ॥४०॥
स्थापयेत्तु चतुष्पार्श्वे मिष्टभोजनभोजिता।
पूजयेत् परया भक्त्या स्वयं भुञ्जीत साधकः ॥४१॥
पापयेदासवं यत्नात् स्वयञ्चापि पिबेत्ततः।
सकारञ्च घकारञ्च लकारेण समन्वितम् ॥४२॥
जपेदष्टोत्तरशतं तासां कर्णे पृथक् पृथक्।
तमभ्यर्च्य प्रयत्नेन कृत्वा वक्षसि साधकः ॥४३॥
अङ्गन्यासयुतं देवि! जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।
एतस्मिन् समये देवि! रतिमिच्छति सा यदा ॥४४॥

तदा तां रमयेन्मन्त्री पीड़ा न जायते यथा।
शनैरधरपानञ्च शनैर्वक्षोजमर्दनम् ।।४५।।
शनैर्गुदनिवेशञ्च शनैरालिङ्गनं प्रिये!।
यद्यत्र जायते पीड़ा तदा सिद्धिविनाशिनी ।।४६।।
एवं प्रयोगे तु काली साक्षाद्भवति नान्यथा।
इति ते कथितं देवि! गुह्याद्गुह्यतरं परम् ।।४७।।
भक्तिहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद्भवेत्।
तदा सिद्धिर्विलम्बेन निष्फलं नैव जायते ।।४८।।
अविश्वासो न कर्त्तव्य आलस्यं नैव पार्वति!।
सर्वेषां मन्त्रवर्य्याणां सारमुद्धृत्य पार्वति!।।४९।।
दुग्धमध्ये यथा सर्पिः काष्ठमध्ये यथानलः।
तथा समुद्धृतः सारो देवि! नास्त्यत्र संशयः ।।५०।।
स्वयं सिद्धा हि ते मन्त्राः सर्वतन्त्रेषु गोपिताः।
इति ते कथितं देवि! गोपनीयं प्रयत्नतः ।।५१।।

❖

अथ सामान्यपूजापद्धतिः

तत्र ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय मुक्तस्वापः रात्रिवासस्त्यक्त्वा शिरसि सहस्त्रदलकमलकर्णिका स्थितं श्वेतवर्णं गुरुं द्विभुजं वराभयकरं श्वेतमाल्यानुलेपनं स्वप्रकाशरूपं स्ववामस्थितसुरक्तशक्त्या स्वप्रकाशरूपया सहितं विभाव्य मानसपचारैराराध्य नमस्कुर्यात् ।

यथा:

अखण्डमण्डलाकारं व्यप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

ततोमूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं मूलविद्यां विभाषयेत् । मूलविद्यां कुण्डलिनीम् । तथा च योगिनीहृदये–

विद्या कुण्डलिनीरूपा मण्डलत्रयभेदिनी ।

अन्यत्रापिः

ध्यायेत् कुण्डलिनीं सूक्ष्मां मूलाधारनिवासिनीम् ।
तामिष्टदेवतारूपां सार्द्धत्रिवलयान्विताम् ।।
कोटिसौदामिनीभासां स्वयम्भुलिङ्गवेष्टिताम् ।
तामुत्थाय महादेवीं प्राणमन्त्रेण साधकः ।।
उद्यद्दिनकरद्योतां यावच्छवासं दृढ़ासनः ।
अशेषाशुभशान्त्यर्थं समाहितमनाः शिवम् ।।
तत्प्रभापटलव्याप्तं शरीमपि चिन्तयेत् ।

एतस्य नित्यत्वमाह गौतमीयेः

इदानीं पूर्वकृत्यञ्च प्रसङ्गात्कथयामि ते ।
यत्कृत्वाधिकारितां याति मन्त्रयन्त्रार्चनादिषु ।
येन विना न सिद्धिः स्यान्नरकञ्च प्रपद्यते ।।

यामले चः

प्रातः कृत्यमकृत्वा तु यो देवीं भक्तितोऽर्चयेत् ।
निष्फला तस्य पूजा स्याच्छौचहीना यथा क्रिया ।।

लक्ष्मीकुलार्णवेऽपिः

सन्ध्या तु विहीनो यो न दीक्षाफलमाप्नुयात्।

इति वचनात्तस्यावश्यकत्वम् ॥

वैदिकसन्ध्यानन्तरं तान्त्रिकसन्ध्या कर्त्तव्या ।।

तदुक्तम्

वैदिकी तान्त्रिकी सन्ध्या यथाऽनुक्रमयोगतः ।

अथ सन्ध्या प्रयोगः

तत्र शक्ति विषयेः

ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा इत्याचामेत्। अन्यत्राचमनमात्रम्।

तथा च स्वतन्त्रतन्त्रे

आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैराचामेत्साधकाग्रणीः ।
वह्निजायां ततो दत्वा शुद्धेन पायसा प्रिये !।।

मालिनीतन्त्रेः

आचामेदात्मतत्त्वाद्यैः प्रणवाद्यैर्द्विठान्तकैरिति। ततो जले गङ्गे चेत्यादिना तीर्थमावाह्य मूलेन कुशेन त्रिवारं भूमौ जलं क्षिपेत्। तज्जलेन सप्तधा मूर्द्धानमभिषिञ्चेत्। ततः प्राणायामषडङ्गन्यासौ कृत्वा वामहस्ततले जलं निधाय दक्षिणहस्तेन जलमाच्छाद्य हं यं वं लं रं इति त्रिवारमभिमन्त्र्य मूलमुच्चरन्गालितोदकविन्दुभिसतत्त्वमुद्रया मूर्द्धनि सप्तधाभ्युक्षणं कृत्वा, शेषजलं दक्षिणहस्ते समादाय तेजोरूपं ध्यात्वा इडयाकृष्य देहान्तः पापं प्रक्षाल्य कृष्णवर्णं तज्जलं पापरूपं ध्यात्वा पिङ्गलया विरेच्य पुरः कल्पितवज्रशिलायां फडिति मन्त्रेण पापपुरुषस्वरूपं तज्जलं क्षिपेदित्यघमर्षणम्। गङ्गे चेत्यादिमन्त्रं तीर्थेऽपि पठेत्, तीर्थे तदद्विगुणफलमिति स्मृतेः।

तथा च गौतमीयेः

आचम्य विधिवन्मन्त्री शुचौ देशे च संविशेत्।
जले संयोज्य तीर्थानि त्रिवारं मूलमन्त्रतः।
क्षिपेद्भूभौ कुशाग्रेण सप्तधा मूर्ध्नि सेचयेत्।।

तन्त्रान्तरेः

पुनराचम्य विन्यस्य षडङ्गमपि धर्मवित् ।
वामहस्ते जलं गृह्य गलितोदकविन्दुभिः ।।
सप्तधा प्रोक्षणं कृत्वा मूर्ध्नि मन्त्रं समुच्चरन् ।
अवशिष्टोदकं दक्षहस्ते संगृह्य बुद्धिमान् ।।
इड़याकृष्य देहान्तः क्षालितं पापसञ्चयम् ।
कृष्णवर्णं तदुदकं दक्षानाड्या विरेचयेत् ।।
दक्षहस्ते तु तन्मन्त्री पापरूपं विचिन्त्य च ।
पुरतो वज्रपाषाणे निक्षिपेदस्त्रमुच्चरन् ।।

अन्यत्रापिः

षडङ्गन्यासमाचर्य वामहस्ते जलं ततः ।
गृहीत्वा दक्षिणेनैव सम्पुटं कारयेद्बुधः ।।
शिववायुजलपृथ्वीवह्निबीजैस्त्रिधा पुनः ।
अभिमन्त्र्य च मूलेन सप्तधा तत्त्वमुद्रया ।।
निक्षिप्य तज्जलं मूर्ध्नि शेषं दक्षे निधाय च ।
शरीरान्तः स्थितं पापं क्षालयेत्साधकाग्रणीः ।।

ततोहस्तं प्राक्षाल्याचम्य ह्रीं हं सः ॐ घृणि सूर्य आदित्य इति मन्त्रेण वा सूर्यायार्घ्यं दद्यात् ।।

तथा सम्मोहन तन्त्रेः

शिवबीजं वह्निसंस्थं वामनेत्रविभूषितम् ।
विन्दु नादात्मकं देवि ! हंसः पदमथो लिखेत् ।।
अनेन मनुना मन्त्री भास्करास्य प्रियेण तु ।

अर्घ्यं दद्यादिति शेषः । विशेषस्तु स्नानप्रकरणे वक्तव्यः । ततः ॐ सूर्यमण्डलस्यायै अमुकदेवतायै नमः, इत्यनेन तद्गायत्र्या वा त्रिवारं जलं निक्षिप्य तत्तद्देवताया गायत्रीं जपेत् ।

तथा चार्घ्यानन्तरं ज्ञानार्णवेः

ततश्च प्रजपेद्धीमान्गायत्रीं परमाक्षरीम् ।
गायत्री तु स्नान प्रकरणे वक्तव्या ।।

गौतमीये:

एवं ते कथिता मन्त्रसन्ध्या मन्त्रफलाप्तये ।
न कुर्याद्यदि मोहेन न दीक्षाफलमाप्नुयात् ।।
सन्ध्यात्रयं तथा कुर्याद् ब्राह्मणो विधिपूर्वकम् ।
तन्त्रोक्तविधिपूर्वन्तु शूद्रः सन्ध्यां समाचरेत् ।।
संक्षेपसन्ध्यामथवा कुर्यान्मन्त्री ह्यशक्तितः ।
सायं प्रातश्च मध्याह्ने देवं ध्यात्वा मनुं जपेत् ।।
सन्ध्यायां पतितायान्तु गायत्रीं दशधा जपेत् ।।

अथ स्नानविधिः

नद्यादौ गत्वा वैदिकस्नानं कृत्वा तान्त्रिकस्नानमाचरेत् ।

तथा च गौतीयतन्त्रेः

अथ स्नानं तथा कुर्याद्यथाशास्त्रविधानतः ।
मलप्रक्षालनं स्नानं स्वशाखोक्तं समाचरेत् ।
मन्त्रस्नानं ततः कुर्यात् कर्मणां सिद्धिहेतवे ।।

तद्यथाः

ॐ अद्येत्यादि अमुकदेवताप्रीतये स्नानमहं करिष्ये इति सङ्कल्पं कुर्यात् ।
तथा च कुलचूड़ामणौ

ताम्रपात्रं सदूर्वञ्च सतिलं सजलं तथा ।
गृहीत्वामुकदेवस्य प्रीतये स्नानामाचरेत् ।।

तथा षडङ्गन्यासः प्राणायामौ कृत्वा

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।।

इत्यनेनांकुशमुद्रया सूर्यमण्डलात्तीर्थमावाह्य वमिति धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य कवचेनावगुण्ठ्य अस्त्रेण संरक्ष्य मूलेनैकादशधामिमन्त्र्य, सूर्याभिमुखं द्वादशवारिधारां निक्षिप्य तस्मिन्निष्टदेवताचरणारविन्दनिः सृते जले त्रिर्निर्मज्य देवता ध्यायन्मूलमन्त्रं यथाशक्ति जपन् उदकेन त्रिवारजप्तेन कलशमुद्रया त्रिवारमात्मानमभिषिच्य, वैदिकसन्ध्यातर्पणं कृत्वा, सूर्यायार्घ्यं दत्त्वा तान्त्रिकाघमर्षणादि वारिधारान्तं कर्म कुर्यात् ।।

तथा च यामले:

ध्यात्वा जलाञ्जलीन् क्षिप्ता तर्पयेदिष्टदेवताम् ।

तत्र क्रममाहः

ॐ देवांस्तर्पयामि ॐ ऋषींस्तर्पयामि, ॐ पितृस्तर्पयामि, इति सन्तर्प्यगुरु परमगुरुं परापरगुरुं परमेष्ठिगुरुञ्च तर्पयेत् ।

तथा चः

देवान् ऋषीन् पितृंश्चैष तं कल्पोक्तविधानतः ।
गुरुपंक्तिं पुरा तर्प्य तर्पयेदिष्टदेवताम् ।।

वैष्णवे तु तु विशेषः ।

नारदं पर्वतं जिष्णुं निशठोद्धवदारुकम् ।
विश्वक्सेनञ्च शैनेयं गुरुञ्च तर्पयेत्रिशः ।।

वाक्यन्तु

ॐ नारदं तर्पयामि इत्यादिक्रमेण प्रयोगः ।

ततो मूलमुच्चार्य अमुक देवतां तर्पयामि नमः इति विष्णु विषयात् ।

तथा च गौतमीये:

आदौ मन्त्रं समुच्चार्य श्रीपूर्वं कृष्णमित्यपि ।
तर्पयामि पदञ्चोक्त्वा नमोऽन्तं तर्पयेत्ततः ।।
अन्यत्र मूलमुच्चार्य अमुकदेवतां तर्पयामि ।।

तथा च तन्त्रान्तरे

तर्पयामिपदं योज्यं मन्त्रान्तेष्वेषु नामसु ।
द्वितीयान्तेषु चेत्येवं तर्पणस्य मनुः स्मृतः ।।

शक्ति विषयेपुनः

मूलमुच्चार्य अमुकदेवीं तर्पयामि स्वाहा ।
होमतर्पणयोः स्वाहेति तत्तन्मन्त्रवचनात् ।।

तथा च नीलतन्त्रेः

मन्त्रान्ते नाम उच्चार्य तर्पयामि ततः परम् ।
स्वाहान्तं तर्पयन्त्वेवम् इत्यादि।

विशुद्धेश्वरे:

विद्यां पूर्वं समुच्चार्य तदन्ते देवताभिधाम् ।
तर्पयामिति सम्प्रोक्त्वा स्वाहान्तस्तर्पणे मतः ।।
पञ्चविंशतिसंख्यावा दशधा वा त्रिधापि वा ।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य श्रीकृष्णं तर्पयेत्सुधीः ।

इति गौतमीयवचनात्पञ्चविंशतिवार दशधा त्रिधा वा सन्तर्पयेत् । अत्र श्रीकृष्ण मित्युपलक्षणम् । शक्ति विषये त्रिधा तर्पणम् ।

स्नानकर्मणि सम्प्राप्ते मूर्ध्नि मन्त्री जलाञ्जलिम् ।
विद्ययाथ त्रिशः कुर्यात्पूतास्तु त्रिः पयः पिबेत् ।।

तर्पणञ्च त्रिधा भूपस्त्रिधा च प्रोक्षणं तनोरिति कुलामृतवचनात् । ततश्च तदावरणदेवतानां प्रत्येकेन सकृत्तर्पयेत् ।

तथा च कुलार्णवे:

एकैकमञ्जलिं तोयं परिवारान् प्रतर्पयेत् ।
तत्राशक्तश्चेन्मूलमन्त्रमुच्चार्य इष्टदेवतामात्रं तर्पयेत् ।।

तथा चः

अशक्तौ मूलमुच्चार्य देवीमात्रं प्रतर्पयेत् ।

ततो जलादुत्थाय धौते वाससी परिधायाचम्य ह्रीं हंसः इदमर्घ्यं सूर्याय स्वाहा । तारादौ तु ह्री हंसः मार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहा ।

तन्त्रान्तरे:

सूर्यमन्त्रं समुच्चार्य मार्त्तण्डभैरवाय च ।
प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं ततः पठेत् ।
स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य अर्घ्यं दत्वा जपेन्मनुम् ।।

श्रीविद्याविषये तुः

ऐं ह्रीं श्रीं ह्रां ह्रीं सः मार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय ग्रह राशिनक्षत्रतिथियोगकरणपरिवारसहिताय इदमर्घ्यं दत्त्वा, तत्तद्देवता गायत्रीं शतधा वा जपेत् ।

तथा च तन्त्रान्तरेः

अष्टोत्तरशतावृत्त्या गायत्रीं प्रजपेत्सुधीः ।
महापातकयुक्तोऽपि प्रजपेद्दशधा यदि ।
सत्यं सत्यं महादेवि ! मुक्तो भवति तत्क्षणात् ।।
इति दशधा शक्ताशक्तभेदेन ।

गायत्रीजपानन्तरं तर्पणं वा । तथा चः

सूर्यमण्डलवासिन्यै देवतायै ततः परम् ।
अर्घ्यमञ्जलिमादाय गायत्र्या वा त्रिरुत्क्षिपेत् ।।
यथाशक्ति जपेद्देवीं गायत्रीं तदनन्तरम् ।
तर्पणार्थं समाचम्य प्राणानायम्य साधकः ।।
ध्यात्वा जलाञ्जलिं क्षिप्त्वा तर्पयेदिष्टदेवताम् ।

इति यामलवचनात् ।

गायत्री तुः

त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे कामदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् । इति विष्णु गायत्री ।

नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् । इति नारायणगायत्री ।

वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि तन्नो नरसिंहः प्रचोदयात् । इति नृसिंह गायत्री ।

वागीश्वराय विद्महे हयग्रीवाय धीमहि तन्नो हंसः प्रचोदयात् । इति हयग्रीवगायत्री ।

गोपालगायत्री तुः

कृष्णाय विद्महे दामोदराय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयादिति ।

दशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रयोदयात् । इति रामगायत्री ।

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रयोदयात् । इति शिव गायत्री ।

तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रयोदयात् । इति गणेश गायत्री ।

दक्षिणामूर्त्तये विद्महे ध्यानस्थाय धीमहि तन्नो धीशः प्रचोदयात्।

इति दक्षिणामूर्त्तिगायत्री।

आदित्याय विद्महे मार्तण्डाय धीमहि तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्। इति सूर्यगायत्री।

कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रयोदयात्। इति कामदेव गायत्री।

सर्वसम्मोहिन्यै विद्महे विश्वजनन्यै धीमहिः तन्नः शक्ति प्रचोदयात्। इति शक्तिगायत्री।

त्वरितायै विद्महे महनित्याय धीमहि तन्नो देवी प्रयोदयात्। इति त्वरितागायत्री।

ऐं वागीश्वर्यै विद्महे क्लीं कामेश्वर्यै धीमहि सौस्तनः शक्ति प्रचोदयात्। इति बालाभैरवी गायत्री।

ऐं त्रिपुरादेव्यै विद्महे क्लीं कामेश्वर्यै धीमहि सौस्तनः क्लिन्ने प्रचोदयात्। इति त्रिपुरसुन्दरी गायत्री।

त्रिपुरायै विद्महे भैरव्ये धीमहि तन्नो देवी प्रयोदयात्। इति भैरवीगायत्री।

महादेव्यै विद्महे दुर्गायै धीमहि तन्नो देवी प्रयोदयात्। इति दुर्गा गायत्री।

नारायण्यै विद्महे दुर्गायै धीमहि तन्नो गौरी प्रयोदयात्। इति जयदुर्गा गायत्री।

महालक्ष्म्यै विद्महे महाश्रियै धीमहि तन्नः श्रीः प्रचोदयात्। इति लक्ष्मी गायत्री।

वाग्देव्यै विद्महे कामराजाय धीमहि तन्नो देवी प्रयोदयात्। इति सरस्वती गायत्री।

नारायण्यै विद्महे भुवनेश्वर्यै धीमहि तन्नो देवी प्रयोदयात्। इति भुवनेश्वरी गायत्री।

भावत्यै विद्महे माहेश्वर्यै तन्नोऽन्नपूर्णे प्रचोदयात्। इति अन्नपूर्णा गायत्री

महिषमर्दिन्यै विद्महे दुर्गायै धीमहितन्नो घोरे प्रयोदयात् इति महिषमर्दिनी गायत्री।

वैरोचिन्यै विद्महे छिन्नमस्तायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्। इति छिन्नमस्ता गायत्री।

कालिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि तन्नो प्रचोदयात् । इति कालिका गायत्री ।

तारायै विद्महे महोग्रायै धीमहि तन्नो देवी प्रयोदयात्। इति तारा गायत्री।

गरुड़ाय विद्महे सुपर्णाय धीमहि तन्नो गरुङ, प्रचोदयात्। इति गरुङगायत्री।

ध्यानन्तुः प्रातः

उद्यदादित्यसङ्काशां पुस्तकाक्षरां स्मरेत्।
कृष्णाजिनधरां ब्राह्मीं ध्यायेत्तारंकितेऽम्बरे।।

मध्याह्नेः

श्यामवर्णां चतुर्बाहुं शङ्खचक्रलसत्कराम्।
गदापद्मधरां देवीं सूर्यासनकृताश्रयाम्।।

सायाह्नेः

सायाह्ने वरदां देवीं गायत्रीं संस्मरेद्यतिः।
शुक्लां शुक्लाम्बरधरां वृषासनकृताश्रयाम्।।
त्रिनेत्रां वरदां पाशं शूलञ्च नृकरोटिकाम्।
सूर्यमण्डलमध्यस्यां ध्यायन् देवीं समभ्यसेत्।।

त्रिपुरादौ ध्यानविशेषो यथाः

प्रातराधारकमले हुतभुङ्मण्डलोपरि।
वाग्बीजरूपां विद्याया विद्युत्पटलभास्वराम्।।
पुष्पबाणेक्षुकोदण्डपाशांकुशलसत्कराम्।
स्वेच्छागृहीतवपुषीं गुरुविद्या क्षरात्मिकाम्।।
मध्याह्ने हृदयाम्भोजकर्णिके सूर्यमण्डले।
कामबीजात्मिकां देवीमलक्तकरसारुणाम्।।
प्रसूनबाणपुण्डेक्षुचापपाशांकुशान्विताम्।
परितः स्वात्ममुख्याभिः षट्त्रिंशत्तत्त्वशक्तिभिः।।
सायमाज्ञासरोजस्थे चन्द्रे चन्द्रसमद्युतिम्।
शक्तिबीजात्मिकां चापबाणपाशांकुशान्विताम्।।

युगनित्याक्षराकारां स्फटिकाभरणान्विताम्।
चिन्तयित्वा भगवती नित्याभिः परिवारिताम्।।

तारादौ तुः

ह्लीं हंसः इति सूर्यार्घ्यं दत्त्वा ताम्रादिपात्रे चन्दनार्ककुसुमापराजितापुष्पाणि निक्षिप्य उद्यदादित्यमण्डलवर्तिन्यै नित्यचैतन्योदितायै श्रीमदेकजटायै स्वाहा इत्यर्घ्यं दत्वा गायत्रीं जपेदिति विशेषः।

तदुक्त नीलतन्त्रेः

उद्यदादित्यमण्डलवर्तिन्यै च समुद्धरेत्।
नित्यचैतन्योदितायै स्वाहेति च मनुः स्मृतः।।

अन्यत्र कालिकामन्त्रे एकजटापदस्थाने कालिकापदप्रयोगः। ततः सूर्यमण्डले देवतां विभाव्य मूलमन्त्रं यथाशक्ति जप्त्वा संहारमुद्रया देवतां स्वहृदयमानीय तीर्थं नमस्कृत्य यागस्थानमाविशेदिति स्नानविधिः। ततः सामान्यार्घ्यं स्थापनाद्यासनोपवेशनान्तं दीक्षापद्धत्युक्तं कर्म समाप्य वामे ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परापरगुरुभ्यो नमः। दक्षिणे ॐ गणेशाय नमः। मूर्ध्नि मूलमुच्चार्य अमुकदेवतायै नमः।

तथा च गौतमीयेः

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वामे गुरुत्रयं यजेत्।
गुरुञ्च परमादिञ्च परापरगुरुन्तथा।।
दक्षपार्श्वे गणेशञ्च मूर्ध्नि देवं विभावयेत्।

ततः फडितिमन्त्रेण गन्धपुष्पाभ्यां करौ संशोध्य ऊर्ध्वोर्ध्वं तालत्रयं दत्त्वा छोटिकाभिर्दशदिग्बन्धनं कृत्वा रमिति जलधारया वह्निप्राकारं विचिन्त्य भूतशुद्धिं कुर्यात्।

तद्यथाः

स्वांके उत्तानौ करौ कृत्वा सोऽहममिति हृदयस्थं जीवात्मानं दीपकलिकाकारं मूलाधार स्थितकुलकुण्डलिन्या सह सुषुमावर्त्मना मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकानाहतविशुद्धाज्ञाख्य षट्चक्राणि भित्त्वा, शिरोऽवस्थिताधोमुखसहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतपरमात्मानि संयोज्य तत्रैव पृथिव्याप्ते जीवाख्वाकाशगंधरसस्पर्शशब्दनासिकाजिह्वा चक्षुस्त्वक् क्षोत्रवाकपाणिपादपायूपस्थप्रकृतिमनोबुद्ध्यहंकाररूप चतुर्विंशतितत्त्वान

विलीनानि विभाव्य यमिति वायुबीजं धूम्रवर्णं वामनासापुटै विचिन्त्य तस्य षोडशवारजपेन वायुना देहमापूर्य नासापुटौ धृत्वा तस्य चतुःषष्ठिवार जपेन कुम्भकं कृत्वा वामकुक्षिस्थकृष्णवर्णपापपुरुषेण सह देहं संशोष्य तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन दक्षिणनासया वायुः रेचयेत्। ततो दक्षिणनासापुटे रमिति वह्निबीजं रक्तवर्णं ध्यात्वा तस्य षोडशवारजपेन वायुना देहमापूर्य नासापुटौ धृत्वा तस्य चतुः षष्टिवारजपेन कुम्भकं कृत्वा वामकुक्षिस्थकृष्णवर्णपापपुरुषेण सह देहं मूलाधारस्थित वह्निना दग्ध्वा तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन वामनासया भस्मना सह वायुं रेचयेत्।

ठमितिचन्द्रबीजं शुक्लवर्ण वामनासिकायां ध्यात्वा तस्य षोडशवारजपेन ललाटे चन्द्रं नीत्वा नासापुटौ धृत्वा वमिति वरुणबीजस्य चतुः षष्टिवारजपेन तस्माल्ललाटचन्द्रा-द्गलितसुधया मातृकावर्णात्मिकया समस्तदेहं विरर्च्य लमिति पृथ्विबीजस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन देहं सुदृढ़ं विचिन्त्य दक्षिणेन वायुं रेचयेत्। मात्रा संख्यया वा।

तदुक्तं गौतमीये:

सुषुम्णावर्त्मना सोऽहमिति मन्त्रेण योजयेत्।
सहस्रारे शिवस्थाने परमात्मनि देशिकः।।
धूम्रवर्णं ततो वायुबीजं षड्विन्दुलाञ्छितम्।
पूरयेदिडया वायुं सुधीः षोडशमात्रया।।
मात्रया तु चतुःषष्ट्या कुम्भयेच्च सुषुम्णाया।
द्वात्रिंशन्मात्रया मन्त्री रेचयेत्पिङ्गलाख्यया।।
पूरयेदनया चैव सञ्चिन्त्य नीलमारुतम्।
रक्तवर्णं वह्निबीजं त्रिकोणं स्वस्तिकान्वितम्।।
तेन पूरकयोगेन मात्रया षोडशाख्यया।
चतुःषष्ट्या मात्रया च निर्दहेत्कुम्भकेन तु।।
वामपार्श्वस्थितं पापपुरुषं कज्जलप्रभम्।
ब्रह्महत्याशिरस्कञ्च स्वर्णस्तेय भुजद्वयम्।।
सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम्।
तत्संसर्गिपदद्वन्द्वमङ्गप्रत्यङ्गपातकम्।।
उपपातकरोमाणं रक्तश्मश्रु विलोचनम्।
खड्गचर्मधरं क्रुद्धमेवं कुक्षौ विचिन्तयेत्।।

मूलाधारोत्थितेनैव वह्नि निर्दहेच्च ।
एवं संदह्य परितो द्वात्रिंशन्मात्रया ततः ।।
भस्मना सहितं मन्त्री रेचयेदिडया पुनः ।
वामनाड्यां चन्द्रबीजं कुन्देन्द्वयुतसप्रभम् ।।
भालेन्दुराजे संयोज्य ततः षोडशमात्रया ।
सुषुम्णया चतुःषष्टिमात्रया तोयबीजकम् ।।
ध्यात्वा मृतमयीं सृष्टिं पञ्चाशद्वर्णरूपिणीम् ।
तया देहं विचिन्त्यैवं मनसापिंगलाध्वना ।।
द्वात्रिंशन्मात्रया मंत्री लं बीजेन दृढं नयेत् ।
स्वस्थाने हंसमन्त्रेण पुनस्तेनैव वर्त्मना ।।
जीवं तत्त्वानि चानीय स्वस्थाने स्थापयेत्ततः ।
इति कृत्वा भूतशुद्धिं मातृकान्यासमाचरेत् ।

ततः हंस इति बीजं स्वहृदयमानीय कुलकुण्डलिनी पृथिव्यादीनि यथास्थाने स्थापयेत् ।

विशेषस्तु शक्ति विषये:

हंस इति जीवादिकं परमशिवे संयोज्य सोऽहमिति मन्त्रेण स्वस्थानमानयेत् ।

तथा च तन्त्रान्तरे:

सोऽहमेवं समाभास्य जीवं हृदि समानयेत् ।

शूद्रे तु विशेषो वाराहीतन्त्रे–

हंसाख्यं न स्मरेत् शूद्रो भूतशुद्धौ कदाचन ।
स्मरणान् नरकं याति दीक्षा च विफला भवेत् ।।

शारदायाम्

जीवं तेजोमयं ध्यात्वा नमोमन्त्रेण योजयेत् ।।

भूतशुद्धिपदव्युत्पत्तिमाह विशुद्धेश्वरे–

शरीराकारभूतानां भूतानां यद्विशोधनम् ।
अव्ययब्रह्मसंयोद्भूतशुद्धिरियं मतेति ।

वाराहीये:

मूलाधारात्ततो जीवं ब्रह्ममार्गेण देशिकः ।
हंसेन पुष्करस्थाने परमात्मानि योजयेत् ।।

ब्रह्ममार्गः सुषुम्ना ।

त्रिपुरासारसमुच्चयेः–

संयोज्य जीवमथ दुर्गममध्यनाड़ीमार्गेण पुष्करनिविष्टशिवे सुसूक्ष्ये ।
तत आं सोऽहं इति पठित्वा हृदि हस्तं दत्त्वा प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् ।

ज्ञानार्णवेः

प्राणप्रतिष्ठया पश्चाज्जीवं देहे नियोजयेत् ।
मुखंवृत्तं समुच्चार्य हंसस्तु विपरीतकम् ।।
उद्धरेत्परमेशानि विद्येयं त्र्यक्षरी मता ।
प्राणप्रतिष्ठोमन्त्रोऽयं सर्वकर्माणि साधयेत् ।।
तेनैव विधिना देवि स्थिरीकुर्यान्निजां तनुम् ।

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्

अथवान्यप्रकारेण भूतशुद्धिर्विधीयते ।
धर्मकन्दसमुद्भुतं ज्ञाननालसुशोभनम् ।।
ऐश्वर्याष्टदलोपेतं परं वैराग्यकर्णिकम् ।
स्वीयहृत्कमलं ध्यायेत्प्रणवेन प्रकाशितम् ।।
कृत्वा तत्कर्णिकासंस्थं प्रदीपकलिकानिभम् ।
जीवात्मानं हृदि ध्यात्वा मूले सञ्चिन्त्य कुण्डलीम् ।
सुषुम्णावर्त्मनात्मानं परमात्मनि योजयेत् ।

अथ मातृकान्यासः

तत्र मातृकाया ऋष्यादिन्यासः

अस्य मातृकामन्त्रस्य ब्रह्मऋषिर्गायत्रीच्छन्दो मातृकासरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयो मातृकान्यासे विनियोगः ।

शिरसि ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे ॐ गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदि ॐ मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः, गुह्ये ॐ व्यञ्जनेभ्यो बीजेभ्यो नमः, पादयोः ॐ स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः ।

तथा च ज्ञानार्णवेः

मातृकां शृणु देवेशि ! न्यसेत्पापनिकृन्तनीम् ।
ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्य गायत्रीच्छन्द उच्यते ।।
देवता मातृका देवी बीजं व्यञ्जनमुच्यते ।
शक्त्यस्तु स्वरा देवि षडङ्गन्यासमाचरेत् ।।

ततः कराङ्गन्यासोः अं कं खं गं घं ङं आं अंगुष्ठाभ्यां नमः । इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा । उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यामाभ्यां वषट् । एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुं । ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु । अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः इत्यादि क्रमेण न्यसेत् ।

तथा च ज्ञानार्णवेः

अं आं मध्ये कवर्गन्तु इं ईं मध्ये चवर्गकम् ।
उं ऊं मध्ये टवर्गन्तु एं ऐं मध्ये तवर्गकम् ।।
ओं औं मध्ये पवर्गन्तु विन्दुयुक्तं न्यसेत्प्रिये !।।
अनुस्वार विसर्गान्तौ यशवर्गौ सलक्षको ।।
हृदयञ्च शिरो देवि ! शिखा कवचकं तथा ।
नेत्रमन्त्रं न्यसेत् ङेन्तं नमः स्वाहा क्रमेण तु ।।
वषट् हुं वौषडन्तश्च फडन्तं योजयेत् प्रिये !।
षडङ्गोऽयं मातृकायाः सर्वपापहरः स्मृतः ।।

मातृकाक्षर वन्दनाः

आधारे लिङ्गनाभौ प्रकृटितहृदये तालुमूले ललाटे ।
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदले द्वादशार्द्धे चतुष्के ।।
वासान्ते बालमध्ये डफकठसहिते कण्ठदेशे स्वराणाम् ।
हक्षौ तत्त्वार्थचिन्त्यं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि।।

मातृकाक्षरध्यानम्—

शारत्पूर्णेन्दुशुभ्रां सकललिपिमयीं लोलरक्तत्रिनेत्राम् ।
शुक्लालङ्कारभासां शशिमुकुटजटाभारहारप्रदीप्ताम् ।।
विद्यास्रक्पूर्णकुम्भान् वरमपि दधतीं शुद्धपट्टाभिराढ्याम् ।
वाग्देवीं पद्मपत्रां कुचभरनमितां चिन्तयेत् साधकेन्द्रः ।।

अथान्तर्मातृका न्यासः

अगस्त्यसंहितायाम्

एकैकवर्णानिकैकपत्रान्ते विन्यसेत् प्रिये !।
अकारादिषोडशस्वरान् सविन्दून्षोडशदलकमले कण्ठमूले न्यसेत् ।
ककारादिद्वादशवर्णान् सविन्दून्द्वादशदलकमले हृदये न्यसेत् ।
डकारादिदशवर्णान् सविन्दून् दशदलकमले नाभौ न्यसेत् ।।

वकारादिषड्वर्णान् सविन्दून् षडदलकमले लिङ्गमूले न्यसेत्।
वकारादि चतुरो वर्णान् सान्तांश्चतुर्दलकमले मूलाधारे न्यसेत्।
हक्षवर्णद्वयं द्विदलकमले भ्रूमध्ये न्यसेत्।।

तथा च ज्ञानार्णवे:

द्वयष्टपत्राम्बुजे कण्ठे स्वरान् षोडश विन्यसेत्।
द्वादशच्छदहृत्पद्मे कादीन्द्वादश विन्यसेत्।।
दशपत्राम्बुजे नाभौ डकारादीन्न्यसेद्दश।
षट्पत्रमध्येलिङ्गस्थे च बकारादीन्न्यसेच्च।।
आधारे चतुरो वर्णान्न्यसेद्वादींश्चतुर्दले।
हक्षौ भ्रमूध्यगे पद्मे द्विदले विन्यसेत्प्रिये!।
इत्यन्तर्मातृकां न्यास सर्वाङ्गन्यासमाचरेत्।।

अगस्त्यसंहितायाम्

एकेकवर्णमेकैकपत्रान्ते विन्यसेत्प्रिये!
एवमन्तः प्रविन्यस्य मनसातो बहिर्न्यसेत्।।

वैष्णवे तु विशेषः—

एकैकं वर्णमुच्चार्य मूलाधारांच्छिरोऽन्तकम्।
नमोऽन्त इति विन्यास आन्तरः परिकीर्त्तितः।।

तथा

अथान्तर्मातृकान्यासो मूलाधारे चतुर्दले।
सुवर्णाभे व श ष स चतुर्वर्णविभूषिते।।
षड्दले वैद्युतनिभे स्वाधिष्ठानेऽनलत्विषि।
ब भ मैर्यरलैर्युक्ते वर्णैः षडभिश्च सुव्रते।।
मणिपूरे दशदले नीलजीमूतसन्निभे।
डादिफान्तर्दलैर्युक्ते विन्दूद्भासितमस्तकैः।।
अनाहते द्वादशारे प्रवालरुचिसन्निभे।
कादिठान्तदलैर्युक्ते योगिनां हृदयङ्गमे।।
विशुद्धे षोडशदले धूम्राभे स्वरभूषिते।
आज्ञाचक्रे तु चन्द्राभे द्विदले हक्षलाञ्छिते।।
सहस्रारे हिमनिभे सर्ववर्णविभूषिते।
अकथादित्रिरेखात्महलक्षत्रयभूषिते।

तन्मध्ये परविन्दुञ्च सृष्टिस्थितिलयात्मकम्।
एवं समाहितमना ध्यायेन्न्यासोऽयमान्तरः ।।

अथ वाह्यमातृकाध्यानम्

पञ्चाल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोःपन्मध्यवक्षःस्थलाम् ।
भास्वन्मौलिनिबद्ध चन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम् ।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं विद्याञ्च हस्ताम्बुजैर्विभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ।

एवं ध्यात्वा न्यसेत् ।

तत्र अंगुलिनियमतन्त्रेः

ललाटेऽनामिकामध्ये विन्यासेन्मुखपङ्कजे ।
तर्जनीमध्यमानामा वृद्धानामे च नेत्रयोः ।।
अङ्गुष्ठं कर्णयोर्न्यस्य कनिष्ठांगुष्ठकौ नसोः ।
मध्यास्तिस्रो गण्डयोस्तु मध्यमाञ्चोष्ठयोर्न्यसेत् ।।
अनामां दन्तयोर्न्यस्य मध्यमामुत्तमाङ्गके ।
मुखेऽनामां मध्यमाञ्च हस्ते पादे च पार्श्वयोः ।।
कनिष्ठानामिकामध्यास्तास्तु पृष्ठे च विन्यसेत् ।
ताः सांगुष्ठा नाभिदेशे सर्वाः कुक्षौ च विन्यसेत् ।।
हृत्पूर्वहस्तपत्कुक्षिमुखेषु तालमेव च ।
एताश्च मातृकामुद्राः क्रमेण परिकीर्त्तिता ।।

नित्यत्वामाह तत्रैवः

अज्ञात्वा विन्यसेद्यस्तु न्यासः स्यात्तस्य निष्फलः । इति।

स्थानमाह गौतमीयेः

ललाटमुखवृत्ताक्षिश्रुतिघ्राणेषु गण्डयोः ।
ओष्ठदन्तोत्तमाङ्गास्यदोःपत्सन्ध्यग्रकेषु च ।
पार्श्वयोः पृष्ठतौ नाभौ जठरे हृदयेऽके ।
ककुद्यंसे च हृत्पूर्वपाणिपादयुगे तथा ।।
जठराननयोर्न्यस्येन्मातृकावर्णान्यिथाक्रमम् ।।

तद्यथाः

अं नमो ललाटे, आं नमो मुखवृत्ते, इं ईं चक्षुषो, उं ऊं कर्णयोः, ऋं ॠं

नसोः, लृं लॄं गण्डयो, एं ओष्ठे, ऐं अधरे, ओं ऊर्ध्वदन्ते, औं अधोदन्ते, अं ब्रह्मरन्ध्रे, अः मुखे । कं दक्षबाहुमूले, खं कूर्परे, गं मणिबन्धे, घं अंगुलिमूले, ङ अंगुल्यग्रे । एवं चं छं जं झं ञं वामबाहुमूलसन्ध्यग्रकेषु । एवं टं ठं डं ढं णं दक्षपादमूलसन्ध्यग्रकेषु । एवं तं थं दं धं नं वामपादमूलसन्ध्यग्रकेषु । पं दक्षपार्श्वे, फं वामपार्श्वे, बं पृष्ठे, भं नाभौ, मं उदरे, यं हृदि, रं दक्ष बाहुमूले, लं ककुदि, वं वामबाहुमूले, शं हृदादिदक्षकरे, यं हृदादिवामकरे, सं हृदादिदक्षपादे हं हृदादिवामपादे, लं हृदाद्युदरे, क्षं हृदादिमुखे, सर्वत्र नमोऽन्तेन न्यसेत् ।।

तथा चः

ओमाद्यन्तो नमोऽन्तो वा सविन्दुर्विन्दुवर्जितः ।
पञ्चाशद्वर्णविन्यासः क्रमादुक्तो मनीषिभिः ।।

इति राघवभट्टः ।

अथ संहारमातृकान्यासः

अस्याध्यानं यथाः

अक्षस्रजं हरिगपोतमुदग्रटङ्कं, विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम् ।
अर्द्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दरामां वर्णेश्वरीं प्रणमतः स्तनभारनम्राम् ।।

न्यासस्तु क्षकारादि अकारान्तः ।

यथाः

क्षं नमो हृदादिमुखे इत्यादि ।

अपरञ्चः

चतुर्द्धा मातृका प्रोक्ता केवला विन्दुसंयुता ।
सविसर्गा सोभया च रहस्यं शृणु कथ्यते ।।
विद्याकरी केवला च सोभया भक्तिदायिनी ।
पुत्रदा सविसर्गा तु सविन्दुर्वित्तदायिनी ।।

विशुद्धेश्वरेः

वाग्भवाद्या च वाक्सिद्ध्यै रमाद्या श्रीप्रवृद्धये ।
हृल्लेखाद्या सर्वसिद्ध्यै कामाद्या लोक वश्यदा ।
श्रीकण्ठाद्यानिमान्यस्येत्सर्वमन्त्रः प्रसीदति ।।

श्रीविद्याविषयेनवरत्नेश्वरेः

वाग्भवाद्या नमोऽन्ताश्च न्यस्तव्या मातृकाक्षराः ।
श्रीविद्याविषये मन्त्री वाग्भवाद्यष्टसिद्धये ।।

नित्यतामाह यामले:

भूतशुद्धिलिपिन्यासौ विना यस्तु प्रपूजयेत् ।
विपरीतफलं दद्यादभक्त्या पूजनं यथा ।।

सामान्यन्यासे अङ्गुलिनियमस्तु गौतमीये:

मनसा वा न्यसेन्न्यासान् पुष्पेणैवाथ वा मुने ! ।
अंगुष्ठानामिकाभ्यां वा चान्यथा विफलं भवेत् ।।

विशेषन्यासे तु नायं नियमः । श्यामादिविद्यायां विशेषमातृकान्यासो वक्तव्यः ।

प्राणायामो अंगुलिनिमयस्तु ज्ञानार्णवे:

भूतशुद्धिं ततः कुर्यात्प्राणायामक्रमेण च ।
कनिष्ठानामिकांगुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम् ।
प्राणायामः स विज्ञेयस्तर्जनीमध्ये विना ।।
प्राणायामो द्विविधः सगर्भो निर्गर्भश्च ।

तथा च:

सगर्भो मन्त्रजापेन निर्गर्भो मात्रया भवेत् ।

मात्रा च:

वामजानुनि तद्धस्तभ्रामणं यावता भवेत् ।
कालेन मात्रा साज्ञेया मुनिभिर्वेदपारगैः ।।

अथ प्राणायामः

मूलमन्त्रस्य बीजस्य प्रणवस्य वा षोडशवारजपेन वामनासापुटेन वायुं पूरयेत् ।

तथा च कालीहृदये:

प्राणायामत्रयं कुर्यान्मूलेन प्रणवेन वा ।
अथवा मन्त्रबीजेन यथोक्तविधिना सुधीः ।।
तस्य चतुःषष्टिवारजपेन वायुं कुम्भयेत् ।
तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन वायुं रेचयेत् ।।
पुनर्दक्षिणेनापूर्य उभाभ्यां कुम्भायित्वा वामेन रेचयेत् ।
पुनर्वामेनापूर्य उभाभ्यां कुम्भयित्वा दक्षिणेन रेचयेत् ।।

यथा सारसमुच्चये:

विपरीतमतो विदधीत बुधः पुनरेव तु तद्विपरीतकमिति ।
यौगिकं पुनर्मात्रानियमः ।

तथा च गौतमीये:

मन्त्रप्राणायामः प्रोक्तो यौगिकं कथयामि ते ।
पूरयेद्वामया विद्वान्मात्राषोडशसंख्या ।।

इत्यादि

यद्वाः

चतुःषोडशाष्टवारजपे पूरकादिकं कुर्यात् । अथवा एकचतुर्द्विवारेण ।

तथा च तन्त्रान्तरेः

पूजयेत्षोडशभिर्वायुं धारयेच्च चतुर्गुणैः ।
रेचयेत्कुम्भकार्द्धेन अशक्त्या तत्तुरीयकैः ।।
तदशक्तौ तच्चतुर्थमेवस्य प्राणस्य संयमः ।

अस्य नित्यत्वमाह स एवः प्राणायामं विना मन्त्रपूजने न हि योग्यता ।

निबन्धेः

आदावन्ते च यत्नेन प्राणायामं समाचरेत् ।
कर्मस्वपि समस्तेषु शुभेष्वप्यशुभेषु च ।
गोपाले तु विशेषो वक्तव्यः ।।

अथ पीठन्यासः

ॐ आधार शक्तये नम, प्रकृतये, कूर्माय, अनन्ताय, पृथिव्यै, क्षीरसमुद्राय, श्वेतद्वीपाय, मणिमण्डपाय, कल्पवृक्षाय, मणिवेदिकायै, रत्नसिंहासनाय । एतत्सर्वं हृदि । ततो दक्षिणस्कन्धे धर्माय, वामस्कन्धे ज्ञानाय, वामोरौ वैराग्याय, दक्षिणोरौ ऐश्वर्याय, मुखे अधर्माय, वामपार्श्वे अज्ञानाय, नाभौ अवैराग्याय, दक्षिणपार्श्वे अनैश्वार्याय, सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन न्यसेत् ।

तथा च शारदायाम्

अंसोरुयुग्मयोर्विद्वान्प्रादक्षिण्येन साधकः ।
धर्मं ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्यं क्रमशः सुधीः ।

मुखपार्श्वनाभिपार्श्वेष्व धर्मादीन्प्रकल्पयेदिति । पुनश्च हृदि । ॐ अनन्ता-

य नमः, एवं पद्माय, अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, ॐ सोमण्डलाय षोडशकलात्मने नमः, मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, सं सत्त्वाय, रं रजसे तं तमसे, आं आत्मने, अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने । सर्वत्र नमः इत्यन्तं विन्यस्य हृत्पद्मस्य पूर्वादिकेशरेषु तत्तत्कल्पोक्त पीठशक्तीर्मध्ये पीठमनुञ्च न्यसेत् ।

शारदायाम्

अनन्तं हृदये पद्मं तस्मिन्सूर्येन्दुपावकान् ।
एषु स्वस्वकलां न्यस्य नामाद्यक्षरपूर्वकम् ।।
सत्त्वादीन्त्रिगुणन्न्यस्य तथैवात्र गुरुत्तमः ।
आत्मानमन्तरात्मनं परमात्मानमेव च ।।
ज्ञानात्मानं प्रविन्यस्य न्यसेत्पीठमनुं ततः ।।

अथ ऋष्यादिन्यासः

ऋषिस्तुः

महेश्वरमुखाज्ज्ञात्वा यः साक्षात्तपसा मनुम् ।
संसाधयति शुद्धात्मा स तस्य ऋषिरीरितः ।।
गुरुत्वान्मस्तके चास्य न्यासस्तु परिकीर्त्तितः ।
सर्वेषां मन्त्रतत्त्वानां छादनाच्छन्द उच्यते ।
अक्षरत्वात्पदत्वाच्च मुखे छन्दः समीरितम् ।
सर्वेषामेव जन्तूनां भाषणात्प्रेरणात्तथा ।
हृदयाम्भोजमध्यस्था देवता तत्र तां न्यसेत् ।
ऋषिच्छन्दोऽरिज्ञानात्र मन्त्रफलभाग्भवेत् ।
दौर्बल्यं याति मन्त्राणां विनियोगमजानताम् ।।

तन्त्रान्तरेः

ऋषिं न्यसेन्मूर्ध्निदेशे छन्दस्तु मुखपङ्कजे ।
देवता हृदये चैव बीजन्तु गुह्यदेशके ।।
शक्तिञ्च पादयोश्चैव सर्वाङ्गे कीलकं न्यसेत् ।।
ततस्तु तत्तन्मन्त्रोक्तन्यासान्कुर्यात् ।

तदुक्तं कुलार्णवेः

आगमोक्तेन विधिना नित्यं न्यासं करोति यः ।
देवताभावमाप्नोति मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ।।

यो न्यासकवच्छन्नो मन्त्रं जपति तं प्रिये!।
दृष्ट्वाविघ्नाः पलायन्ते सिंह दृष्ट्वा यथा गजाः ।।
अकृत्वा न्यासजालं यो मूढ़त्वात्प्रजपेन्मनुम् ।
सर्वविघ्नैः स वाध्यः स्याद्व्याघ्रैर्मृगशिशुर्यथा ।।

षडङ्गन्यासे अंगुलिनियमस्तु–

त्रिद्वयेकदशक त्रिद्विसंख्यया शैलसम्भवे!।
अंगुलीनामिति वचनादिति सर्वत्र साधारणम् ।।

यामले:

हृदयं मध्यमानामातर्जनीभिः स्मृतं शिरः ।
मध्यमातर्जनीभ्यां स्यादंगुष्ठेन शिखा तथा ।।
दशभिः कवचं प्रोक्तं तिसृभिर्नेत्रमीरितम् ।
प्रोक्तांगुलीभ्यामन्त्रं स्यादङ्गक्लृप्तिरियं मता ।।इति
तिसृभिसतर्जनीमध्यमानामाभिः ।।

तर्जनीमध्यमानामा प्रोक्ता नेत्रत्रये क्रमात् ।
यदि नेत्रद्वयं प्रोक्तं तदा तर्जनीमध्यमे ।

इति राघवभट्टधृतवचनात् ।

हृदयादिषु विन्यस्येदङ्गमन्त्रांस्ततः सुधीः ।
हृदयाय नमः पूर्वं शिरसे वह्निवल्लभा ।
शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमीरितम् ।।
नेत्रत्रयाय वौषट् स्यादस्त्राय फडिति क्रमात् ।
षडङ्गमन्त्रानित्युक्तान् षडङ्गेषु नियोजयेत् ।।
पञ्चाङ्गानि मन्तेर्यत्र तत्र नेत्रमनुं त्यजेत् ।

इति शारदावचनम् ।

वैष्णवे तुः

अनंगुष्ठा ऋजवो हस्तशाखा भवेन्मुद्रा हृदये शीर्षकेऽपि च ।
अधोऽङ्गुष्ठा खलु मुष्टिः शिखायां करद्वन्द्वांगुलयो वर्मणि स्युः ।।
नाराचमुष्टयुद्धृतबाहुयुग्मकांगुष्ठतर्जन्युदितो ध्वनिस्तु ।
विश्वग्विषक्तः कथितास्त्रमुद्रा यत्राक्षिणी तर्जनीमध्यमे च ।
नेत्रत्रयं यत्र भवेदनामा षडङ्गमुद्रा कथिता यथावत् ।।
अङ्गहीनस्य मन्त्रस्य स्वेनेवाङ्गानि कल्पयेत् ।।

तथा च ब्रह्मयामलेः

स्वनामाद्यक्षरं बीजं सर्वेषामभिधीयते ।।

ततस्तत्तत्कल्पोक्तमुद्रां प्रदर्श्य ध्यानं कृत्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ।

तथा च सनत्कुमारतन्त्रेः

अकृत्वा मानसं यागं न कुर्याद्बहिरर्चनम् ।
ततः शरीरे धर्मादिपूजा ।।

तथा च शारदायाम्

न्यासक्रमेण देहेष्नु धर्मादीन्पूजयेत्ततः ।

पुष्पाद्यैः पीठमन्वन्तं तस्मिंश्च परदेवताम् । इति दर्शनात्वशरीरे पीठपूजा । ततः पीठपूजा । पीठस्योत्तरे गुरुपंक्तिः पूजयेत् ।

यथाः

वायव्यादीशपर्यन्तं ॐ गुरुभ्यो नमः ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परापरगुरुभ्यो नमः, ॐ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः । त्रिपुरादौ तु विशेषगुरुपूजा वक्तव्या । ततः पीठमध्ये ॐ आधारशक्तये नमः एवं प्रकृतये, कूर्माय, शेषाय, पृथिव्यै, क्षीरसमुद्राय, श्वेतद्वीपाय, मणिमण्डपाय, कल्पवृक्षाय, मणिवेदिकायै, रत्नसिंहासनाय । अग्निकोणे धर्माय । निर्ऋतिवाय्वीशानेषु ज्ञानं वैराग्यं ऐश्वर्यञ्च पूजयेत् । ततः पूर्वादिचतुर्दिक्षु अधर्माज्ञानावैराग्यनैश्वर्यान्पूजयेत् । मध्ये अनन्तादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः । इत्यन्तं सम्पूज्य पूर्वादिकेशरेषु मध्ये तत्तत्कल्पोक्त पीठ शक्तिः सम्पूज्य मध्ये पीठमनुं प्रपूजयेत् ।

क्रमदीपिकायामः

वायव्यादीशपर्यन्तं अर्च्या पीठस्योत्तरे गौरवीपंक्तिरादौ ।
पूजयोऽन्यत्राप्याम्बिकेयः कराब्जैः पाशं दण्डं सृण्यभीती दधानः ।
आरम्भ्याधारशक्त्याद्यमरचरणपावध्यतो मध्यभागे, धर्मादीन् वह्निरक्षः परमशिवगतान्दिक्ष्वधर्मादिकांश्च । मध्ये शेषाब्जविम्बत्रितयगुणगुणात्मस्त्रजं केशराणां, मध्ये मध्ये च शक्तीर्नव समभियजेत्पीठमन्त्रेण भूयः ।

तारादिविद्यादौ तु विशेषो वक्तव्यः ।

पूर्वादि दिङ्नियमस्तु यामले:

पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राचीति कीर्त्यते बुधैः ।
तद्दक्षिणं दक्षिणं स्यादुत्तरं स्मृतम् ।
पृष्ठन्तु पश्चिमं ज्ञेयं सर्वत्रैवं प्रयोजयेत् ।

स्पष्टमाह शाम्भवीये:

स्वसम्मुखं भवेत्प्राची देवीपृष्ठन्तु पश्चिमम् ।
सव्यञ्च दक्षिणं विद्याद्दक्षिणञ्चोत्तरं मतम् ।।

भावचूड़ामणौ:

साधकेच्छावशाद्देवि ! सर्वदिङ्मुखदेवता ।
रात्रावुदङ्मुखः कुर्याद्दिवकार्यं सदैव हि ।
शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुख ।।

विष्णुविषये वाराहीये:

स्नातः शुक्लाम्बरधरः स्वाचान्तः पूर्वदिङमुखः ।
अनेन विधिना मन्त्री पूर्वादौ पूजनं चरेत् ।

अविशेषे यन्त्रनियमस्तु मत्स्यसूक्ते:

अनुक्तकल्पे यन्त्रन्तु लिखेत्पद्मं दलाष्टकम् ।
षट्कोणकर्णिकं तत्र वेदद्वारोपशोभितम् ।।

ततः पुनर्ध्यात्वा दीक्षापद्धत्युक्तक्रमेण आवाहनादि प्राणप्रतिष्ठान्तं कर्म कुर्यात् ।

आवाहने तु विशेषो यथा आगमकल्पद्रुमे:

मूलमन्त्रं समुच्चार्य सुषुम्नावर्त्मना सुधीः ।
आनीय तेजः स्वस्यानान्नासिकारन्ध्रनिर्गतम् ।।
करस्थमातृकाम्भोजे चैतन्यं पुष्पसञ्चये ।
संयोज्य यन्त्रमध्ये तत्संस्थाप्यवाहयेत्ततः ।।
ततः षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा पूजयेत् ।

षोडशोपचारनियमस्तु:

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।
मधुपर्काचमनस्नानवसनाभरणानि च ।।
सुगन्धसुमनोधूपदीपनैवेद्यवन्दनम् ।
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारस्तु षोडशः ।।

अथवा एषामप्यभावे पञ्चोपचारान् कल्पयेत् ।
गन्धादयो नैवेद्या पूजा पञ्चोपरचारिका इति ।।

विष्णुविषये तुः

अर्घ्याद्याः पञ्चपञ्चैव गन्धाद्या इति भेदतः ।
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारान्दश क्रमात् ।
ततः पुष्पपर्यन्तमुपचार तत्तन्मन्त्रेण दत्त्वा षडङ्गेन पूजयेत् ।

पुष्पदाने तु विशेषः

पुष्पं वा यदि वा पत्रं फलं नेष्टमधोमुखम् ।
दुःखदं तत्समाख्यातं यथोत्पन्नं तथार्पणम् ।
अधोमुखं फलं नेष्टं पुष्पाञ्जलिविधौ न च ।।

सर्वस्व द्रव्यदानेऽयं क्रमः । आदौ मूलं ततो द्रव्यं देवतायै ततः पदम् ।

श्रीतत्त्वचिन्तामणौः

हृद्वह्निवल्लभातोयमन्त्रं पाद्यादिषु क्रमात् ।
नमो वौषट् गन्धपुष्पे हृदान्यानि निवेदयेत् ।।

मूलमुच्चार्य एतत्पाद्यं अमुकदेवातयै नमः । इत्यादिना दद्यात् । ततो मूर्द्धहृद्गुह्यपादसर्वाङ्गकेषु मूलेन पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा तत्तत्कल्पोक्तावरणपूजां कुर्यात् ।

तथा चः

पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा परिवारार्चनं चरेदिति भट्टः ।

ततो धूपदीपौ दद्यात् ।

तद्यथाः

जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहेति पुष्पाक्षतैर्घण्टां सम्पूज्य, वामहस्तेन तां वादयन, तत्तन्मन्त्रेण नीचैर्धूप एवं दृष्टिपर्यन्त दीपं दद्यात् । ततो मूलेन पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा, नैवेद्यमानीय, फडिति सम्प्रोक्ष्य, चक्रमुद्रया अभिरक्ष्य, तदुपरि मूलमष्टधा जप्त्वा धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य, मूलमुच्चार्य नैवेद्यं दद्यात् । यत्तोयमर्घ्यपात्रस्य तदादाय निवेदयेत् ।

अन्यतोयैर्यदुत्सृष्टमर्घ्यपात्रस्थितेतरैः ।
न गृह्णाति महादेवी दत्तं विधिशतैरपि ।।

इति वचनादुपचारानर्घ्यपात्रस्थजलेनोत्सृज्य दद्यात् । ततः पुनराचमनीयं दत्त्वा ताम्बूलादीनि दद्यात् । वैष्णवे तु नैवेद्ये विशेषो वक्तव्यः । ततः सपरिवारां

देवतां गन्धादिभिरभ्भ्यर्च्य नृत्यगीतैर्देवं सन्तोष्य, जय जयेत्युक्त्वा विशेषार्घ्यं दत्त्वा, पुष्पाञ्जलिं दद्यात्।

दाने तुः

आदौ मूलं ततो द्रव्योल्लेखः ततः सम्प्रदानं ततस्त्यागर्थकं पदमिति सर्वत्र।

तथा च कुलार्णवेः

आदौ मूलं समुच्चार्य पश्चाद्देयं समुच्चरेत्।
सम्प्रदानं तदन्ते तु त्यागार्थकपदन्ततः।
एवं क्रमेण देवेशि! उपचारान्प्रकल्पयेत्।।

मन्त्रान्ते कर्मसन्निपात इति न्यायात्। ततश्चुल्लुकोदकमादाय ॐ इतः पूर्व प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं तत्सर्व ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा मां मदीयं सकलं सम्यगमुकदेवतायै समर्पयेत् ॐ तत्सत्। नमस्कारानन्तरं वा। ततोऽष्टोत्तरसहस्रं शतं वा जप्त्वा ॐ गुह्यातिगुह्यागोप्तात्वं गृहाणस्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रासादात्त्वयि स्थिते। अन्यत्र गोप्त्री देवीति विशेषः। इति जपं समर्प्य स्तुत्वा नत्वाऽष्टाङ्गप्रमाणं कुर्यात्।

अष्टाङ्गप्रणामो यथाः

पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसां शिरसा दृशा।
वचसा मनसा चैव प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः।।
बाहुभ्याञ्चैव जानुभ्यां शिरसा वचसा दृशा।
पञ्चाङ्गोऽयं प्रणामः स्यात्पूजासु प्रवराविमौ।।
भूमौ निपत्य यः कुर्यात्कृष्णेऽष्टाङ्गनति सुधीः।
सहस्रजन्मजं पापं त्यक्त्वा वैकुण्ठमाप्नुयात्।।

तथा चः

वेदविद्भ्यो धरां दत्त्वा यत्फलं लभते नरः।
तत्फलं लभते भक्त्या कृष्णे कृत्वा प्रदक्षिणम्। (कृष्ण इत्युपलक्षणम्) विश्वसारेः।

शङ्खहस्तेन सर्वत्र प्रदक्षिणं प्रकीर्त्तितम्।।

नीतिविशेषस्तु यामलेः

त्रिकोणाकारा सर्वत्र नतिः शक्तेः प्रकीर्त्तिता।
दक्षिणाद्वारवीं गत्वा दिशस्तस्माच्च शाम्भवीम्।।

ततश्च दक्षिणां गत्वा नमस्कारस्त्रिकोणवत् ।
अर्द्धचन्द्रं महेशस्य पृष्ठतश्च समीरिता ।।
शिवप्रदक्षिणे मन्त्री अर्द्धचन्द्रक्रमेण तु ।
सव्यासव्यक्रमेणैव सोमसूत्रं न लङ्घयेत् ।।
सोमसूत्रं जलनिःसरणस्थानम् ।
प्रसार्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्रशिराः पुनः ।।
दर्शयेद्दक्षिणं पार्श्वं मनसाऽपि विचक्षणः ।
त्रिधा च वेष्टयेत्सम्यग्देवतायाः प्रदक्षिणे ।।
एकहस्तप्रणामश्च एकं वाऽपि प्रदक्षिणम् ।
अकाले दर्शनं विष्णोर्हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ।।

ततो देवताङ्गे आवरणदेवता विलाप्य, क्षमस्वेति विसर्जनं कृत्वा संहारमुद्रया तत्तेजः पुष्पैः सार्द्धमाघ्राय स्वहृदयमानयेत् ।

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्

क्षमस्वेति वदन्मूलमन्त्रेण व्यापकं त्रिश इति वचनात्विसर्जनान्तरं व्यापकं कुर्यात् ।

तथा चः

निधाच देवतां पश्चात्स्वीयहृत्सरसीरुहे ।
सुषुम्नावर्त्मना पुष्पमाघ्रायोद्वासयेत्ततः ।।

ततः ऐशान्या त्रिकोणमण्डलं कृत्वा निर्माल्यशेषं दद्यात् विष्णौ तुः

ॐ विश्वक्सेनाय नमः । शक्तौः ॐ शेषिकायै नमः । शिवेः ॐ चण्डेश्वराय नमः । सूर्येः ॐ तेजश्चण्डाय नमः । गणेशेः ॐ उच्छिष्टगणेशाय नमः । कालिकादौः ॐ उच्छिष्टचाण्डालिन्यै नमः तथा चः

विष्वकसेनः स्मृता विष्णोस्तेजश्चण्डो विवस्वत इत्यादि ।

तथा च निबन्धेः

सूर्ये गणपतावुग्रे शाक्ते शैवेऽथ वैष्णवे ।
तेजश्चण्डमखोच्छिष्टसोजमुच्छिष्ट पूर्विकाम् ।।
चाण्डालीं शेषिकां चण्डं विष्वक्सेनं क्रमाद्यजेत् ।

सोज इति उमा शम्भुना सह वर्त्तते इति सोदुर्गा तज्जो गणेशः ।

ततः पादोदकं पीत्वा नैवेद्यं किञ्चित्स्वीकृत्य अन्यद्यथायोग्याय दत्त्वा यथासुखं विहरेदिति ।

मत्स्यसूक्ते:

अनिवेद्यं न भुञ्जीत मत्स्यमांसादिकञ्च यत् ।
अन्नं विष्ठा पयो मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् ।।
विष्णोरिति तत्तद्देवतापरम् ।

तथा च भैरवतन्त्रे:

हृदये च वहिर्देवीं समर्प्य विधिवत्ततः ।
निर्माल्यञ्च शुचौ देशे नैवेद्यं भक्षयेत्सुधीः ।।

तन्त्रान्तरे:

निर्माल्यं शिरसा धार्यं सर्वाङ्गे चानुलेपनम् ।
नैवेद्यं चोपभुञ्जीत दत्त्वा तद्भक्तिशालिने ।।
देवतार्चावशिष्टं यत्सलिलं शङ्खमध्यगम् ।
अलग्नं मनुष्याणां ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।।

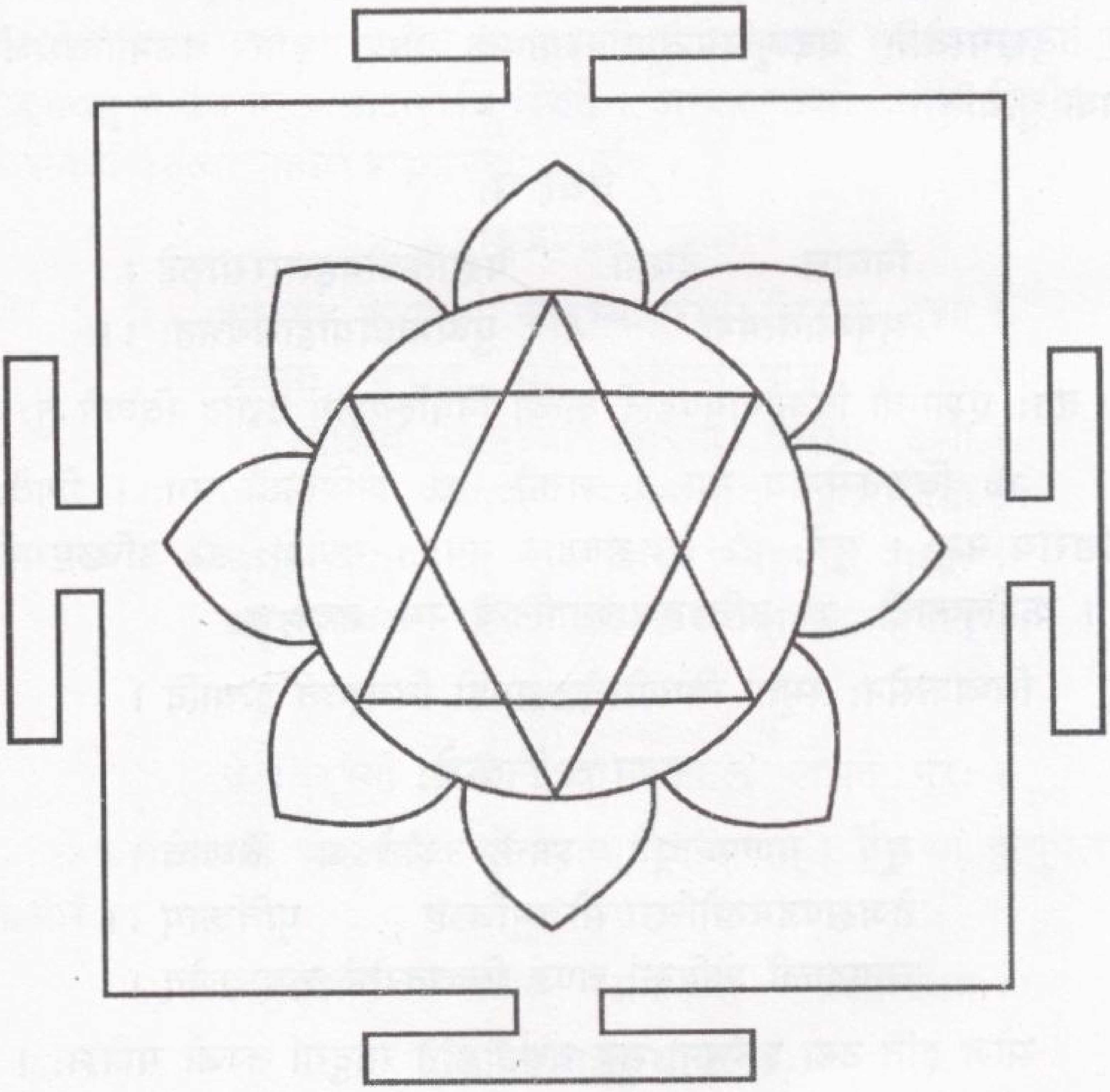

।।सामान्य पूजायन्त्र।।

इति सामान्य पूजा पद्धतिः

सामान्य पूजा की पद्धति

साधक ब्राह्ममुहूर्त में निद्रा को त्याग कर बैठे और सिर में स्थित सहस्त्रदल कमल की कर्णिका के मध्य में स्थित श्वेत वर्ण दो भुजाओं में वर एवं अभय धारण करने वाले, श्वेतमाला एवं अनुलेपन से युक्त, स्वप्रकाशरूप, अपनी बायीं ओर स्थित रक्तवर्ण की शक्ति सहित श्री गुरुदेव का ध्यान करे। फिर मानसोपचार से उनकी पूजा कर उन्हे नमस्कार करे। **अखण्डमण्डलाकार.......तस्मै श्रीगुरवे नमः** इन दो श्लोकों से उन्हे नमस्कार करे।

इसके पश्चात् मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक मूलविद्या कुलकुण्डलिनी की भावना करे। **योगिनी हृदय** ग्रन्थ में कुण्डरूिनीरूपा विद्या मण्डलत्रयभेदिनी कही गयी है।

अन्य तांत्रिक ग्रन्थों में कुल कुण्डलिनी का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है, अत्यन्त ही सूक्ष्मस्वरूप वाली मूलाधार में निवास करने वाली इष्टदेवता स्वरूपा, जो साढ़े तीन वलयों से स्वयम्भूलिंग को घेरे हुये है और जिसकी देह की कान्ति करोड़ों विद्युत के समान प्रभावान है, ऐसी कुलकुण्डलिनी को साधक **हंस मन्त्र (सोऽहं)** से जाग्रत कर श्वास को नियन्त्रित करते हुये उसका ध्यान करे और यह भावना करे कि उदय होते हुये सूर्य के समान कान्तिवाली कुलकुण्डलिनी के शरीर की कान्ति से अपना (साधक का) शरीर व्याप्त हो गया है।

गौतमीय तन्त्र मे इसके नित्यत्व के विषय में भगवान् शिव कहते हैं कि इस समय मैं प्रसङ्गानुसार तुमसे पूर्व कृत्य कहता हूँ। जो साधक प्रातः कृत्य करके साधन करता है उसे मन्त्र-यन्त्रादि की अर्चना का अधिकार प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य प्रातः कृत्य न करके देवताओं की पूजा व उपासना करता है वह नरकगामी होता है।

यामल मे भी कहा गया है जो मनुष्य प्रातः कृत्य न करके भक्तिपूर्वक देवी की अर्चना करता है उसकी वह अर्चना आचारहीन क्रिया के समान निष्फल होती है।

लक्ष्मी कुलार्णव में भी लिखा है कि जो मनुष्य सन्ध्यारहित है उसे दीक्षा से कोई भी फल नही प्राप्त होता है। इसलिए सन्ध्या अवश्य करे। वैदिकी सन्ध्या के पश्चात् तान्त्रिकी सन्ध्या करे।

कहा भी गया है कि वैदिकी सन्ध्या के पश्चात् तान्त्रिकी सन्ध्या करे।

सन्ध्याप्रयोग

स्वतन्त्र तन्त्र और **मालिनीतन्त्र** मे लिखा है, कि शक्ति सन्ध्या में **ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा** इन मन्त्रों से आचमन करे। अन्य देवताओं के विषय में मात्र यथाविधि वैदिक आचमन ही करे।

तदुपरान्त **ॐ गंगे च यमुना चैव** इत्यादि मन्त्र से जल में तीर्थों का आवाहन कर तीन कुशपत्रों से भूमि पर तीन बार और मस्तक पर सात बार जल छिड़के। इसके बाद प्राणायाम और षडङ्गन्यास कर बायें हाथ में कुछ जल लेकर उसे दाएं हाथ से ढँके और **हं यं वं लं रं** इस मन्त्र का तीन बार जप करे। तब मूलमन्त्र का उच्चारण कर तत्त्वमुद्रा द्वारा टपकते हुए जल के द्वारा सात बार मस्तक पर छिड़के और शेष जल दायें हाथ में ले ले। फिर उस जल को तेजोरूप ध्यान कर इड़ा (बायीं नासिका) से उसका आकर्षण करते हुये देहमध्यगत पाप का प्रक्षालन कर उसी जल को कृष्णवर्ण पापपुरुष रूप का ध्यान कर पिंगला (दाहिनी नासिका) द्वारा निकलते हुए कल्पित वज्रशिला **फट्** मन्त्र से पाप पुरुष रूप उस जल को फेंक दे। यह अघमर्षण हुआ। गङ्गादि तीर्थ के जल में भी **ॐ गंगे च यमुना चैव** इत्यादि मन्त्र से तीर्थ का आवाहन करे।

स्मृति मे कहा गया है कि तीर्थ के जल में तीर्थ के आवाहन से दुगुना फल प्राप्त होता है।

गौतमीय तन्त्र में कहा गया है कि साधक विधिपूर्वक आचमन कर पवित्र स्थान पर बैठे। जल में तीर्थों का आवाहन कर तीन बार मूल मन्त्र से पृथ्वी पर और सिर पर सात बार कुशा के अग्रभाग से जल छिड़के।

तन्त्रान्तर मे कहा गया है कि पुनः आचमन और षडङ्गन्यास कर बायें हाथ में जल लेकर गिरते हुए जल बिन्दुओं के द्वारा सात बार मन्त्र जपते हुए सिर प्रोक्षण करे। शेष जल द्वारा पहले की भाँति अघमर्षण करे।

इसके पश्चात् हाथ धोकर आचमन कर **ह्रीं हंसः या ॐ घृणि सूर्य आदित्याय** मन्त्र से सूर्यदेव को जल द्वारा अर्घ्य प्रदान करे। तदुपरान्त **ॐ सूर्यमण्डलस्थायै अमुक देवतायै नमः** मन्त्र का पाठ करते हुये या उस उस देवता की गायत्री का जप करे।

ज्ञानार्णव तन्त्र के अनुसार अर्घ्य देने के पश्चात् गायत्री मन्त्र का जप करे।

नन्दिकेश्वरसंहिता के अनुसार जब तक सूर्य देव को अर्घ्य न प्रदान किया जाय, तब तक विष्णु, शिव अथवा शक्ति देवता की पूजा का अधिकारी नही होता है।

गौतमीयतन्त्र में वर्णित है कि इसी प्रकार तान्त्रिक मन्त्र के फल के लाभ के लिए तान्त्रिक सन्ध्या कही गयी हैं। तान्त्रिक सन्ध्या के न करने से दीक्षा का फल नही प्राप्त होता है। ब्राह्मण विधिपूर्वकप्रातः, मध्याह्न एवं सायह्न (सायंकाल) तीन बार वैदिक सन्ध्या सहित तान्त्रिक सन्ध्या करे और शूद्र मात्र तान्त्रिक सन्ध्या करे। समस्त मन्त्रानुष्ठान मे असमर्थ होने पर साधक संक्षिप्त सन्ध्या करे। यथा-प्रातः मध्याह्न और सायंकाल देवता का ध्यान कर केवल मूलमन्त्र का जप करे। जैसे-समय सन्ध्या न होने पर अन्य समय दश बार गायत्री का जप कर फिर सन्ध्या करे।

स्नान की विधि—साधक नदी आदि में वैदिक नियम के अनुसार स्नान करके तान्त्रिक स्नान करे। **गौतमीयतन्त्र** में लिखा है–सर्वप्रथम साधक शरीर के मल को घेरने के लिए स्वशाखा में कहे गये गुरु द्वारा उपदिष्टमार्ग विधान से स्नान करे। फिर सर्वधर्मासिद्धयर्थ मन्त्र से स्नान करे। मन्त्र स्नान के लिए सर्वप्रथम संकल्प करे। जैसे– **ॐ अद्येत्यादि अमुक देवताप्रीतये स्नानमहं करिष्ये।**

कुलचूड़ामणि में वर्णित है कि जल, तिल और दूर्वायुक्त ताम्र पात्र ग्रहण कर देवताप्रीति की इच्छा से स्नान करे। इसके पश्चात् षडङ्गन्यास और प्राणायाम् करे और **ॐ गंगे च......सन्निधिं कुरु** मन्त्र से अंकुश मुद्रा द्वारा सूर्य मण्डल से तीर्थों का आवाहन करे। इसके बाद **(वं)** से धेनमुद्रा मुद्रा अमृतीकरण **हुं** से कचवमुद्रा द्वारा अवगुण्ठन और **फट्** से संरक्षण कर ११ बार मूल मन्त्र का जप कर स्नानीय जल को अभिमन्त्रित करे। तदुपरान्त सूर्य की ओर मुख करके बारह (१२) बार जल की धारा देकर यह भावना करे कि यह जल इष्ट देवता के चरण कमल से निकला हुआ है और तीन बार उसमें डुबकी लेकर देवता का ध्यान करते हुए अपनी शक्ति भर मूलमन्त्र का जप करे। जप के पश्चात् कलशमुद्रा से तीन बार अपने मस्तक का उक्त जल से अभिषेक कर वैदिक सन्ध्यातर्पण के बाद सूर्य को अर्घ्य प्रदान कर तान्त्रिक अघमर्षणादि से जलधारादान तक समस्त कर्म करे।

'यामल' में वर्णन है कि ध्यान करके जल की अञ्जलि छोड़ते हुए इष्ट देवता का तर्पण करना चाहिए। **ॐ देवांस्तर्पयामि, ॐ ऋषींस्तर्पयामि ॐ पितृंस्तर्पयामि, ॐ गुरुं, परमगुरुं, परापरगुरं, परमेष्टिगुरुं तर्पयामि** इस क्रम से तर्पण करे।

विष्णु मन्त्र के विषय में नारद, पर्वत, विष्णु, निशठ, उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन, शैनेय और गुरु इनमें से प्रत्येक का तीन तीन बार तर्पण करे। यथा–**ॐ नारदं तर्पयामि नमः** इत्यादि। इसके बाद **मूल अमुक देवतां तर्पयामि नमः** से तर्पण करे। यह वाक्य विष्णुमन्त्र के लिए है। अन्य देवता के सम्बन्ध में **मूलं अमुक देवतां तर्पयामि** से तर्पण करे। शक्ति के विषय में **मूलं अमुक देवीं** तर्पयामि स्वाहा कहकर तर्पण करे। होम के विषय मे भी इसी प्रकार जानें।

विशुद्धेश्वर तन्त्र मे वर्णन है कि उक्त क्रम से २५, १० अथवा ३ बार श्रीकृष्ण का तर्पण करे। शक्ति के सम्बन्ध में तीन बार तर्पण करने का नियम है।

कुलामृत में लिखा है कि स्नान कार्य समाप्त कर मस्तक पर जल की अञ्जलि देकर तीन बार आचमन करने के पश्चात् तीन बार तर्पण करे और तीन बार जल से शरीर का प्रोक्षण करे।

इसके पश्चात् आवरणदेवताओं में से प्रत्येक का तर्पण करे।

कुलार्णव मे कहा गया हैं कि प्रत्येक का एक एक बार तर्पण करे और यदि इसमें असमर्थ हो तो मूल मन्त्र का का उच्चारण कर केवल इष्टदेवता का तर्पण करे और जल से बाहर निकल कर दो धुले हुए वस्त्र धारण करे और **ह्रीं हंसः इदमर्घ्यं सूर्याय स्वाहा** से अर्घ्य प्रदान करे। तारादि देवता के पक्ष में **ह्रीं हसः मार्तण्ड भैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहा** से अर्घ्य प्रदान करे। श्री विद्या के सम्बन्ध में **ऐं ह्रीं श्रीं ह्रां ह्रीं सः मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय ग्रहराशिनक्षत्रतिथियोग-करणपरिवारसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहा** से अर्घ्य प्रदान करे। इस प्रकार अर्घ्य प्रदान कर इष्टदेव के मन्त्र का सौ (१००) अथवा दश (१०) बार जप करे।

तन्त्रान्तर में लिखा है कि १०८ अथवा १० बार गायत्री जप करने से महापातकी व्यक्ति भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

गायत्री के जप के पश्चात् तर्पण करे। सूर्यमण्डल में स्थित देवता को उद्दिष्ट कर गायत्रीपाठ पूर्वक तीन बार अर्घ्य प्रदान करे। यथा शक्ति गायत्रीजप करने के पश्चात् आचमन और प्राणायाम कर ध्यान एवं जल की अञ्जलि देकर इष्टदेवता का तर्पण करे।

विभिन्न प्रकार के गायत्रीमन्त्र मूल में लिखे हैं। पाठक वहीं देखे।

अपने देवता की गायत्री जप करने के बाद देवता का ध्यान करे। प्रात: कालीन सन्ध्या आकाश में नक्षत्र विद्यमान हो तब की जाती हैं।

प्रातः कालीन ध्यान उगते हुए सूर्य के समान वर्णवाली, दोनों हाथों में पुस्तक और जप की माला धारण करने वाली, काले मृग का चर्म पहनने वाली ब्रह्मीशक्ति का ध्यान करे।

मध्याह्नकालीन ध्यान श्यामवर्णा, चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण करने वाली सूर्यमण्डल में स्थित देवी का ध्यान करे।

सायाह्नकालीन ध्यान वर देने वाली, गायत्री स्वरूपा, शुक्ल वर्णा, श्वेतवस्त्र धारिणी, वृष पर आरूढ़, तीन नेत्र वाली, पाश, शूल, एवं नर कपाल धारिणी सूर्यमण्डल में स्थित देवी का ध्यान करे।

इस प्रकारतीन सन्ध्याओं में पृथक् पृथक् रूप में देवता का ध्यान करे। काली, तारादि सभी देवआतों के सम्बन्ध में उपर्युक्त प्रकार से ही ध्यान करे किन्तु **त्रिपुरसुन्दरी की सन्ध्या** मे ध्यान कुछ विशेष प्रकार है। यथा–

प्रातः काल मूलाधार कमल में अग्निमण्डल के ऊपर स्थित, वाग्बीज (ऐं) स्वरूपिणी, विद्युतपुञ्ज के समान उज्जवल एवं कान्तिमती, पुष्प, बाण, इक्षुधनु, पाशएवं

अंकुश हाथों में धारण करने वाली, इच्छामयमूर्ति, गुरु एवं विद्याधररूपिणी त्रिपुरा की ध्यान करे।

मध्याह्नकालः हृदय कमल की कर्णिका के मध्य में सूर्यमण्डलवासिनी, कामबीजात्मिका, अलक्तक रस से अरुणवर्णा, पुष्प बाण, पौण्ड्रइक्षुवाण, चाप व अंकुश से युक्त, प्रमुख ३६ शक्तियों से घिरी हुई त्रिपुरा का ध्यान करे।

सायाह्नकाल आज्ञा चक्र के मध्य में, चन्द्रमण्डल में निवास करने वाली, चन्द्रमा के समान कान्ति काली, शक्तिबीज स्वरूपा, हाथ में धनुष, बाण, पाश एवं अंकुश धारण किये हुये, ह, क्ष, अक्षरमयी, स्फटिक के आभूषणों से युक्त, नित्याओं से घिरी हुई भवगती त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करे।

तारादि देवता की सन्ध्या में ह्रीं हंसः से सूर्य को अर्घ्य देकर ताम्रादि पांत्र में रक्तचन्दन, अपराजिता पुष्प और आक के पुष्प डालकर **उद्यदादित्यमण्डलमध्यवर्त्तिन्यै नित्यचैतन्योदितायै श्रीमदेकजटायै स्वाहा** से अर्घ्य प्रदान करे और गायत्री का जप करे।

नीलतन्त्र में कहा गया है **उद्यदादित्यमण्डलवर्तिन्यै नित्यचैतन्योदितायै श्रीमदेकजटायै स्वाहा** यह मन्त्र है। कालिका के मन्त्र में **एकजटा** के स्थान पर **कालिका** शब्द का प्रयोग करे। तत्पश्चात् सूर्यमण्डल में इष्टदेवता का ध्यान कर मूत्रमन्त्र का यथाशक्ति जप कर संहारमुद्रा से अपने हृदय में देवता को लाकर तीर्थ नमस्कार पूर्वक पूजा स्थान में जाय। इसके पश्चात् दीक्षापद्धति के क्रम के अनुसार सामान्यर्घ्य स्थापन से लेकर आसनोपवेश कर कार्य कर हाथ जोड़ कर बायें भाग में **ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परापरगुरुभ्यो नमः** से, दाहिनी ओर **ॐ गणेशाय नमः** से आराध्य देवता को प्रणाम करे। फिर **फट्** मन्त्र द्वारा कर शोधन करते हुये ऊपर को तीन बार ताली बजाकर छोटिका (चुटकी) मुद्रा से दश दिग्बन्धन करे और **रं** मन्त्र से जल धारा द्वारा द्वारा अपने शरीर को घेरे हुए अग्निभित्ति की चिन्ता करे। इसके पश्चात् भूतशुद्धि करे। यथा—अपनी गोद में दोनो हाथों को उत्तान भाव से रखकर **सोऽहं** मन्त्र से हृदय में स्थित प्रदीपकलिकाकार जीवात्मा को मूलाधारस्थित कुलकुण्डलिनी से संयुक्त कर उसके द्वारा सुषुम्णामार्ग से मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध औरआज्ञा इन षट्चक्रों का भेदन करते हुए उसे सिरस्थित अधोमुख सहस्रदल कमल की कर्णिका मे परम शिव से संयोजित कर यह भावना करे कि पृथिवी, जल, तेज, वायु आकाश-यह पञ्चभूत, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द यह पाँच तन्मात्रायें, नासिका जिह्वा, चक्षु (नेत्र), त्वचा और कान यह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, वाक्, हाथ, पैर, गुह्य, उपस्थ यह पाँच कर्मेन्द्रिय और प्रकृति, मन,

बुद्धि, अहङ्कार यह सब चौबीसों तत्त्व उसमें विलीन है। उक्त भावना के साथ धूम्रवर्ण वायुबीज **'यं'** का बायीं नासिका में ध्यान कर उस वायु बीज का सोलह बार जप करते हुए वायु से शरीर को भरे फिर दोनो नासिका छिद्रों को बन्द कर उक्त बीज का चौंसठ बार जप करते हुए कुम्भक करे और बायीं कोख में स्थित काले रंग के पाप पुरुष सहित देह को सुख कर उक्त बीज का बत्तीस बार जप करते हुए दाहिनी नासिका से वायु को निकाल दे। तदुपरान्त दाहिनी नासिका में रक्त वर्ण अग्नि बीज **रं** का ध्यान कर उस बीज का सोलह बार जप करते हुए वायु से शरीर को पूर्ण करे और तब दोनो नासिका का छिद्रों को बन्द कर उक्त बीज का चौंसठ बार जप करते हुए कुम्भक करे तथा मूलाधार में स्थित अग्नि द्वारा कृष्णवर्ण के पापपुरुष सहित शरीर को भस्मीभूत करते हुए उक्तबीज का बत्तीस बार जप करते हुए बायीं नासिका से भस्मसहित वायु का रेचन कर दे अर्थात् निकाल दे। इसके पश्चात् शुक्लवर्ण के चन्द्रबीज **ठं** का बायीं नासिका में ध्यान कर इस बीज के १६ (सोलह) बार जप से ललाट प्रदेश में चन्द्रमा को लाकर दोनो नासिका छिद्रों को बन्द कर वरुणबीज **वं** के ६४ (चौंसठ) बार जप से ललाट में स्थित चन्द्रमा से टपकने वाले मातृकावर्णमय अमृत द्वारा समस्त नवीन शरीर की सृष्टि कर दाहिने नासिका छिद्र से वायु को निकाल दे। यह सम्पूर्ण वर्णन **गौतमीय तन्त्र** मे है।

गौतीमय तन्त्र मे कहा गया है कि **सोऽहम्** मन्त्र से सुषुम्णा नाड़ी द्वारा जीवात्मा को सिर मे स्थित सहस्र दल कमल में परमात्मा से साधक संयुक्त करे। इसके उपरान्त छः बिन्दुओं से चिह्नित धूम्रवर्ण के वायुबीज **यं** का १६ (सोलह) बार जप कर इड़ा से पूरक, इसी बीज अर्थात् **यं** का ६४ बार जप कर सुषुम्णा से वायु का निरोध और ३२ (बत्तीस) बार जप कर पिङ्गला से उस रूकी हुई वायु को निकाल दे। पिंगला नाड़ी से रक्तवर्ण के त्रिकोणाकार स्वस्तिकयुक्त वह्निबीज **रं** का सोलह बार जप करते हुए पूरक, इसी बीज **रं** का चौसठ बार जप कर वायु को रोक कर बायीं ओर स्थित पाप पुरुष को जलाये। पाप पुरुष का ध्यान मूल में लिखा है। मूलाधार से उठने वाली अग्नि से इस पाप पुरुष को जला कर **यं** बीज का ३२ (बत्तीस) बार जप करते हुए भस्म सहित वायु को निकाल दे। इसके पश्चात् बायीं नाड़ी से कुन्देन्दु कान्तियुक्त चन्द्रबीज **ठं** को ललाट चन्द्र में संयुक्त करते हुए उसके सोलह (१६) बार जप से और वरुण बीज **वं** के चौंसठ बार जप से मातृका वर्णमय अमृतवर्षा द्वारा नवीन शरीर का निर्माण कर **लं** बीज के ३२ (बत्तीस) बार जप से उस शरीर को सुदृढ़ करे। इसके पश्चात् **हंसः** मन्त्र से जीवात्मा को हृदय में लाकर कुण्डलिनी और पृथिवी आदि २४ तत्त्वों के पुनः यथा स्थान स्थापित करे।

शक्ति के विषय में **हंसः** मन्त्र से जीवात्मादि को परमशिव में संयोजित कर **सोऽहं** मन्त्र से उन्हे यथास्थान स्थापित करे।

शूद्र के लिए **वाराही तन्त्र** में लिखा है कि भूतशुद्धि की क्रिया में शूद्र **हंस** मन्त्र का कभी भी स्मरण न करे अन्यथा वह नरक गामी होगा और उसकी दीक्षा भी विफल हो जाएगी।

शारदा तिलक में लिखा है कि जीव को तेजोमय ध्यान कर **नमः** मन्त्र का उच्चारण करे **विशुद्धेश्वरतन्त्र मे भूतशुद्धि की पद्धति** व व्युत्पद्धि शरीर के आकार से परिणत पृथिवी आदि पाँचभूत जिस क्रिया से शुद्ध होकर अव्यय ब्रह्म से संयुक्त होते हैं उसी का नाम भूतशुद्धि है।

वाराही तन्त्र मे कहा गया है कि साधक मूलाधार से ब्रह्ममार्ग द्वारा जीव को ले जाकर **हंसः** मन्त्र से पुष्कर स्थान से परमात्मा से संयुक्त करे। ब्रह्ममार्ग सुषुम्णा को कहा जाता है।

त्रिपुरासारसमुच्चाय के अनुसार साधक अपने हृदय पर हाथ रखकर **आं सोऽहं** मन्त्र से प्राणप्रतिष्ठा करे।

ज्ञानार्णव तन्त्र में लिखा है प्राणप्रतिष्ठा के पश्चात् जीव को देह में नियोजित करे। मुखवृत्त **(आ)** का उच्चारण कर **हंसः** का विपरीत **सोऽहं** उच्चारित करे। हे परमेशानि ! इस प्रकार **आं सोऽहं** यह त्र्यक्षरी विद्या होती है। इस प्राण प्रतिष्ठा मन्त्र से साधक समस्त कार्य करे। हे देवि ! इस प्रकार उसी उपर्युक्त विधि से अपना शरीर स्थिर करे।

पुरश्चरण चन्द्रिका में भगवान् शिव कहते है अब अन्य प्रकार से भूतशुद्धि की विधि कहता हूँ। धर्मस्वरूप कन्द से उत्पन्न, ज्ञानरूपी नाल में शोभित अणिमादि ऐश्वर्यस्वरूप अष्टदलों से युक्त, वैराग्यस्वरूप कर्णिका विशेष अपने हृदय कमल को प्रणव (ॐ) द्वारा प्रकाशित ध्यान करते हुए उसी हृदय कमल की कर्णिका के ऊपर जीवात्मा का और मूलाधार में कुण्डली का ध्यान कर सुषुम्ना मार्ग से परमात्मा के साथ जीवात्मा को संयुक्त करे।

मातृका न्यास

इसके पश्चात् साधक मातृका न्यास करे। मातृका न्यास के दो स्वरूप हैं। १. अन्तर्मातृका न्यास २. बहिर्मातृका न्यास।

अन्तर्मातृका न्यास इस प्रकार करे—

विनियोग **अस्य मातृकामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दो मातृकासरस्वती देवता, हलो बीजानि, स्वराः शक्तयो, मातृकान्यासे विनियोगः।**

ऋष्यादि न्यास **शिरसि ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे ॐ गायत्रीछन्दसे**

नमः । हृदि ॐ मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः । गुह्ये व्यञ्जनेभ्यो बीजेभ्यो नमः पादयोः । ॐ स्वरेभ्यः शक्तिभ्यः नमः ।

कराङ्गन्यास–**अं कं खं गं घं ङं आं अंगुष्ठाभ्यां नमः । इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्या स्वाहा । उं टं ठं डं ढं णं ऊं, मध्यमाभ्यां वषट् । एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुं । ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।**

षडङ्गन्यास–**अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः । इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा । उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट् । एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुं । ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट् । अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः अस्त्राय फट् ।**

इसके पश्चात् साधक मातृकाक्षर की वन्दना करे और मातृका देवी का ध्यान करे । यह दोनों मूल में लिखे हैं वहीं पर देखें । **ज्ञानार्णव तन्त्र** एवं **अगतस्य संहिता** में अन्तर्मातृका न्यास की सम्पूर्ण विधि कही गयी है । यथा–

मातृकान्यास–कण्ठ स्थित षोडश पद्मदल के १६ दलों में–**अं नमः आं नमः, इं नमः, ईं नमः** इत्यादि १६ स्वरों से ।

हृदय के द्वादशदलपद्म में **कं नमः, खं नमः, गं नमः, घं नमः.......ठं नमः** इत्यादि १२ वर्णों से

नाभिमूल के दशदलपद्म में **डं नमः ढं नमः णं नमः........फं नमः** इत्यादि १० वर्णों से

लिंगमूल के षड़दलपद्म मे **बं नमः भं नमः मं नमः......लं नमः** इत्यादि ६ वर्णों से

मूलाधार के चतुर्दल पद्म में **वं नमः, शं नमः, षं नमः, सं नमः** से और भ्रूमध्य के द्विदलपद्म मे **हं नमः क्षं नमः** से न्यास करे।

अगस्त्यसंहिता मे लिखा है कि पद्म के एक एक दल में एक एक वर्ण का न्यास करे । विष्णु के विषय में आधारादि मस्तक तक षट् दलों में निम्न प्रकार वर्ण न्यास करे–

मूलाधार में स्थित सुवर्णाभ चतुर्दल कमल मे–**वं, शं, षं, सं**

लिंग मूल में स्थित विद्युत् दाम के षड़दल स्वाधिष्ठान मे **बं भं मं यं रं लं**

नाभि के मूल में स्थित नीलमेघ के समान प्रभावाले दशदल मणिपूर मे **डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं**

हृदय में स्थित प्रवाल के समान प्रभावाले द्वादशदल अनाहत में **कं खं गं घं ङ़ चं छं जं झं ञं टं ठं**

कण्ठ स्थित धूम्रवर्ण षोडशदल विशुद्ध में–**अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः**

भ्रूमध्य स्थित चन्द्रवर्ण द्विदल आज्ञा पद्म मे–**हं क्षं ।**

बाह्यमातृकान्यास

अन्तर्मातृकान्यास करने के उपरान्त बाह्यमातृकान्यास करे। साधक सर्वप्रथम बाह्यमातृका देवी का ध्यान करे। वाग्देवी का सम्पूर्ण शरीर-मुख भुजा, मध्य, वक्षस्थल आदि पचास वर्णाक्षरों से संघटित है। उनका केश पाश चन्द्रकला से प्रकाशमान है, उनके स्तन सुडौल मांसल एवं ऊँचे है। हाथो में मुद्रा, अक्षमाला, अमृत से पूर्ण कलश और पुस्तक शोभयमान है। तीन नेत्रों वाली देवी की प्रभा चतुर्दिक, व्याप्त है। ऐसी वाग्देवता का मै आश्रय ग्रहण करता हूँ।

तन्त्र में न्यास विषयक अंगुलि नियम–ललाट में अनामिका और मध्यमा से मुख में तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से, नेत्रों में वृद्धा और अनामिका से, कानों में अंगुष्ठ से नासिका छिद्रों में कनिष्ठा और अंगुष्ठ से, गण्डस्थलों में तर्जनी मध्यमा और अनामिका से, ओष्ठों में मध्यमा से, दन्तपंक्तियों में अनामिका से मस्तक में मध्यमा से, मुख में अनामिका और मध्यमा से, नाभि में कनिष्ठा अनामा, मध्यमा और अंगुष्ठ से, उदर मे समस्त अंगुलियों से, वक्ष, अंसद्वय, ककुत् स्थल, हृदय से हाथ तक, हृदय से पैर तक हृदय से उदर तक और हृदय से मुख तक के स्थानों में हथेली से न्यास करे। ये ही मातृका मुद्राएं हैं। इन्हे जाने विना जो भी साधक न्यास करता है उसका न्यास व्यर्थ होता है।

गौतमीय तन्त्र के अनुसार न्यास क्रम इस प्रकार है–सर्वत्र आदि मे ॐ और अन्त में **नमः** लगाकर न्यास करे। यथा **ॐ अं नमः ललाटे, आं नमः मुखे वृत्ते, इं ईं चक्षुषोः, उं ऊं कर्णयो, ऋं ॠं नासयोः, लृं लॄं गण्डयोः, एं ओष्ठे, ऐं अधरे, ओं ऊर्ध्वदन्ते, औं अधोदन्ते, अं ब्रह्मरन्ध्रे, अः मुखे। कं दक्षबाहुमूले, खं कूर्परि, गं मणिबन्धे, घं अगुलिमूले, ङ अंगुल्यग्रे। चं बामबाहुमूले, छं कूपरि, जं मणिबन्धे, झं अंगुलिमूले, ञ अंगुल्यग्रे,। एवं टं ठं डं ढं णं दक्षपादमूल सन्ध्यग्रकेषु। एवं तं थं दं धं नं वामपादमूलसन्ध्यग्रकेषु। पं दक्षपार्श्वे, फं वामपार्श्वे, बं पृष्ठे, भं नाभौ, मं उदरे, यं हृदि, रं दक्षबाहुमूले, लं ककुदि, वं वामबाहुमूले, शं हृदादिदक्षकरे, सं हृदादिदक्षपादे, हं हृदादिवामपादे, लं हृदाद्युदरे, क्षं हृदादिमुखे।**

साधक अब संहारमातृका न्यास करे। सर्वप्रथम ध्यान करे जो अपने चारों हाथों में अक्षमाला, हिरण का शिशु, मृदङ्ग और पुस्तक लिए हैं, तीन नेत्र हैं, ललाट पर अर्द्धचन्द्र है, लाल रंग के कमल पर आसीन पयोधरों (स्तनों) के भार से झुकी हुई वर्णेश्वरी देवी को मै प्रणाम करता हूँ।

ध्यान करने के उपरान्त **हृदादि मुखे क्षं नमः** इस क्रम से न्यास करे।

मातृका वर्ण चार प्रकार के हैं ? 'केवल' न्यास से विद्या, 'विन्दुविसर्गयुक्त' न्यास से भोग 'विसर्गयुक्त' न्यास से पुत्र और 'विन्दुयुक्त' न्यास से वित्त की प्राप्ति होती है।

विशुद्धेश्वरतन्त्र मे लिखा है कि वाक्‌सिद्धि के वाग् बीज ऐं श्री की वृद्धि के लिए श्रीबीज श्रीं सर्वसिद्धि के लिए नमः और लोकवशीकरण के लिए कामबीज क्लीं आदि में लगाकर न्यास करे। श्रीकण्ठ बीज 'अः आदि में लगाकर न्यास करने से समस्त मन्त्र प्रसन्न होते हैं।

नवरत्नेश्वर में श्रीविद्या विषय में लिखा है कि आदि में वाग्बीज ऐं और अन्त में नमः लगाकर (अर्थात् ऐं अं नमः) इत्यादि रूप से पचास वर्णों द्वारा न्यास करे। इससे अणिमादि अष्टसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

इसकी नित्यता के विषय में **यामल** में लिखा है कि भूत शुद्धि और मातृका न्यास को छोड़कर जो व्यक्ति पूजनकार्य करता है उसकी वह पूजा भक्तिहीन पूजा के समान निष्फल होती है।

गौतमीय तन्त्र में सामान्य न्यास के विषय में अंगुलिनियम यह लिखा है कि मन ही मन, पुष्प द्वारा या अंगुष्ठ और अनामिका से न्यास करे अथवा न्यास विफल होता है। साधारण न्यास में ही इस नियम का पालन करना चाहिए, विशेष न्यास में नही। श्यामादि विद्या विषय में मातृका न्यास में जो कुछ विशेष क्रम है वह उनके प्रकरण में आगे दिया गया है।

प्राणायाम

ज्ञानार्णवतन्त्र में प्राणायाम के विषय में यह अंगुलि नियम लिखा है प्राणायाम के नियम से भूतशुद्धि करे। कनिष्ठा, अनामिका और अंगूठे द्वारा बायें एवं दाहिने नासिका छिद्र को धारण करने का नाम प्राणायाम है। इसमे तर्जनी एवं मध्यमा अंगुलियों का प्रयोग नहीं किया जाता है।

प्राणायाम दो प्रकार का कहा गया है १. सगर्भ और २. निगर्भ। मन्त्रजपपूर्वक प्राणायाम करना 'सभर्ग' और मात्रा द्वारा किया जाने वाला प्राणायाम निगर्भ कहलाता है।

बायीं जांघ पर हाथ फेरने में जितना समय लगता है उसी अवधि को मात्रा कहते है। वर्ण के उच्चरण में इसी मात्रा का उपयोग होता है।

मूलमन्त्र, बीजमन्त्र अथवा प्रणव (ॐ) द्वारा सोलह बार जप करता हुआ बायीं नासिका छिद्र को वायु से भरे।

कालीहृदय में कहा गया है कि कही गयी विधि के अनुसार मूलमन्त्र बीजमन्त्र अथवा प्रणव के द्वारा सुधी साधक प्राणायामत्रय करे। इसके पश्चात् चौंसठ बार जप करता हुआ कुम्भक कर बत्तीस बार जप करता हुआ दाहिनी नासिका छिद्र से वायु को निकाल दे। तत्पश्चात् सोलह बार जप से दाहिनी नासिका को वायु से भरकर चौंसठ बार जप द्वारा कुम्भक कर बत्तीस बार जप से बायीं नासिका से वायु को निकाल दे। पुनः सोलह बार जप द्वारा बायीं नासिका से पूरक, चौंसठ बार जप से कुम्भक और बत्तीस बार जप द्वारा दाहिनी नासिका से निकाल दे।

गौतमीय तन्त्र के अनुसार चार बार जप से पूरक, सोलह बार जप द्वारा कुम्भक और आठ बार जप से रेचन इस क्रम से भी प्राणायाम होता है अथवा एक बार जप से पूरक, चार बार जप से कुम्भक और दो बार जप से रेचन करे।

साधक पूजादि कर्मों मे प्राणायाम अवश्य ही करे। विना प्राणायाम के समस्त शुभ कर्मों में और पूजन में अधिकार नही होता है। इसलिय समस्त शुभ अशुभ कर्मों में प्राणायाम करे।

पीठ न्यास

साधक प्राणायाम के पश्चात् पीठ न्यास करे। आगे निर्दिष्ट अंगो पर हाथ रखकर उनके लिखे मन्त्रों से न्यास करे। समस्त मन्त्रों के आदि में ॐ और अन्त में नमः अवश्य जोड़ लें। यथा–

हृदि ॐ आधारशक्तये नमः, प्रकृतये, कूर्माय, अनन्ताय, पृथिव्यै, क्षीरसमुद्राय, श्वेतद्वीपाय, मणिमण्डपाय, कल्पवृक्षाय, मणिवेदिकायै, रत्नसिंहासनाय।

दक्षिणस्कन्धे–धर्माय, वामस्कन्धे ज्ञानाय, वामोरौ वैराग्याय, दक्षिणोरौ ऐश्वर्याय, मुखे अधर्माय, वामपार्श्वे अज्ञानाय, नाभौ अवैराग्याय, दक्षिणपार्श्वे अनैश्वर्याय। सर्वत्र ॐ आदि में तथा नमः अन्त में लगायें।

शारदातिलक के अनुसार प्रदक्षिण क्रम के अनुसार दाहिने कन्धे से लेकर बायें कन्धे तथा बायें उरु से लेकर दाहिने उरु पर्यन्त क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य का न्यास करे। पुनः मुख, वाम पार्श्व, नाभि तथा अधर्मादि का न्यास करे।

पुनः हृदि **ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ अँ सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, ॐ उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः, रं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, सं सत्त्वाय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने, अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने** । जिन मन्त्रों के आदि में ॐ तथा अन्त में नमः न लगा हो वहाँ पर इन्हे लगा ले । इस पर न्यास कर हृदयकमल के पूर्वादि केशरों में उस उस देवता के प्रकरण में कथित पीठशक्तियों का न्यास कर मध्य में पीठमन्त्र का न्यास करे ।

शारदातिलक के अनुसार हृदय में वक्ष्यमाण अनन्त नामक पद्म है जिसमें सूर्य चन्द्रमा तथा पावक इन तीन मण्डलों का निवास है । इन तीन मण्डलों मे नाम के आदि अक्षर युक्त पद का सन्निवेश कर क्रमशः उनकी कलाओं का भी सन्निवेश करे यथा–'सूं सूर्यमण्डलं न्यसामि' ऐसा कहकर सूर्यमण्डल का निवेश कर बाद में उनकी कलाओं का निवेश करे । इसी प्रकार सोममण्डल और सोमकला का तथा वह्निमण्डल एवं वह्निकला का निवेश करे ।

ऋष्यादिन्यास

जिसने सर्वप्रथम भगवान् महेश्वर के मुख से मन्त्र सुनकर तपस्या के द्वारा उसकी सिद्धि की वही उस मन्त्र का **ऋषि है** । उसी ऋषि को मन्त्र का आदि गुरु मानकर मस्तक में उसका न्यास किया जाता है । सभी प्रकार से मन्त्र तत्त्व को आच्छादित रखने की विधि को **छन्द** कहते हैं । छन्द सभी अक्षरों व पदों में घटित होता है और अक्षर तथा पद मुख से उत्पन्न होते हैं । इसलिए छन्द का न्यास मुख में किया जाता है । समस्त प्राणियों को सभी कार्यों की प्रेरणा देने वाला उनके हृदय में स्थित **देवता** है । इसलिए उसका न्यास हृदय कमल मे ही करना होता है । **ऋषि** और **छन्द** का ज्ञान न होने पर मन्त्र का फल नही प्राप्त होता है । मन्त्र का **विनियोग** न जानते हुए उसका प्रयोग करने से मन्त्र दुर्बल हो जाता है ।

तन्त्रान्तर मे कहा गया है कि मस्तक में ऋषि का, मुख में छन्द का, हृदय में देवता का, गुह्य प्रदेश में बीज का, दोनों पैरों से शक्ति का और सर्वाङ्ग में कीलक का न्यास करे । इसके पश्चात् उस मन्त्र से सम्बन्धित न्यासों को करे ।

कुलार्णव में कहा गया है कि जो साधक आगम में कहे गये विधान से नित्य न्यास करता है वह देवताभाव को प्राप्त करता है और उसे मन्त्र सिद्धि होती है । जो साधक न्यासरूप कवच से आच्छादित होकर देवता के मन्त्र का जप करता है उसके दर्शनमात्र

से ही विघ्न दूर हो जाते हैं और जो अज्ञान वश न्यासादि कर्म नही करता है उसे अनेक प्रकार के विघ्नों का सामना करना पड़ता है ।

षडङ्गन्यास

षडङ्गन्यासे अंगुलिनियम षडङ्गन्यास में अंगुलिनियम इस प्रकार है-तीन दो, एक, दस, तीन, और दो अंगुलियों से क्रमशः हृदयादि षडङ्गो में न्यास करे यह साधारण न्यास है ।

यामल मे लिखा है कि मध्यमा, अनामिका और तर्जनी से हृदय मे, मध्यमा और तर्जनी से मस्तक में, अंगुष्ठ द्वारा शिखास्थान मे, सभी अंगुलियों से कवच में, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से नेत्र में तथा तर्जनी और मध्यमा द्वारा करतल में न्यास करे। यही अंगन्यास है । यदि देवता त्रिनेत्र हो तो तर्जनी, मध्यमा, अनामिका द्वारा और यदि द्विनेत्र हो, तो तर्जनी तथा मध्यमा द्वारा उस स्थान में न्यास करें । **हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय हुं, नेत्रत्रयाय वौषट्, अस्त्राय फट्** इस क्रम से षडङ्गन्यास करे ।

शारदातिलक में लिखा है कि जहाँ **पञ्चाङ्गन्यास** कहा हो वहाँ नेत्र को छोड़कर शेष पाँच स्थानों में न्यास करे ।

विष्णु की साधना में अंगुष्ठहीन सम्पूर्ण करतल से हृदय और मस्तक में न्यास करे तथा अंगुष्ठमध्यगत मुष्टि द्वारा शिखा में, दोनों हाथों की सभी अंगुलियों से कवच मे और तर्जनी एवं मध्यमा द्वारा नेत्र में न्यास कर नाराच मुद्रा द्वारा दोनो बाहुमुष्टि ऊपर उठाकर अंगुष्ठ और तर्जनी से मस्तक के चारों ओर करतल मे ध्वनि करे ।

ब्रह्मयामल मे कहा गया है कि जहाँ अङ्गन्यास के मन्त्र निर्दिष्ट न हों वहाँ देवता के नाम के आदि अक्षर द्वारा न्यास करे । कल्प के अनुसार मुद्राएं दिखाकर ध्यान और उसके पश्चात् मानस पूजा करते हुए शंख का स्थापन करे ।

सनत्कुमार तन्त्र में लिखा है कि मानसपूजा किये विना बाह्यपूजा नही करना चाहिए । (सूर्य और शिव की पूजा में शंखपात्र में विशेषार्घ्यस्थापन निषिद्ध है) इसके पश्चात् अपने शरीर में धर्मादि की पूजा करे ।

शारदातिलक में लिखा है कि पीठन्यासक्रम से पुष्पादि के द्वारा 'देवता शरीर में धर्म से लेकर उस देवता की पीठशक्ति तक की पूजा करे । फिर उसके ऊपर देवता की पूजा करे ।

क्रम दीपिका मे वर्णन है कि पीठ के उत्तर भाग मे वायुकोण से ईशान कोण तक गुरुपंक्ति की पूजा करे। यथा–**ॐ गुरुभ्यो नमः । ॐ परमगुरुभ्यो नमः । ॐ परापरगुरुभ्यो नमः । ॐ परमेष्ठि गुरुभ्यो नमः ।** इसके पश्चात् पीठपूजा करे। समस्त मन्त्रों के आदि में **ॐ** और अन्त में **नमः** का योग कर ले।

पीठमध्ये–**ॐ आधारशक्तये नमः, प्रकृतये, कूर्माय, शेषाय, पृथिव्यै, क्षीरसमुद्राय, श्वेतद्वीपाय, मणिमण्डपाय, कल्पवृक्षाय, मणिवेदिकायै, रत्नसिंहासनाय ।**

अग्निकोणे–**धर्माय** निर्ऋतिवाय्वीशानेषु–**ज्ञानाय, वैराग्याय, ऐश्वर्याय ।** पूर्वादिचतुर्दिक्षु–**अर्धमाय, अज्ञानाय, अवैराग्याय, अनैश्वर्याय ।** मध्ये–**अनन्ताय पद्माय, अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने, उं सोम मण्डलाय षोडशकलात्मने, रं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने, सं सत्वाय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने, अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने ।**

तदुपरान्त पूर्वादि केशरों में कल्प में कही गयी पीठशक्तियों की पूजा कर मध्य में पीठमन्त्र की पूजा करे।

यामल मे पूर्वादि दिशाओं के विषय में लिखा है कि पूज्य और पूजक का मध्यस्थान पूर्व, उसका दक्षिण दक्षिण, उसका उत्तर उत्तर और उसके पीछे का भाग पश्चिम समझे।

शाम्भवतन्त्र में लिखा है कि अपने सम्मुख भाग को पूर्व, देवता के पृष्ठ देश को पश्चिम, वामभाग को दक्षिण और दक्षिणभाग को उत्तर माने।

भावचूड़ामणि में लिखा है कि साधक की इच्छानुसार देवता समस्त दिशाओं को मुख कर स्थिर रहता है। रात्रि में साधक उत्तर की ओर मुख होकर देवकार्य कर सकता है। शिवपूजा सदैव उत्तर मुख होकर करे।

वाराही तन्त्र में विष्णु विषय में लिखा है कि स्नान कर श्वेत वस्त्र पहन कर, आचमन कर पूर्व की ओर मुख करके देवकार्य करे।

मत्स्यसूक्त मे **यन्त्रांकन** के विषय में कहा गया है कि जहाँ यन्त्र का उल्लेख न हो वहाँ षट्कोण विशेष कर्णिका अंकित कर उसके बाहर अष्टदल पद्म और चार द्वारों से युक्त यन्त्र का निर्माण करे। पुन: ध्यान कर विधि के अनुसार आवाहन से लेकर प्राणप्रतिष्ठा तक समस्त कार्य करें।

आगम कल्पद्रुम मे आवाहन के विषय में लिखा है कि साधक मूलमन्त्र का उच्चारण कर सुषुम्णापथ से चैतन्यरूप तेज को अपने स्थान से लाकर नासिका छिद्र द्वारा

निकालते हुए अपने करस्थित मातृकापद्म मे पुष्पराशि के ऊपर संयोजित करे। तदुपरान्त यन्त्र के मध्य में इस तेज की स्थापना कर आवाहन करे। इसके पश्चात् षोडशोपचार से पूजन करें। **१. आसन, २. स्वागतप्रश्न, ३. पाद्य, ४. अर्घ्य, ५. आचमनीय, ६. मधुपर्क, ७. आचमनीय, ८. स्नानीय, ९. वस्त्र, १०. अलङ्कार, ११. गन्ध, १२. पुष्प १३. धूप, १४. दीप, १५. नैवेद्य, १६. नमस्कार** इनको षोडशोपचार कहते हैं। षोडशो पचार के अभाव में **पञ्चोपचार १. गन्ध, २. पुष्प, ३. धूप, ४. दीप, ५. नैवेद्य** से पूजा करे।

विष्णु विषय मे **१. अर्घ्य, २. पाद्य, ३. आचमनीय, ४. मधुपर्क, ५. स्नानीय, ६. गन्ध, ७. पुष्प, ८. धूप, ९. दीप, १०. नैवेद्य** ये दश उपचार कहे गये हैं। देवता के मूलमन्त्र से पुष्प तक उपचार प्रदान कर षडङ्ग मन्त्रों से पूजा करे।

देवता को पुष्प प्रदान करने में विशेष नियम यह है कि पुष्प, पत्र और फल को नीचे की ओर मुख करके न दे। फल, पुष्प और पत्र का मुख नीचे करके प्रदान करने से साधक को दुःख प्राप्त होता है किन्तु पुष्पांञ्जलि प्रदान करने मे इस नियम का पालन करने की आवश्यकता नहीं है।

सर्वप्रथम मूलमन्त्र का उच्चारण करे। फिर द्रव्य का नाम ले और तदुपरान्त **अमुक देवतायै** कहे। पाद्य में **नमः,** अर्घ्य में **स्वाहा** गन्ध में नमः पुष्प में **वौषट्** अन्य मे **नमः** इत्यादि की योजना कर उपचार प्रदान करे। यथा-**मूलं एतत् पाद्यं अमुकदेवतायै नमः।**

इसके पश्चात् देवता के मस्तक, हृदय, गुह्य, पाद और सर्वाङ्ग में मूलमन्त्र से पुष्पाञ्जलियाँ प्रदान कर पद्धति के अनुसार आवरण देवता की पूजा करे। तत् पश्चात् धूप एवं दीप प्रदान करे। इसके लिए सर्वप्रथम **ॐ जयध्वनि मन्त्रमातः स्वाहा** मन्त्र से घण्टा की पूजा कर बाएँ हाथ ये घण्टा को बजाते हुए धूपपात्र को नीचे की ओर मुख कर धूप और दीपपात्र को ऊर्ध्वमुख कर उस मन्त्र से दीप प्रदान करे। इसके बाद मूलमन्त्र से तीन पुष्पाञ्जलियाँ प्रदान कर नैवेद्य लाकर **फट्** मन्त्र से जल से उसका अभ्युक्षण कर और चक्रमुद्रा से संरक्षण कर नैवेद्य के ऊपर मूलमन्त्र का आठ बार जप कर धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे। फिर मूलमन्त्र से नैवेद्य को निवेदित करे। निवेदनीय समस्त द्रव्यों को अर्घ्यपात्र के जल से प्रोक्षित कर प्रदान करे। अतः समस्त द्रव्य अर्घ्य जल से उत्सर्ग करते हुए प्रदान करे। तदुपरान्त पुनराचमनीय देकर पेयजल और ताम्बूलादि प्रदान करे। तदुपरान्त परिवार सहित देवता का गन्धादि से पुनः पूजन कर नृत्यगीतौदि द्वारा देवता को सन्तुष्ट करते हुए **जय जय** की ध्वनि कर विशेषार्घ्य देकर पुष्पाञ्जलि प्रदान करें।

अब आत्म समर्पण करे। इसका नियम इस प्रकार है कि हाथ के कोष में गण्डूष परिमित जल लेकर इस मन्त्र से समर्पित करे **ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा मां मदीयं सकलं सम्यगमुकदेवतायै समर्पये ॐ तत्सत्**। यह भी मत है कि नमस्कार के बाद आत्मसर्मपण करे।

इसके पश्चात् १००८ या १०८ बार मूलमन्त्र का जप कर निम्न मन्त्र से जप का समर्पण करे–

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव! त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थिते।।

यहाँ पर साधक ध्यान दें कि जप समर्पण में **गोप्ता** के स्थान पर **गोप्त्री** और **देव** के स्थान पर **देवि** का प्रयोग करे।

इसके पश्चात् स्तव पाठ कर '**अष्टाङ्ग प्रणाम**' करे। पैरों, हाथों, घुटनों और वक्ष, मस्तक, नेत्र, वाक्य, त्वया तथा मन इन आठ अंगो से किए जाने वाले प्रणाम को **अष्टाङ्गप्रणाम** कहते हैं। घुटनों, भुजाओं, मस्तक, वाक्य और नेत्र से पञ्चाङ्ग प्रणाम होता है। पूजनादि कार्यों में यही दोनो प्रशस्त हैं। वेद के ज्ञाता ब्राह्मण को भूमि के दान करने से जो फल प्राप्त होता है, भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा कर देवता को प्रणाम करने से वही फल प्राप्त होता है।

विश्वसार तन्त्र में लिखा है कि हाथ में शङ्ख लेकर सर्वत्र देवता की प्रदक्षिणा करे।

'**यामल**' में लिखा है कि शक्ति देवता को त्रिकोणाकार नमस्कार करे (देवता की दक्षिण दिशा से वायु कोण तक जाकर फिर दक्षिण की ओर आ जाये।) शिव को अर्द्धचन्द्राकार प्रदक्षिणा कर नमस्कार करे। सोम सूत्र (जल निकलने का स्थान) का उल्लङ्घन न करे। अन्यान्य देवताओं के विषय में यह नियम है कि दाहिना हाथ फैलाकर, विनम्र होकर दक्षिण पार्श्व को दिखाते हुए तीन बार देवता का वेष्टन कर प्रदक्षिणा करे। जो मनुष्य देवता को एक हाथ से प्रणाम करता है अथवा एक बार प्रदक्षिणा करता है या असमय में देवता का दर्शन करता है उसका पूर्वसञ्चित पुण्य नष्ट हो जाता है।

विजर्सन–इसके पश्चात् यह ध्यान करे कि देवता के शरीर में आवरण देवता विलीन हो रहे हैं। तदुपरान्त **क्षमस्व** कहकर विसर्जन करे। इसके लिए संहारमुद्रा से एक पुष्प उठाकर उसे सूँघते हुए उस पुष्पसहित देवता के तेज को अपने हृदय में लाए।

पुरश्चरणचन्द्रिका नामक ग्रन्थ में लिखा है कि **क्षमस्व** कहकर तीन बार व्यापक

न्यास करे अर्थात् विसर्जन के बाद व्यापक न्यास करे। पुष्प को सूंघते हुए सुषुम्णा नाड़ी से देवता को ले जाकर अपने हृदय कमल में स्थापित करे।

इसके पश्चात् ईशानकोण में त्रिकोणमण्डल बनाकर उसमे निर्माल्य अर्पण करते हुए विष्णु विषय में–**ॐ विष्वक्सेनाय नमः** शक्तिविषये में–**ॐ शेषिकायै नमः,** शिव विषय में–**ॐ चण्डेश्वराय नमः** सूर्य विषय में–**ॐ तेजश्चण्डाय नमः,** गणेश विषय में–**ॐ उच्छिष्ट गणेशाय नमः** कालिकादि विषय में–**ॐ उच्छिष्टचाण्डालिन्यै नमः** कहकर 'निर्माल्य' पुष्पों से ही पूजा करे। इसके पश्चात् चरणोदकपानपूर्वक कुछ नैवेद्य ग्रहण करे अथवा योग्य व्यक्ति को कुछ नैवेद्य प्रदान कर सुख से विहार करे।

मत्स्यसूक्त मे लिखा है कि मत्स्य, मांस आदि कोई भी वस्तु देवता को निवेदन किए बिना नही खाना चाहिए। विना इष्टदेवता को निवेदित किया हुआ अन्य विष्ठा के समान और जलादि पेय पदार्थ मूत्र के समान समझना चाहिए।

भैरव तन्त्र मे कहा गया है कि पूजा स्थान से साधक बाहर होने पर विधानानुसार देवता को हृदय में समर्पण कर उसके निर्माल्य को ग्रहण करे तथा नैवेद्य को पवित्र स्थान में बैठकर भोजन करें।

तन्त्रान्तर में लिखा है कि निर्माल्य पुष्पादि को मस्तक पर धारण कर निवेदित चन्दन का सर्वाङ्ग में लेप करे। इसके पश्चात् देवभक्त ब्राह्मणों को नैवेद्य प्रदान कर स्वयं नैवेद्य भोजन करे। देवता की पूजा से बचा शङ्खमध्यस्थित जल, शरीर में लगाने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

इति सामान्य पूजा पद्धति

❖

७. अथ श्यामा प्रकरणम्

भैरवतन्त्रे:

अथ वक्ष्ये महाविद्याः कालिकायाः सुदुर्लभाः ।
यासां विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ।।१।।
नात्र चिन्ताविशुद्धिः स्यान्न वा मित्रादिदूषणम् ।
न वा प्रयासबाहुल्यं समयासमयादिकम् ।।२।।
न वित्तव्ययबाहुल्यं कायक्लेशकरं न च ।
य एनां चिन्तयेन्मन्त्री सर्वकामसमृद्धिदाम् ।।३।।
तस्य हस्ते सदैवास्ति सर्वसिद्धिर्न संशयः ।
गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते ।।४।।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभां गताः ।
राजानोऽपि च दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः ।।५।।
दिवारात्रिव्यत्ययं च वशीकर्त्तुं क्षमो भवेत् ।
अन्ते च लभते देव्या गणत्वं दुर्लभं नरः ।।६।।

पद्मा—भैरवतन्त्र मे भगवान् शिव कहते हैं कि अब मैं अत्यन्त ही दुर्लभ महाविद्या भगवती कालिका के विषय में कहता हूँ। इस महाविद्या के ज्ञान मात्र से ही मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। इस महाविद्या में न तो शुद्धि का विचार किया जाता है और न ही इनके मन्त्रों में अरिमित्रादि दोषों का विचार किया जाता है। इन महाविद्या के मन्त्रों के साधन में न तो बहुत प्रयास करना होता है और न ही समय-असमय का ध्यान दिया जाता है। बहुत अधिक धन का व्यय भी नही करना पड़ता और शरीर को अधिक कष्ट भी सहन नही करना पड़ता है। जो साधक सभी प्रकार की समृद्धि देने वाली भगवती काली का ध्यान करता है उसके हाथ में सदैव सभी प्रकार की सिद्धियाँ रहती हैं इससे संशय नही है। सभा में वह गद्यपद्यमयी वाणी बोलने लगता हैं। उसके दर्शनमात्र से ही उसके विरोधी निस्तेज हो जाते हैं। राजा भी उसके सामने दासवत् रहते हैं अन्य सभी लोगों की बात ही क्या है ? भगवती कालिका के मन्त्र का साधक दिन को रात्रि और रात्रि को दिन में परिवर्तित कर सकता है। वह तीनो लोकों के प्राणियों को वशीभूत करने में सक्षम हो जाता है तथा अन्तकाल में दुर्लभ देवी के गण का पद प्राप्त करता है ॥१-६॥

अथ श्यामामन्त्राः

तत्र कालीतन्त्रे

कामत्रयं वह्निसंस्थं रतिविन्दुविभूषितम् ।
कूर्चयुग्मं तथा लज्जायुगलं तदनन्तरम् ।।७।।

दक्षिणे कालिके चेति पूर्वबीजानि चोच्चरेत्।
अन्ते वह्निवधूं दद्याद्विद्याराज्ञीप्रकीर्तिता ।।८।।

पद्मा—अब श्यामा मन्त्र कहा जा रहा है। **कालीतन्त्र** मे लिखा है कि ककार **(क)** के पश्चात् रेफ **(र)** रति **(ई)** और विन्दु **(०)** का योग करने से **क्रीं** बीज मन्त्र बनता है। तीन क्रीं बीज, **(क्रीं क्रीं क्रीं)** कूर्चबीजद्वय **(हूं हूं)** मायाबीजद्वय **(ह्रीं ह्रीं) दक्षिणे कालिके** तत्पश्चात् पूर्वोक्त सात बीज का उच्चारण करे और अन्त में **स्वाहा** को जोड़े। इस प्रकार का मन्त्र विद्याराज्ञी मन्त्र कहा जाता है।

विमर्श—मन्त्रोद्धार इस प्रकार है-**क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।**

मन्वर्थमाह यामलेः

ककाराज्जलरूपत्वात्केवलं मोक्षदायिनी।
ज्वलनार्णसमायोगात्सर्वतेजोमयी शुभा ।।९।।
मायात्रयेण देवेशि! सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
विन्दुनां निष्फलत्वाच्च कैवल्यफलदायिनी ।।१०।।
बीजत्रया शाम्भवी सा केवलं ज्ञानचित्कला।
शब्दबीजद्वयेनैव शब्दराशिप्रबोधिनी ।।११।।
लज्जाबीजद्वयेनैव सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
सम्बोधनपदेनैव सदा सन्निधिकारिणी।
स्वाहया जगतां माता सर्वपापप्रणाशिनी ।।१२।।

पद्मा—इस मन्त्र के वर्णों का अर्थ **यामल** में इस प्रकार लिखा है। जलरूपी **ककार** मोक्ष प्रदान करता हैं। अग्निरूपी रेफ **(र)** सर्वजतोमय है। तीनों **क्रीं** बीज सृष्टि, स्थिति और लय करने वाले हैं। **बिन्दु** निष्फल ब्रह्मस्वरूप है अतएव यह कैवल्य फल को देने वाला है। **हूं हूं** यह दोनो बीज शब्दज्ञान को देने वाले हैं। **ह्रीं ह्रीं** ये दोनों बीज सृष्टि स्थिति और लय को करने वाले हैं। **दक्षिणे कालिके** सम्बोधन से देवी का सान्निध्य प्राप्त होता है। **स्वाहा**–यह मन्त्र जगत् का मातृस्वरूप और समस्त पापों का नाशक है।

अस्याः पूजाप्रयोगः

प्रातः कृत्यादिकं कृत्वा मन्त्राचमनं कुर्यात्।
यथाः कालिकाभिस्त्रिभिः पीत्वा काल्यादिभिरुपस्पृशेत्।
द्वाभ्यामोष्ठो द्विरून्मृज्य चैकेन क्षालयेत्करौ ।।१३।।

मुखघ्राणेक्षणश्रोत्रनाभ्युरस्कं भुजौ क्रमात्।
आचम्यैवं भवेत्काली वत्सरात्तां प्रपश्यति।।१४।।

कं शिरः।

तद्यथाः क्रीमिति त्रिराचमेत्। ॐ काल्यै नमः कपालिन्यै नमः इति ओष्ठौ द्विरुन्मृजेत्। ॐ कुल्वायै नमः इति करं क्षालयेत्। ॐ कुरुकुल्वायै नमः इति मुखे। ॐ विरोधिन्यै नमः इति दक्षिणनासायाम्। ॐ विप्रचित्तायै नमः इति वामनासायाम्। ॐ उग्रायै नमः ॐ उग्रप्रभायै नमः इति नेत्रयोः। ॐ दीप्तायै नमः, ॐ नीलायै नमः इति श्रोत्रयोः। ॐ घनायै नमः इति नभौ। ॐ बलाकायै नमः इति वक्षसि। ॐ मात्रायै नमः इति शिरसि। ॐ मुद्रायै नमः ॐ मितायै नमः इत्यंसयोः। इति मन्त्राचमनम्। ततो भूतशुद्ध्यन्तं विधाय मायाबीजेन यथाविधि प्राणायामं कुर्यात्। ततः ऋष्यादिन्यासः। यथा—

अस्य मन्त्रस्य भैरवऋषिरुष्णिक छन्दो दक्षिणकालिका देवता ह्रीं बीजम् हूं शक्तिः क्रीं कीलकं पुरुषार्थचतुष्टय सिद्ध्यर्थे विनियोगः।

तथा च कालीक्रमेः

कीलकं चाद्यबीजं स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदम्। शिरसि भैरवऋषये नमः। मुखे उष्णिक्छन्दसे नमः। हृदि दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः। गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः हूं शक्तये नमः। सर्वाङ्गे क्रीं कीलकाय नमः।

ततः कराङ्गन्यासौ। तदुक्तम् कालीतन्त्रेः

अङ्गन्यासकरन्यासौ यथावदभिधीयते। भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तः उष्णिक्छन्द उदाहृतम्। देवता कालिका प्रोक्ता लज्जाबीजन्तु बीजकम्।

कीलकं चाद्यबीजं स्याच्चुर्वर्गफलप्रदम्।
शक्तिश्च कूर्चबीजम् स्यादनिरुद्धा सरस्वती।।१५।।

कवित्वार्थे नियोगः। स्यादित्यादि। तेन मायया षडङ्गन्यासः। षड्दीर्घभाजा बीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत्।

वीरतन्त्रेः दीर्घषट्कयुताद्येन प्रणवाद्येन कल्पयेत् इति वा।

तद्यथाः ॐ ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ ह्रूँ मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं। ॐ ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु। ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि। ॐ क्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादिना वा।

ततो वर्णन्यासः—

अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ लृँ लॄँ नमः इति हृदये।
एँ ऐँ ओँ औँ अँ अः कँ खँ गँ घँ नमः इति दक्षिणबाहौ।
ङँ चँ छँ जँ झँ ञँ टँ ठँ डँ ढँ नमः इति वामबाहौ।
णँ तँ थँ दँ धँ नँ पँ फँ बँ भँ नमः इति दक्षिणपादौ।
मँ यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ लँ क्षँ नमः इति वामपादे।

विरूपाक्षमते सविन्दुरयं न्यासः।

यथा वीरतन्त्रेः

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं वै हृदये न्यसेदित्यादि।

कालीतन्त्रे पुनर्निर्विन्दुः

यथाः अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लॄ वै हृदयं स्पृशेत्यादि। किन्तु सविन्दून् वा न्यसेदेतान् निर्विन्दून वाथ वर्णकानित्याचार्य परिगृहीतभैरवीयवाक्यादुभयमेव युक्तम्।

अथ षोढ़ान्यास

तदुक्तं वीरतन्त्रेः

केवलां मातृकां कृत्वा मातृकां तारसंपुटाम्।
मातृकापुटितं तारं न्यसेत् साधकसत्तमः।।१६।।
श्रीबीजपुटितां तां तु मातृकापुटितं तु तत्।
कामेन पुटितां देवीं तत्पुटं काममेव च।।१७।।
शक्त्या च पुटितां देवीं शक्तिं च तत्पुटा न्यसेत्।
क्रीं द्वन्द्वं च पुनर्न्यस्य ऋॠलृलॄं च पूर्ववत्।।१८।।
मूलेन पुटितां देवीं तत्पुटं मन्त्रमेव च।
अनुलोमविलोमेन न्यस्य मन्त्रें यथाविधि।।१९।।
मूलेनाष्टशतं कुर्याद्व्यापकं तदनन्तरम्।

यथाः

ॐ अं ॐ एवं मातृकापुटितं तारम्। एवं श्रीबीजपुटितां ताम्। तत्पुटितं श्रीबीजम्। एवं कामेन पुटितां मातृकाम्। मातृकापुटितं कामम्। एवं शक्त्या पुटितां मातृकाम्। मातृकापुटितां शक्तिं न्यसेत्। तथा क्रीं द्वन्द्वश्च ऋ ॠ लृ लॄश्च पूर्ववत्। तत्पुटितां मातृकां मातृकां पुटितश्च तन्न्यसेत्। मन्त्रपुटितां मातृकां तत्पुटितं मनुम्। पुनरनुलोमविलोमेन केवलं मन्त्रं मातृकास्थाने न्यस्य मूलेनाष्टशतेन व्यापकं कुर्यात्। अयं न्यासस्ताराया अपि कार्यः। इति गुप्तेन

दुर्गाया अङ्गषोढ़ा प्रकीर्तिता। ताराया: कालिकायाश्च उन्मुख्याश्च तथा परा। कृतेऽस्मिन्न्यासवर्ये तु सर्वं पापं प्रणश्यति।

पद्मा—दक्षिण कालिका की पूजा पद्धति इस प्रकार है। सर्वप्रथम सामान्य पूजा पद्धति के अनुसार प्रात: कृत्यादि करके मन्त्र का आचमन करे। काली बीज **क्रीं** से तीन बार आचमनीय जल का पान करके **ॐ काल्यै नमः, ॐ कपालिन्यै नमः** इस मन्त्र से दोनो ओठों का मार्जन करे। इसके पश्चात् **ॐ कुल्वायै नमः** से दोनों हाथ धोकर **ॐ कुरुकुल्वायै नमः** से मुख, **ॐ विरोधिन्यै नमः** से दक्षिण नासिका, **ॐ विप्रचित्तायै नमः** से वामनासिका, **ॐ उग्रायै नमः** से दक्षिणनेत्र, **ॐ उग्राप्रभायै नमः** से वामनेत्र, **ॐ दीप्तायै नमः** दक्षिण कर्ण, **ॐ नीलायै नमः** से वामकर्ण **ॐ घनायै नमः** से नाभि, **ॐ वलाकायै नमः** से वक्ष, **ॐ मात्रायै नमः** से मस्तक **ॐ मुद्रायै नमः** से दक्षस्कन्ध और **ॐ वलाकायै नमः** से वामस्कन्ध को स्पर्श करे।

इसके पश्चात् सामान्यपूजा पद्धति के अनुसार भूतशुद्धि तक के कर्म कर **ह्रीं** मन्त्र से विधिपूर्वक प्राणायाम करे। तत्पश्चात् विनियोग और ऋष्यादिन्यास करे। यथा—

विनियोग-**अस्य मन्त्रस्य भैरव ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, दक्षिणकालिका देवता, ह्रीं बीजं, हूं शक्तिः, क्रीं कीलकं, पुरुषार्थचतुष्टयसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।**

ऋष्यादिन्यास-**शिरसि भैरव ऋषये नमः। मुखे उष्णिक् छन्दसे नमः। हृदि दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः। गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः हूं शक्तये नमः। सर्वाङ्गे क्रीं कीलकाय नमः।**

कराङ्गन्यास **ॐ ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं। ॐ ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।**

षडङ्गन्यास **ॐ ह्रां हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ ह्रूँ शिखायै वषट्। ॐ ह्रैं कवचाय हुं। ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वषट्। ॐ ह्रः अस्त्राय फट्।**

यह सभी अंगन्यास **अंगुष्ठाभ्यां नमः** आदि के पूर्व **ॐ क्रां** आदि लगाकर भी किए जा सकते हैं। इसके पश्चात् वर्णन्यास करे।

वर्णन्यास

अँ आँ इँ ईं उँ ऊँ ऋँ ॠँ लृँ लॄँ नमः हृदये।
एँ ऐँ ओँ औँ अँ अः कँ खँ गँ घँ नमः दक्षिणबाहौ।
ङँ चँ छँ जँ झँ ञँ टँ ठँ डँ ढँ नमः वामबाहौ।

णँ तँ थँ दँ धँ नँ पँ फँ बँ भँ नमः दक्षिणपादे ।

मँ यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ लँ क्षँ नमः वामपादे ।

इस वर्णन्यास के विषय में मतभेद है। विरूपाक्ष के मत से और **वीरतन्त्र** के अनुसार विन्दु सहित न्यास करे, जैसा कि ऊपर दिया गया हैं किन्तु **कालीतन्त्र** के अनुसार निर्विन्दु न्यास करे। यथा–

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ हृदयाय नमः......इत्यादि ।

यह दोनों ही मत युक्ति संगत है। इसलिए जिस मत की इच्छा हो उसी के अनुसार आचरण करे।

षोढ़ा न्यास

वीरतन्त्र मे लिखा है कि प्रथम केवल मातृकान्यास करें। तदुपरान्त मातृका वर्णों को **ॐ** से पुटित कर और **ॐ** से पुटित कर और **ॐ** को प्रत्येक मताृकावर्ण से पुटित कर मातृकान्यास के स्थानों में क्रमशः न्यास करे। यथा–**ललाटे ॐ अं ॐ नमः, मुखे ॐ आं ॐ नमः** इत्यादि और **ललाटे अं ॐ अं नमः, मुखे आं ॐ आं नमः** इत्यादि।

इसी प्रकार श्रीबीज (**श्रीं**) से मातृकावर्ण को और मातृकावर्ण से श्री बीज को पुटित कर न्यास करे। यथा–**ललाटे श्रीं अं श्रीं नमः, मुखे श्रीं आं श्रीं नमः** इत्यादि और **'अं श्रीं अं नमः, आं श्रीं आं नमः'** इत्यादि।

अब इसी प्रकार कामबीज **क्लीं** से न्यास करे। यथा–**ललाटे क्लीं अं क्लीं नमः** इत्यादि और **ललाटे अं क्लीं अं नमः** इत्यादि।

इसी प्रकार शक्तिबीज **ह्रीं** से न्यास करे यथा–**ललाटे ह्रीं अं ह्रीं नमः** इत्यादि और **ललाटे अं ह्रीं अं नमः** इत्यादि।

अब **क्रीं क्रीं** इन बीजों से **ऋं ॠं ऌं ॡं** को और **ऋं ॠं ऌं ॡं** से **क्रीं क्रीं** को पुटित कर मातृकान्यास के स्थानों में न्यास करे। यथा–**ललाटे क्रीं क्रीं ऋं ॠं ऌं ॡं क्रीं क्रीं नमः** इत्यादि और **ललाटे ऋं ॠं ऌं ॡं क्रीं क्रीं ऋं ॠं ऌं ॡं** इत्यादि।

अन्त में मूलमन्त्र से मातृकावर्ण को और मातृकावर्ण से मूलमन्त्र को सम्पुटित कर न्यास करे। यथा–**ललाटे क्रीं अं क्रीं नमः** इत्यादि और **ललाटे अं क्रीं अं नमः** इत्यादि।

इस प्रकार अनुलोम विलोमात्मक न्यास कर मूलमन्त्र से एक सौ आठ बार व्यापक न्यास करे।

तारा महाविद्या की पूजा में इसी प्रकार षोढ़ान्यास किया जाता है। इस न्याय से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

ततस्तत्त्वन्यासः। यथा–

मूलं त्रिखण्डं विधाय प्रथमखण्डान्ते ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहेति पादादिनाभिपर्यन्तम्। द्वितीयखण्डान्ते ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहेति नाभ्यादि हृदयान्तम्। तृतीयखण्डान्ते ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहेति हृदयादिशरः पर्यन्तंन्यसेत्। तदुक्त स्वतन्त्रेः

मूलविद्यात्रिखण्डान्ते प्रणवाद्यैर्यथाविधि।
आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैस्तत्त्वन्यासं समाचरेत्॥२०॥

पद्मा—इसके पश्चात् तत्त्वन्यास करे। यथा–मूलमन्त्र को तीन खण्डों में बाँट कर न्यास करे। मूल मन्त्र का तात्पर्य पूर्वोक्त २२ अक्षर का मन्त्र है। इस प्रकार प्रथमखण्ड में सात अक्षर दूसरे खण्ड में छः अक्षर और तीसरे खण्ड में नौ अक्षर होंगे इस प्रकार यह न्यास होगा। यथा–

क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा–पैरों से नाभि तक

दक्षिणे कालिके ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा–नाभि से हृदय तक

क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा–हृदय से मस्तक तक।

स्वतन्त्र तन्त्र मे भी इसी प्रकार के वचन कहे गये हैं॥२०॥

अथ बीजन्यासः

तदुक्तं कुमारीकल्पेः

ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये ललाटे नाभिदेशके।
गुह्ये वक्त्रे च सर्वाङ्गे सप्तबीजं क्रमान्न्यसेत्॥२१॥

तद्यथाः

आद्यबीजं ब्रह्मरन्ध्रे। द्वितीयबीजं भ्रूमध्ये। तृतीयबीजं ललाटे। चतुर्थबीजं नाभौ। पञ्चमबीजं गुह्ये। षष्ठबीजं वक्त्रे। सप्तबीजं सर्वाङ्गे। एतत्त्रयं काम्यम्। ततो मूलेन सप्तधा व्यापकं कृत्वा यथाविधि मुद्रां प्रदर्श्य ध्यायेत्।

पद्मा–इसके पश्चात् बीजन्यास करे। **ब्रह्मरन्ध्रे क्रीं नमः। भ्रूमध्ये क्रीं नमः। ह्रीं नमः। षोढ़ान्यास, तत्त्वन्यास** और **बीजन्यास** यह तीन न्यास काम्य हैं। नित्यपूजा में इन तीनो को न करने से पूजा अंगहीन रहती है। अब मूल मन्त्र से सात बार व्यापक न्यास कर यथाविधि मुद्राएं दिखाकर ध्यान करे।

तद्यथा कालीतन्त्रे—

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्।।२२।।
सद्यश्छिन्नशिरः खड्गवामाधोर्ध्वकराम्बुजाम्।
अभयं वरदं चैव दक्षिणोर्ध्वाधःपाणिकम्।।२३।।
महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बरीम्।
कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम् ।।२४।।
कर्णावतंसतानीतशवयुग्मभयानकाम् ।
घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम्।।२५।।
शवानां करसङ्घातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्।
सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम् ।।२६।।
घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्।
बालार्कमण्डलाकरलोचनत्रितयान्विताम् ।।२७।।
दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम्।
शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम्।।२८।।
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्ष समन्विताम्।
महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम्।।२९।।
सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम्।
एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं सर्वकामसमृद्धिदाम्।।३०।।

पद्मा—इसका अर्थ कालीतन्त्रम् (पूर्वार्द्ध) मूल कालीतन्त्रम प्रथम पटल श्लोक २७ से ३५ तक देखें।

ध्यानान्तरं स्वतन्त्रेः

अञ्जनाद्रिनिभां देवीं करालवदनां शिवाम्।
मुण्डमालावलीकीर्णां मुक्तकेशीं स्मिताननाम्।।३१।।
महाकालहृदम्भोजस्थितां पीनपयोधराम्।
विपरीतरतासक्तां घोरदंष्ट्रा शिरै सह।।३२।।
नागयज्ञोपवीताढ्यां चन्द्रार्द्धकृतशेखराम्।
सर्वालङ्कारसंयुक्तां मुण्डमालाविभूषिताम्।।३३।।
शवहस्तसहस्रैस्तु, बद्धकाञ्चीं दिगंशुकाम्।
शिवाकोटिसहस्रैस्तु योगिनीभिर्विराजिताम्।।३४।।
रक्तपूर्णमुखाम्बोजां मद्यपानप्रमत्तिकाम्।
वह्न्यर्कशशिनेत्रां च रक्तविस्फुरिताननाम्।।३५।।

विगतासु किशोराभ्यां कृतकर्णावतंसिनीम् ।
कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम् ।।३६।।
श्मशानवह्निमध्यस्थां ब्रह्मकेशववन्दिताम् ।
सद्यः कृत शिरः खड्गवराभीतिकराम्बुजाम् ।।३७।।

पद्मा—भगवती काली अञ्जन के पर्वत के समान काले रंग की हैं। मुख विस्तृत है, गले में मुण्डों की माला है केश खुले हैं, मुख-मण्डल पर हास्य है। उनके दोनों स्तन मांसल पुष्ट एवं ऊँचे हैं। ये महाकाल के हृदय कमल के ऊपर विपरीतरति में आसक्त हैं और साँप का यज्ञोपवीत पहने हुये हैं। इनके दाँत अत्यन्त ही भयानक हैं और ललाट पर अर्द्धचन्द्र सुशोभित हैं। हजारों शवों के हाथों से बनी करधनी कमर में बँधी है। करोड़ों शिवाएं (सियारिनें) और हजारो योगिनियाँ देवी की सेवा कर रही हैं। देवी दिगम्बरा (नग्न) हैं। इनका मुखमण्डल रक्त की धारा से परिपूर्ण है और मद्यपान से मत्त हैं। सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा यह देवी के तीन नेत्र हैं। मुखमण्डल लालरंग का है। अपने दोनों कानों में मृत शिशुओं को धारण किये हुए हैं। इनके गले में पड़ी हुई मुण्डों की माला से रुधिर टपककर सम्पूर्ण शरीर को भिंगो रहा है। देवी सदा ही श्मशान की अग्नि के मध्य में स्थित रहती हैं। वे भगवान् ब्रह्मा एवं भगवान् केशव द्वारा वन्दित हैं। इनके चार हाथों में तत्काल का कटा हुआ मुण्ड, खड्ग, वर एवं अभय विद्यमान हैं ।।३१-३७।।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य अर्घ्यस्थापनं कुर्यात् ।

तद्यथाः स्ववामे भूमौ हूंकारगर्भ त्रिकोणं विलिख्यार्घ्यपात्रं संस्थाप्य मूलेन शुद्धजलादिना शङ्खादिपात्रमापूर्य गन्धादिकं दत्त्वा, ॐ गङ्गे चेत्यादिना तीर्थमावाह्य, मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, इत्याधारं, अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः इति शङ्खम्, उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः इति जलं सम्पूज्य, ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं कवचाय हुं, इत्यग्नीशासुरवायुषु। अग्रे ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् चतुर्दिक्षु ॐ ह्रः अस्त्राय फट्। इत्यभ्यर्च्य तदुपरि मत्स्यमुद्रयाच्छाद्य मूलं दशधा जप्त्वा धेनुमुद्रयामृतीकृत्यास्त्रेण संरक्ष्य, भूतिनीयोनिमुद्रे प्रदर्श्य तज्जलं किञ्चित्प्रोक्षणीपात्रे निक्षिप्य, मूलेन तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणञ्चाभ्युक्ष्य, पीठपूजामारभेत् ।

पद्मा—इस प्रकार ध्यान कर मानस पूजा करे फिर अर्घ्यपात्र स्थापित करे। जैसे कि अपने बायें ओर भूमि पर **हूँ** कार गर्भित त्रिकोण लिखे। उस पर अर्घ्य पात्र रखकर शुद्ध जल से उसे भरे। जल में गन्धादि छोड़कर **ॐ गङ्गे च०** इत्यादि मन्त्र से उसमें

तीर्थों का आवाहन करे। **मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः** से आधार की **अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः** से शंख की **उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः** से जल की पूजा करे। फिर **ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं कवचाय हुं** इन मन्त्रों से क्रमशः अग्नि, ईशान, निर्ऋति और वायव्य कोणों में पूजन कर **ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्** से मध्य में और **ॐ ह्रः अस्त्राय फट्** से चारों दिशाओं में पूजन करे। इसके बाद मत्स्यमुद्रा से उसे ढककर दस बार मूलमन्त्र का जप करे और धेनुमुद्रा से अमृतीकरण, अस्त्र से संरक्षण कर भूतिनी और योनि मुद्राएं प्रदर्शित करे। उस जल में से कुछ जल प्रोक्षणी पात्र में डालकर मूलमन्त्र से उस जल को अपने ऊपर और पूजन सामग्री पर छिड़कें इसके पश्चात् पीठपूजा प्रारम्भ करे।

अस्याः पूजायन्त्रम्

आदौ विन्दुं स्वबीजं भुवनेशीञ्च विलिख्य, ततस्त्रिकोणं तद्वाह्ये त्रिकोणचतुष्टयं वृत्तमष्टदलं पद्मं पुनर्वृत्तं चतुर्द्वारात्मकं भूगृहं लिखेत्।

तदुक्तं काली तन्त्रेः

आदौ त्रिकोणमालिख्य त्रिकोणं तद्बहिर्लिखेत्।
ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम्।।३८।।
ततो वृत्तं समालिख्य लिखेदष्टदलं ततः।
वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेद्भूपुरमेककमम्।।३९।।

तथा कुमारीकल्पेः

मध्ये तु वैन्दवं चक्रं बीजमायाविभूषितमिति।

अथ विशेषाधारो मुण्डमालायाम्

ताम्रपात्रे कपाले वा श्मशानकाष्ठनिर्मिते।
शनिभौमदिने वापि शरीरे मृतसम्भवे।
स्वर्णे रौप्येऽथ लौहे वा चक्रं कार्यविधानतः।।४०।।

यन्त्रान्तरमाह तन्त्रेः

शक्त्याग्निभ्याञ्च षट्कोणं शक्तिभिश्च नवात्मकम्।
पद्मे वसुदले भूमिपुश्चतुर्द्वारसंयुते इति।।४१।।

पद्मा—अब भगवती के पूजन यन्त्र का वर्णन करते हैं। सर्वप्रथम बिन्दु (·) तदुपरान्त निजबीज (**क्रीं**) तत्पश्चात् भुवनेश्वरी (**ह्रीं**) लिखे। इनके बाहर त्रिकोण बनायें।

त्रिकोण के बाहर चार और त्रिकोण बनायें। इस प्रकार कुल पांच त्रिकोण बनेंगे। इसके बाद वृत्त, अष्टदलपद्म और पुनः वृत्त बनाये। अन्त में चार द्वार से युक्त भूपुर बनाये।

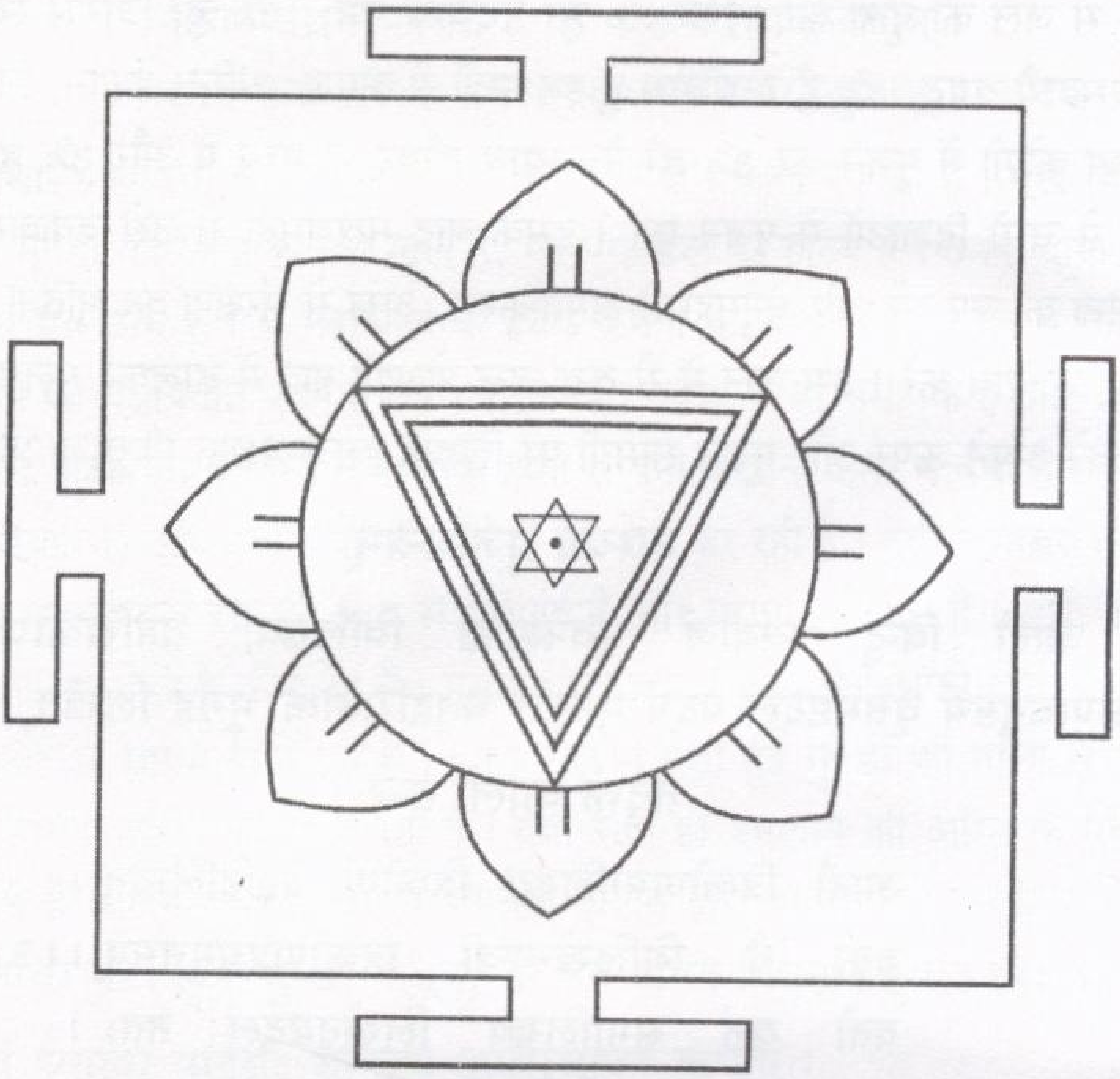

।।पूजा यन्त्रम्।।

काली तन्त्र में यन्त्र का अन्य स्वरूप इस प्रकार बताया है कि पहले अधोमुख त्रिकोण पर ऊर्ध्वमुख त्रिकोण अर्थात् षट्कोण बनाकर उसके बारह अधोमुख तीन त्रिकोण बनाये। उनके बाहर अष्टदलपद्म और चार द्वार वाला भूपुर बनाये।

मुण्डमाला तन्त्र मे लिखा है कि ताम्रपात्र में, कपाल में, श्मशान के काष्ठ (लकड़ी) से बने पात्र में, शनिवार और मंगलवार के दिन, मरे हुए मनुष्य के शरीर में, स्वर्ण या रजत अथवा लोहे के पात्र में विधिवत् यन्त्र बनाये।

कुमारी कल्प में लिखा है कि मध्य में बिन्दु और माया (ह्रीं) से युक्त यन्त्र का अंकन करे।

तन्त्र में यन्त्र के अंकन की अन्य विधि से इस प्रकार है–प्रथम षट्कोण अंकित करके उसके बाहर तीन त्रिकोण अंकित करे। उसके बाहर वृत्त अष्टदल पद्म और चार द्वार युक्त भूपुर लिखना चाहिए। इस प्रकार यन्त्र प्रस्तुत होता है॥३८-४१॥

ततः पीठपूजा

कुमारीकल्पेः

पीठपूजां ततः कुर्यादाधारशक्तिपूर्वकम् ।
प्रकृतिं कमठं चैव शेषं पृथ्वीं तथैव च ।।४२।।
सुधाम्बुधिं मणिद्वीपं चिन्तामणिगृहं तथा ।
श्मशानं पारिजातञ्च तन्मूले रत्नवेदिकाम् ।।४३।।
तस्योपरि मणेः पीठं न्यसेत् साधकसत्तमः ।
चतुर्दिक्षु मुनीन् देवान् शिवाश्चैव समुण्डकाः ।
धर्माद्यधर्मादींश्चेत्यादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ।।४४।।
इत्यन्तं सम्पूज्य केशरेषु पूर्वादिक्रमेण पूजयेत् ।
इच्छा ज्ञाना क्रिया चैव कामिनी कामदायिनी ।
रतीरतिप्रिया नन्दा मध्ये चैव मनोन्मनी ।।४५।।

सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत् । तदुपरि हसौः सदाशिवमहाप्रेत-पद्मासनाय नमः । पीठस्योत्तरे गुरुपंक्तिपूजा ।।

पद्मा—इसके पश्चात् पीठपूजा करे । **कुमारीकल्प** के अनुसार आधारशक्तिपूर्वक पीठपूजा करे । यथा–

कर्णिका मे–**ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ प्रकृत्यै नमः, ॐ कमठाय नमः, ॐ शेषाय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ सुधाम्बुधायै नमः, ॐ मणिद्वीपाय नमः, ॐ चिन्तामणिगृहाय नमः, ॐ श्मशानाय नमः, ॐ पारिजातायन नमः ।** कर्णिका के मूल में **ॐ रत्नवेदिकायै नमः** । कर्णिका के ऊपर **ॐ मणिपीठाय नमः** । चारों दिशाओं में **ॐ मुनिभ्यो नमः, ॐ देवेभ्यो नमः, ॐ शिवाभ्यो नमः, ॐ शिवमुण्डेभ्यो नमः, ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्याय नमः, ॐ अधर्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ अवैराग्याय नमः, ॐ अनैश्वर्याय नमः, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः** । केशर में पूर्वादि के क्रम से **ॐ इच्छायै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ कामिन्यै नमः, ॐ कामदायिन्यै नमः, ॐ रत्यै नमः, ॐ रतिप्रियायै नमः, ॐ नन्दायै नमः** । मध्य मे **ॐ मनोन्मन्यै नमः** । उसके ऊपर **हसौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः** । पीठ के उत्तर में **ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परापरगुरुभ्यो नमः, ॐ परमेष्ठि गुरुभ्यो नमः** से पूजन करे ।।४२-४५।।

ततः पुनर्ध्यात्वा पुष्पाञ्जलावानीय, मूलमन्त्रकल्पितमूर्तावावाहयेत् । ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते । यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्वां सुस्थिरा

भव। ततो मूलमुच्चार्यामुकि देवि इहावह इहावह इह तिष्ठ तिष्ठ इह सन्निरुध्यस्व इह सन्निहिता भव। ततो हुमित्यवगुण्ठ्याङ्गमन्त्रैः सकलीकृत्य, परमीकरणमुद्रया परमीकृत्य भूतिन्याकर्षिणीयोनिमुद्राः प्रदर्श्य, प्राणप्रतिष्ठां विधाय मूलेन पाद्यादिभिः पूजयेत्।

पद्मा—पुनः ध्यान कर पुष्पाञ्जलि लेकर मूलमन्त्र से कल्पित मूर्ति मे इस मन्त्र से आवाहन करे—

ॐ देवेशि! भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते।
यावत त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव।।

मूलं अमुक देवि इहावह इहावह इह तिष्ठ इह तिष्ठ, इह सन्निरुद्धस्व इह सन्निहिता भव।

इसके पश्चात् **हुं** से अवगुण्ठन, अंगन्यासमन्त्र से सकलीकरण, धेनुमुद्रा से परमीकरण, भूतिनी, आकर्षिणी व योनि मुद्राएं दिखाएं। प्राणप्रतिष्ठा कर मूल मन्त्र से पाद्यादि उपचारों के द्वारा पूजन करे।।४६।।

तत्र क्रमः आदौ मूलमुच्चार्य एतत्पाद्यं अमुकदेवतायै नमः। एवमर्घ्यं स्वाहा। इदमाचमनीयं स्वधा। स्नानींय निवेदयामि। पुनराचमनीयं स्वधा। एष गन्धौ नमः। एतानि पुष्पाणि वौषट्। ततो मूलेन पञ्चपुष्पाञ्जलि दत्त्वा धूपदीपौ दद्यात्। वनस्पतीत्यादि पठन्मूलमुच्चार्य एष धूपो नमः।

पद्मा—पूजन का क्रम इस प्रकार है। यथा—**मूलं एतत् पाद्यं अमुकदेवतायै नमः**। इसी भाँति **अर्घ्य स्वाहा, इदमाचनयनीयं स्वधा, स्नानीयं निवेदयामि, पुनराचमनीयं स्वधा, एव गन्धो नमः, एतानि पुष्पाणि वौषट्**। फिर मूलमन्त्र से पाँच पुष्पाञ्जलियाँ प्रदान कर **वनस्पति** इत्यादि मन्त्र पढ़कर **मूलं एष धूपो नमः** से धूप प्रदान करे।

दीपमन्त्रस्तु:

सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः।
सवाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयंप्रतिगृह्यताम्।।४७।।

मूलमुच्चार्य एष दीपो नमः। तत ॐ जध्यवनि मन्त्रमातः स्वाहेति घण्टां सम्पूज्य, वामहस्तेन वादयन् नीचैर्धूपं दत्वा दृष्टिपर्यन्तं दीपं दद्यात्। ततो मूलेन पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा यथोपपन्न नैवेद्यं दद्यात्।

पद्मा—दीप इस मन्त्र से प्रदान करे—**सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः। सवाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्। मूलं एष दीपो नमः**। इसके साथ ही **ॐ जयध्वनि मन्त्रमातः स्वाहा** से घण्टा पूजन कर उसे बाएँ हाथ से बजाता रहे। धूप

नीचे मुख करके और दीप दृष्टि तक ऊपर उठाकर प्रदान करे। फिर मूलमन्त्र से तीन पुष्पाञ्जलियाँ देकर नैवेद्य प्रदान करे॥४७॥

तत आवरणपूजां कुर्यात्। श्री अमुकि देवि आवरणं ते पूजयामि। इत्याज्ञां गृहीत्वा, केशरेषु अग्न्यादिकोणेषु ॐ ह्रां हृदयाय नमः। ईशाने ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। नैर्ऋते ॐ ह्रूं शिखायै वषट्। वायौ ॐ ह्रैं कवचाय हुँ। अग्रे ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। चतुर्दिक्षु ॐ ह्रः अस्त्राय फट्। ततः वहिः षट्कोणे ॐ काल्यै नमः। सर्वत्र प्रणवादि नमोऽन्तेन पूजयेत्। एवं कपालिन्यै कुल्वायै कुरुकुल्वायै विरोधिन्यै, विप्रचित्तायै। प्रथमत्र्यस्त्रे उग्रायै, उग्रप्रभाय, दीप्तायै। द्वितीयत्र्यस्त्रै ॐ नीलायै एवं घनायै बलाकायै। तृतीयत्र्यस्त्रै एवं मात्रायै, मुद्रायै, मितायै।

तथा चः

कालीं कपालिनीं कुल्वां कुरुकुल्कं विरोधिनीम्।
विप्रचित्तां पूजयेच्च वहिः षट्कोणके बुधः॥४८॥
उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां तन्मध्ये च त्रिकोणके।
नीलां घनां बलाकाञ्च मध्ये त्रिकोणके यजेत्॥४९॥
मात्रां मुद्रां मिताञ्चैव पूजयेदपरे त्रिके। इति।
सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषिताः॥५०॥
तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यः शुचिस्मिताः।
दिगम्बरा हसन्मुख्यं स्वस्ववाहनभूषिताः॥५१॥
एवं ध्यात्वा अर्चयेत्।

ततोऽष्टपत्रेषु पूर्वादिक्रमेण ॐ ब्राह्म्यै नमः, एवं नारायण्यै, माहेश्वर्यै, चामुण्डायै, कौमार्यै, अपराजितायै, वाराह्यै, नारसिंह्यै। एता गन्धादिभिः पूजयेत्। पत्राग्रे असिताङ्गादिभैरवान्पूजयेत्। ततो मूलेन पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा पाद्यादिना देव्या दक्षिणे महाकालं पूजयेत्।

तस्य ध्यानम्

महाकाल यजेद्देव्या दक्षिणे धूम्रवर्णकम्।
विभ्रतं दण्डखट्वाङ्गौ दंष्ट्राभीममुखम् शिशुम्॥५२॥
व्याघ्रचर्मावृत्तकटिं तुण्दिलं रक्तवाससम्।
त्रिनेत्रमूर्ध्वकेशञ्च मुण्डमालाविभूषितम्।
जटाभारलसच्चन्द्रखण्डमुग्रं ज्वलन्निभम्॥५३॥

तथा च कुमारीकल्पेः

देव्यास्तु दक्षिणे भागे महाकालं प्रपूजयेत्॥५४॥

हूं क्षौं यां रां लां वां आं क्रों महाकालभैरवं सर्वविघ्नान्नाशय नाशय ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा। इत्यनेन पाद्यादिभिराराध्य त्रिस्तर्पयित्वा मूलेन देवीं पञ्चोपचारैः पूजयेत्।।

तथा च कालीतन्त्रेः

महाकालं यजेद्यत्नात्पश्चाद्देवीं प्रपूजयेत्।

कालीकल्पेः

कवचं क्ष्रौं समुद्धृत्य यां रां लां वां आं क्रोन्ततः।।५५।।
महाकालभैरवेति सर्वविघ्नान्नाशयेति च।
नाशयेति पुनः प्रोच्य मायां लक्ष्मीं समुद्धरेत्।
फट्स्वाहया समायुक्तो मन्त्रः सर्वार्थसाधकः।।५६।।
ततो देव्या अस्त्रं पूजयेत्।

तथा च कालीहृदयेः

देवीवामोर्ध्वाधोहस्ते खड्गं मुण्डञ्च पूजयेत्।
देव्या दक्षहस्तोर्ध्वाधः पूजयेदभयं वरम्।।५७।।

ततो देवीं ध्यात्वा यथाशक्ति जप्त्वा गुह्यातीत्यादिना देव्या वामहस्ते जपं समर्प्य आत्मसमर्पणं कुर्यात्।।

तथा च स्वतन्त्रेः

ततः पुनर्मूलदेवीं मुद्रातर्पणपूजनैः।
अर्चयित्वा जपं कृत्वा नत्वा विसर्जयेद् हृदि।।५८।।
जपकाले च कर्पूरयुक्ता जिह्वा कार्या।।

तथा

कर्पूराढ्या सदा जिह्वा कर्त्तव्या जपकर्मणि।
इति विश्वसारवचनात् इदं काम्यजप एवेति।।

ततः स्तुत्वा प्रदक्षिणीकृत्याष्टाङ्गप्रणामं कृत्वा श्रीजगन्मङ्गलं नाम कवचं पठेत्। तत आवरण देवता देव्या अङ्गे विलाप्य संहारमुद्रया अमुकि देवि क्षमस्व इति विसृज्य तत्तेजः पुष्पेण समं स्वहृद्यारोपयेत्।

ॐ उत्तरे शिखरे देवि भूम्यां पर्वतवासिनी!।
ब्रह्मयोनि समुत्पन्ने गच्छ देवि! ममान्तरमिति मन्त्रेण।।५९।।

पद्मा—इसके पश्चात् **श्री अमुकि देवि ! आवरणं ते पूजयामि** से आज्ञा लेकर पद्मकेशरों मे षडङ्गपूजा करे। यथा–**आग्नये ॐ ह्रदयाय नमः, ईशाने ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, नैर्ऋते ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, वायौ ॐ ह्रैं कवचाय हुं, अग्रे ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, चतुर्दिक्षु ॐ ह्रः अस्त्राय फट् ।**

इसके पश्चात् प्रथम त्रिकोण में **ॐ काल्यै नमः, कपालिन्यै, कुल्वायै कुरुकुल्वायै, विरोधिन्यै, विप्रचित्तायै** से, द्वितीय त्रिकोण में **ॐ उग्रायै नमः उग्रप्रभायै, दीप्तायै** से, तृतीय त्रिकोण में **ॐ नीलायै नमः, घनायै, बलाकायै** से और चतुर्थ त्रिकोण में **ॐ मात्रायै नमः, मितायै, मुद्रायै** से पूजा करे। पूजन से पहले ध्यान अवश्य करे। यथा–

सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषिताः ।
तर्जनीं वामहस्तेन, धारयन्त्यः शुचिस्मिताः ।
दिगम्बरा हसन्मुख्यः, स्वस्ववाहनभूषिताः ।।

अर्थात् सभी श्याम वर्णा हैं, सभी के हाथों में तलवार, गले में मुण्ड की माला, बाएं हाथ में तर्जनी और मुख में पवित्र मुस्कान है। सभी नग्न वेश में एवं अपने अपने वाहन पर आसीन हैं।

इसके पश्चात् अष्टदलों में पूर्वादि के क्रम से **ॐ ब्राह्म्यै नमः, नारायण्यै, माहेश्वर्यै चामुण्डायै, कौमार्यै, अपराजितायै, वाराह्यै, नारसिंहयै** से पञ्चोपचारों से पूजा कर पद्मदलों के अग्रभाग में **ॐ असिताङ्गभैरवाय नमः, रुरुभैरवाय, चण्डभैरवाय, क्रोधभैरवाय, उन्मत्तभैरवाय, कपालिभैरवाय, भीषणभैरवाय, संहारभैरवाय** से पूजाकर मूलमन्त्र से तीन पुष्पाञ्जलियाँ देकर देवी के दाएं महाकाल भैरव का ध्यान करे-देवी के दाहिने भाग में धूम्रवर्ण महाकाल की पूजा करे। ये दण्ड और खट्वाङ्ग लिए हैं। भयानक दाँतो के कारण इनका मुख भीषण है। कटि में व्याघ्रचर्म है तथा उदर अत्यन्त ही स्थूल है। ये लाल रंग के वस्त्र धारण किए हैं। इनके तीन नेत्र हैं। इनका केशपाश ऊर्ध्वमुख है, गले में मुण्डमाला है, मस्तक पर जटाएं चारों ओर बिखरी हुई हैं, कपाल में अर्द्धचन्द्र है। स्वरूप उग्र और देह की कान्ति अग्नि के समान उज्जवल है।

कुमारी कल्प में भी कहा गया है कि देवी के दाहिनी ओर महाकाल की पूजा करे। **हूं क्ष्रौं यां रां लां वां आं क्रों महाकालभैरव ! सर्वविघ्नान्-नाशयनाशय ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा** से पाद्यादि उपचारों के द्वारा विधिवतपूजन कर तीन बार तर्पण कर मूलमन्त्र के गन्धादि उपचारों के द्वारा देवी की पूजा करे।

कालीतन्त्र में भी कहा गया है कि महाकाल की पूजा के पश्चात् देवी की पूजा करे।

कालीकल्प में कहा गया है कि **हूं क्षौं यां रां लां वां आं क्रों महाकालभैरव ! सर्वविघ्नान् नाशय नाशय ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा** यह मन्त्र सर्वार्थ साधक है। इससे देवी के अस्त्र की पूजा करे।

कालीहृदय में लिखा है कि देवी के बायीं ओर के ऊपरी हाथ में **ॐ खड्गाय नमः** नीचे के हाथ में **ॐ मुण्डाय नमः**, दक्षिण भाग के ऊपरी हाथ में **ॐ अभयाय नमः**, नीचे के हाथ में **ॐ वराय नमः**, यह अस्त्र पूजा करके देवी का ध्यान करता हुआ यथाशक्ति मूलमन्त्र का जपकर

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्तत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि! त्वत्प्रसादान्महेश्वरि!।।

इस मन्त्र से देवी के बायें हाथ में जप समर्पण करे। इसके पश्चात् आत्मसमर्पण करे।

स्वतन्त्र तन्त्र में लिखा है कि मुद्रा तर्पणादि के द्वारा मूल देवी की पूजा कर, मंत्रजप और नमस्कार करके अपने हृदय में देवी को विसर्जित करना चाहिए। जिस समय किसी कार्य को सिद्धि के लिए जप करे, तब मुख से कपूर रखकर कर्पूरयुक्त जिह्वा से जप करे। फिर प्रदक्षिणा कर अष्टांग प्रणाम करते हुए **जगन्मंगल नामक कवच** का पाठ करे और देवी के अंग में समस्त आवरण देवता विलीन करके संहार मुद्रा द्वारा **ॐ अमुक देवि ! क्षमस्व** कहकर विसर्जन करे और

ॐ उत्तरे शिखरे देवि! भूम्यां पर्वतवासिनि!
ब्रह्मयोनिसमुत्पन्ने गच्छ देवि! ममान्तरम्।।

इस मन्त्र के द्वारा देवी के तेज को पुष्प के साथ अपने हृदय में आरोपित करे।

ततस्तन्नैवेद्यं किञ्चिदुच्छिष्टचाण्डालिन्यै नमः इत्यैशान्यां दिशि दत्त्वा शेषभिष्टेभ्यो दत्त्वा, किञ्चित् स्वीकृत्य, पादोदकं पीत्वा, निर्माल्यं शिरसि विधृत्य, यथेच्छं विहरेदिति। ततो यन्त्रलेपं वामहस्ते कृत्वा सव्यहस्तकरनिष्ठया मायाबीजं विलिख्य तयातिलकं कुर्यात्। तथा च–

वामे कृत्वा यन्त्रलेपं मायां सव्य कनिष्ठया।
विलिख्य तिलकं कुर्यान्मन्त्रेणानेन साधकः।।५८।।
ॐ यं यं स्पृशामि पादाभ्यां यो मां पश्यति चक्षुषा।
स एव दासतां यातु राजानो दुष्टदस्यवः।।५९।।

ततो मूलेनाष्टोत्तरशताभिमन्त्रितं पुष्पं चन्दनं च धृत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत्। सर्वसिद्धियुतो भूत्वा भैरवो वत्सराद्भवेत्।

तथा च कालीतन्त्रे:

लक्षमेकं जपेन्मन्त्री हविष्याशी दिवाशुचिः।
रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः ।।६०।।

व्यवस्थामाह स्वतन्त्रे:

दिवा लक्षं शुचिर्भूत्वा हविष्याशी जपेन्नरः।
ततस्तद्दशांशेन होमयेद्धविषा प्रिये!।।६१।।

अत्राङ्गस्य कालान्तरमाह नीलसारस्वते:

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः।
अशुचिश्च तथा रात्रौ लक्षमेकं तथैव च।
दशांशं होमयेन्मन्त्री तर्पयेदभिषेचयेत्।।

इति साम्प्रदायिकः ।।६२।।

वस्तुतस्तु कुमारीकल्पे:

लक्षमेकं जपेद्विद्यां हविष्याशी दिवा शुचिः।
रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः ।।६३।।
एवं लक्षद्वयं जप्त्वा तद्दशांशेन भन्त्रवित्।
अयुतं होमयेद्देवि! दिवारात्रिविभेदतः ।।६४।।
तेन दिवा लक्षं जप्त्वा तद्दशांशं होमं कुर्यात्।
रात्रौ लक्षं जप्त्वा रात्रौ तद्दशांशं होमं कुर्यादिति रहस्यार्थः ।।६५।।

रात्रि जपे तु कालो मुण्डमालायाम्-

गते तु प्रथमे यामे तृतीय प्रहरावधि।
निशायान्तु प्रजप्तव्यं रात्रिशेषे जपेन्नहि ।।६६।।

अस्य पुरुश्चरणं लक्षजपश्च पूर्णानन्दमतेन्। अत्रेदं बोध्यं विप्राणान्तु दिवा लक्षजपमात्रेणैव पुरश्चरणम्।

तथा च फेत्करीये:

द्विजातीनाञ्च सर्वेषां दिवाविधिरिहोच्यते।
शूद्राणां च तथा प्रोक्तं रात्राविष्टं महाफलम्।।६७।।

कालीरहस्येऽपि:

दिवैव प्रजपेन्मन्त्रं लक्षमेकं शुचिर्द्विजः।

पूर्णानन्दमतेन लक्षजपे पुरश्चरणं तत् सन्दिग्धमतं, नानातन्त्रे लक्षद्वयदर्शनात् लक्षद्वयेनैव पुरश्चरणं सिद्धमिति ।

अन्यत्र चः

दिवैव प्रजपेन्मन्त्रं न तु रात्रौ कदाचन ।।

श्यामायाः पुरश्चरणाङ्गब्राह्मणभोजनं हविष्यान्नेन कारयितव्यम् ।।

तथा च विश्वसारेः

लक्षमेकं जपेद् विद्यां हविष्याशी दिवाशुचिः ।
ततस्तु तद्दशांशेन होमयेद्धविषा प्रिये !।।६८।।
तर्पयेद्दशांशेन तीर्थतोयेन पार्वतीम् ।
मधुना वा सितामिश्रतोयेन परमेश्वरि !।।६९।।
देवीञ्चाभिषिञ्चेत्तोयैस्तर्पणस्य दशांशतः ।
तद्दशांशं हविष्यान्नैर्भक्तितो भोजयेद्द्विजाम् ।।७०।।
कालीमन्त्रविदो मन्त्री दक्षिणां गुरवे दिशेत् ।
पाशवं कथितं कल्पं शृणु वीरं ततः प्रिये ।।७१।।
रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः।
जप्त्वा समाहितोमन्त्री होमयेत् कल्पितानले।।७२।।

कालीकुलार्णवेः

पाशवेन तु कल्पेन लक्षं जप्यात् समाहितः ।
दिव्यगुरुमुखाल्लब्ध्वा कालिकां दिव्यपिणीम् ।।७३।।
लक्षं जप्यात्सदा मन्त्री वीरकल्पेन साधकः ।

विश्वसारेः

प्रजपेत् परया भक्त्या लक्षमेकं दिवानिशम् ।।७४।।

यत्त कुमारीकल्पेः

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः ।
रात्रौ ताम्बूलपूरास्य शय्यायां लक्षमानतः ।।७५।।

एवं लक्षद्वयं जप्त्वा तद्दशांशेन मन्त्रवित् । इति वचनात् लक्षद्वयस्य विशिष्टस्य पुरश्चरणमिति । तन्न पूर्वोक्तवचनविरोधात् । एतद्वचनस्य पुरुश्चरणद्वये तात्पर्यम् ।

पद्मा—इसके पश्चात् निवेदित नैवेद्य का कुछ अंश लेकर **ॐ उच्छिष्टचाण्डालिन्यै**

नमः मन्त्र से ईशान दिशा में प्रदान करे और शेष अन्न अपने सुहृदों को देकर कुछ स्वयं ग्रहण करे देवी का चरणामृतपान कर सिर पर निर्माल्य धारण कर स्वेच्छानुसार विचरण करे। तत्पश्चात् यन्त्र पर लगे हुए चन्दन को बाएं हाथ में लेकर उसमें दाहिने हाथ की कनिष्ठा अंगुली द्वारा मायाबीज **(ह्रीं)** लिखकर उसी चन्दन से इस मन्त्र

ॐ यं यं स्पृशामि पादाभ्यां यो मां पश्यति चक्षुषा।
स एव दासतां यातु, राजानो दुष्टदस्यवः।।

का उच्चारण करता हुआ ललाट पर तिलक लगाये।

तत्पश्चात् १०८ बार अभिमन्त्रित पुष्प और चन्दन धारण करे। इस प्रकार एक वर्ष तक देवी की उपासना करने से साधक सर्वसिद्धि युक्त होकर भैरव के समान होता है और त्रिभुवन को वशीभूत करने में सक्षम हो जाता है।

इस तन्त्र का पुरश्चरण दो लाख कहा गया है। -

काली तन्त्र में लिखा है कि साधक दिन में पवित्र और हविष्याशी होकर मन्त्र का एक लाक्ष जप करे और रात्रि में ताम्बूल से भरे हुए मुख से शय्या पर बैठकर एक लाख जप करे। जप संख्या के पूरी होने पर दशांश हवन करे।

स्वतन्त्र तन्त्र में जप की व्यवस्था इस प्रकार है कि दिन में एक लाख जप पवित्र एवं हविष्याशी होकर करे। जप का दशांश हविष्य से होम करे।

इस पुश्चरण को जप अंग का वर्णन **नीलसारस्वत** में लिखा है कि दिन में शुद्ध (पवित्र) और हविष्याशी होकर तथा रात्रि में अपवित्र होकर एक लाख जप करे। जप का दशांश होम, तर्पण एवं अभिषेक करे। ऐसा साम्प्रदायिकों ने कहा है।

कुमारी कल्प मे भी यही सब बातें कही गयी है। विद्वान् जिज्ञासु मूल में देखें।

रात्रि जपकाल के लिए **मुण्डमाला तन्त्र** मे भी कहा गया है कि द्वितीय प्रहर से लेकर तृतीय प्रहर तक जप करे तथा रात्रि के शेष प्रहर में जप न करें।

पूर्णानन्द के मत से उपरोक्त द्वाविंश अक्षर के मन्त्र का पुरश्चरण एक लाख जप से हो जाता है।

फेत्कारी तन्त्र मे लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए दिन में और शूद्र के लिए रात्रि में होम करना प्रशस्त है।

कालीरहस्य में भी कहा गया है कि द्विज दिन में पवित्र होकर मन्त्र का एक लाख जप करे।

पूर्णानन्द के एक लाख जप का पुरश्चरण संदिग्ध है। अनेक तन्त्रों के अवलोकन से यही सिद्ध होता है कि दो लाख का पुरश्चरण ही सिद्ध है।

अन्यत्र कहा गया है कि दिन में ही मन्त्र का जप करे रात्रि में कभी भी जप न करे। श्यामा के पुरश्चरण के अंग में ब्राह्मण भोजन हविष्यान्न द्वारा न कराये।

विश्वसार तन्त्र मे लिखा है कि विद्या का जप दिन में हविष्याशी एवं पवित्र शरीर होकर एक लाख जप करके जप का दशांश होम, होम दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश, अभिषेक करे। अभिषेक और तर्पण में तीर्थ जल, मधु, अथवा शर्करामिश्रित जल के द्वारा कार्य करे और अभिषेक के दशांशसंख्यक ब्राह्मणों को हविष्यान्न का भोजन कराये। इसके पश्चात् काली मन्त्र का ज्ञाता साधक गुरु को दक्षिणा प्रदान कर पुरश्चरण को पूर्ण करे। हे प्रिये ! यह पश्वाचारयुक्त कल्प कहा गया। अब वीराचार युक्त प्रणाली को कहता हूँ। वीराचार में रत साधक रात्रि के समय शय्या पर बैठकर ताम्बूलपूरितमुख से एक लाख जप करे और एकाग्र चित्त से होम करे।

कालीकुलार्णव में लिखा है कि पाशवकल्प में एकाग्रचित्त होकर मन्त्र का एक लाख जप करे। दिव्यगुरु के मुख से प्राप्त कालिका जो दिव्यस्वरूपा हैं वे मन्त्र को वीरसाधक एक लाख जप करे।

विश्वसारतन्त्र में लिखा है कि साधक परमभक्तिपूर्वक दिन और रात्रि में मन्त्र का एक लाख जप करे।

कुमारी कल्प में भी लिखा है कि साधक दिन में पवित्र एवं हविष्याशी होकर तथा रात्रि में ताम्बूल पूरित मुख से शय्या में बैठकर मन्त्र का एक लाख जप करे ॥५८-७५॥

अथ मन्त्रभेदाः

वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं रतिबिन्दुविभूषितम्।
एकाक्षरो महामन्त्रः सर्वकामफलप्रदः।
त्रिगुणा तु विशेषेण सर्वशास्त्रप्रबोधिनी ।।७६।।

अनयोः पूजाप्रयोगः

प्रातः कृत्यादि प्राणायामान्तं विधाय, पूर्वोक्त ऋषिच्छन्दोदेवता विन्यस्य, वर्णन्यासं कृत्वा, कराङ्गन्यासौ कुर्यात्। यथा–

ॐ क्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ क्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि। एव ॐ क्रां हृदयाय नमः इत्यादि।

तथा च वीरतन्त्रेः

दीर्घषट्कयुताद्येन प्रणवाद्येन कल्पयेत्।
षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तेन देशिकः ।।७७।।
अन्यत् सर्वं पूर्ववत् कार्यम्।

एकाक्षरस्य ध्यानं सिद्धेश्वरतन्त्रेः

शवारूढ़ा महाभीमां घोरदंष्ट्रां वरप्रदाम् ।
हास्ययुक्तां त्रिनेत्राञ्च कपालकर्तृकारकम् ।।७८।।
मुक्तकेशीं ललजिह्वां पिबन्तीं रुधिरं मुहुः ।
चतुर्बाहुयुतां देवीं वराभयकरां स्मरेत् ।।७९।।
अनयो पुरश्चरणं लक्षजपः ।

चथा च सिद्धेश्वरतन्त्रेः

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं लक्षमेकं विधानतः ।
तद्दशांशविधानेन होमयेत् साधकोत्तमः ।।८०।।

कुलचूड़ामणौ

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः ।
लक्षं रात्रौ तथा लक्षं महाशौचपरायणः ।
रात्रौ जपैकमात्रेण दक्षिणासिद्धिदा भवेत् ।।८१।।

पद्मा—अब भगवती दक्षिण कालिका के अन्य मन्त्र कहे जाते हैं। **क्रीं** यह एकाक्षरी मन्त्र है। यह मन्त्र समस्त इच्छाएँ पूर्ण करता है। **क्रीं क्रीं क्रीं** यह एक अन्य मन्त्र है। इसका उपासक सभी शास्त्रों का ज्ञाता होता है।

इसकी पूजा प्रणाली प्रातः कृत्यादि से लेकर प्राणायाम तक कार्य करके पूर्वोक्त ऋष्यादिन्यास, वर्णन्यास और कराङ्गन्यास करे। यथा–**ॐ क्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः** इत्यादि। **ॐ क्रां हृदयाय नमः** इत्यादि क्रम से अङ्गन्यास करे। अन्य सभी पूजा पूर्वलिखित विधि से करे।

तन्त्र में लिखा है छः दीर्घ में आदि में प्रणव (ॐ) लगाकर न्यास करे। अन्य सभी कार्य पूर्व की भाँति करे।

एकाक्षर मन्त्र का ध्यान **सिद्धेश्वरतन्त्र** में इस प्रकार लिखा है–देवी शव पर स्थित, अत्यन्त ही भयानक आकृति वाली, भयंकर दाँतों वाली, वर प्रदान करने वाली हास्यमुखी एवं तीन नेत्रों वाली हैं। इनके हाथों में कपाल एवं कैंची हैं। केश बिखरे हुए है और जिह्वा लपलपा रही है। देवी बार बार रक्त का पान कर रही हैं, इनके अन्य दो हाथों में वर और अभय मुद्रा है। इन मन्त्रों का पुरश्चरण एक लाख जप है।

सिद्धेश्वर तन्त्र में कहा गया है कि इस प्रकार ध्यान कर विधिपूर्वक एक लाख जप करे। साधक श्रेष्ठ जप का दशांश होम करे।

कुलचूड़ामणि में लिखा है कि इस प्रकार ध्यान कर साधक हविष्याशी एवं दिन में पवित्र होकर तथा रात्रि में एक लाख मन्त्र का जप करे। रात्रि में जप मात्र से भगवती दक्षिणा (काली) सिद्ध होती हैं ।।७५-८१।।

मन्त्रान्तरम्

कालीतन्त्रे

विद्यारत्नं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने ।
मायाद्वयं कूर्चयुग्मैन्द्रान्तं मादनत्रयम् ।।८२।।
मायाविन्द्वीश्वरयुतं दक्षिणे कालिके पदम् ।
संहारक्रमयोगेन बीजसप्तकमुद्धरेत् ।
एकविंशाक्षरो ज्ञेयस्ताराद्यः कालिकामनुः ।।८३।।
इन्द्रस्य समीपं ऐन्द्रं रेफः ।।

तथा च तन्त्रेः

माये क्रोधौ त्रयः कामा वह्न्यन्ते इतिसंयुताः ।
विन्दुयुक्ता महेशानि ! सम्बोधनपदद्वयम् ।।
सप्तबीजानि संहारै स्वाहान्तः प्रणवादिकः ।।८४।।

इत्यत्र स्फुटमाह ॥

तथा च

प्रणवं मायाद्वयं कूर्चद्वयं निजबीजत्रयं दक्षिणे कालिके निजबीजत्रयम् कूर्चद्वयं मायाद्वयम् इत्येकविंशाक्षरः । अस्याः पूजादिकं दक्षिणावत् कार्यम् । पुरश्चरणन्तु लक्षजपः तन्त्रोक्तत्वात् । होमस्तु तद्दशांशतः ।

विश्वसारेः

स्वाहान्तश्च त्रयोविंशत्यक्षरो मन्त्रराजकः ।
विना प्रणवं देवेशि ! द्वाविंशत्यक्षरी भवेत् ।।८५।।
स्वाहां विना चैकविंशत्यक्षरः कामदो पुनः ।
विंशत्यर्णा महाविद्या स्वाहाप्रणववर्जिता ।।८६।।
ध्यानपूजादिकं सर्वं दक्षिणावदुपाचरेत् ।

भैरवतन्त्रेः

कामबीजद्वयं देवि ! दीर्घहूङ्कारमेव च ।
त्र्यक्षरी सा महाविद्या चामुण्डा कालिका स्मृता ।।८७।।

तन्त्रेः

अथ वक्ष्ये महाविद्यां सिद्धविद्यां महोदयाम् ।
भैरवेण पुरा प्रोक्ता कालीहृदयसंज्ञिता ।
अस्या ज्ञानप्रभावेण कलयामि जगत्त्रयम् ।।८८।।

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य ह्ल्लेखाबीजमुद्धरेत् ।
रतिबीजं समुद्धृत्य प-पञ्चम-भगान्वितम् ।।८९।।
ठद्वयेन समायुक्ता विद्याराज्ञी प्रकीर्तिता ।।९०।।

रतिबीजं निजबीजम् ।

तथा च चामुण्डातन्त्रेः

रत्याद्या कालिका पातु द्वाविंशाक्षररूपिणी ।

इति चामुण्डातन्त्रस्थ-कवचप्रतिपादनात् । तेन प्रणवो मायाबीजं निजबीजं प पञ्चमो मकारः भग एकारः वह्निवल्लभा ।

अस्य पूजाप्रयोगः

प्रातः कृत्यादि प्राणायामान्तं कर्म विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ।

यथाः

अस्य मन्त्रस्य भैरवऋषिर्विराट्छन्दः सिद्धकाली ब्रह्मरूपा भुवनेश्वरी देवता निजबीजं बीजं लज्जाबीजं शक्तिः । वर्णन्यासकराङ्गन्यासौ च दक्षिणावत् ।

ध्यानन्तुः

खड्गाद्भिन्नेन्दुखण्डस्त्रवदमृतरसाप्लाविताङ्गी त्रिनेत्रा
सव्ये पाणौ कपालाद् गलद् सृजमथो मुक्तकेशी पिबन्ती ।
दिग्वस्त्रा बद्धकाञ्ची मणिमयमुकुटाद्यैर्युता दीप्तजिह्वा
पायान्नीलोत्पलाभा रविशशिविलसत्कुण्डलालीढ़पदा ।।९१।।

एवं ध्यात्वा दक्षिणावत् सर्वं कार्यम् । पुरश्चरणन्तु एकविंशतिसहस्त्रजपः ।

तदुक्तं कालीतन्त्रेः

जपेद्विंशतिसाहस्यं सहस्त्रैकेन संयुतम् ।
होमयेत्तद्दशांशेन मृदुपुष्पेण मन्त्रवित् ।।९२।।

पद्मा—भगवती काली का अन्य मन्त्र हे कमलानने ! विद्यारत्न नामक मन्त्र को कहता हूँ, सुनो । **ॐ ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं** यह भगवती कालिका का २१ अक्षर का मन्त्र है । यह मन्त्र **काली तन्त्र** मे कहा गया है । तन्त्र में भी यही मन्त्र कहा गया है । दक्षिण कालिका की पूजा की भाँति इसकी भी पूजा प्रणाली कही गयी है । इसका पुरश्चरण एक लाख जप है । जप का दशांश होम करे ।

विश्वसार तन्त्र में लिखा है कि इस मन्त्र से स्वाहा जोड़ने पर तेइस अक्षर का मन्त्र बनता है। यथा–**ॐ ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।** हे देवेशि! इस मन्त्र से प्रणव (ॐ) हटा देने पर बाइस अक्षर का मन्त्र होता है। यथा **ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा।** बिना स्वाहा और प्रणव (ॐ) के बीस (२०) अक्षर का मन्त्र बनता है। यथा **ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्री क्री क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं।** इन सभी मन्त्रों के ध्यान पूजन आदि सभी दक्षिणा काली की भाँति ही हैं।

भैरवतन्त्र में लिखा है कि हे देवि! **क्रीं क्रीं हूँ** यह तीन अक्षर का मन्त्र चामुण्डा काली की साधना के लिए कहा गया है।

तन्त्र में कहा गया है कि हे शिवे! अब मैं सिद्धविद्या, महाविद्या महोदया का मन्त्र कहता हूँ। कालीहृदय नामक इस महाविद्या को पूर्वकाल में भैरव ने कहा था। इसके ज्ञान के प्रभाव से जगत् का फलन (सृष्टि) करने में समर्थ हो जाता हूँ। **ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा** यह विद्याराज्ञी नामक मन्त्र कहा जाता है। **चामुण्डा तन्त्र** में रत्याद्या कालिका पातु द्वाविंशाक्षररूपिणी इस प्रकार का कवच प्रतिपादित हुआ है। इस प्रकार **ॐ ह्रीं क्रीं में स्वाहा** इस मन्त्र का उद्धार होता है।

इसका पूजा प्रयोग इस प्रकार है कि प्रातः आदि कृत्य कर प्राणायाम तक कर्म कर ऋष्यादि न्यास करे। यथा–

मस्तके शिरसि भैरवऋषये नमः। मुखे विराट्छन्दसे नमः। हृदि सिद्धकाली ब्रह्मरूपायै भुवनेश्वरी देवतायै नमः। गुह्ये क्रीं बीजाय नमः। पादयोः ह्रीं शक्तये नमः। इसके पश्चात् दक्षिण कालिका की पद्धति के अनुसार वर्णन्यास और कराङ्गन्यास कर ध्यान करे। यथा–खड्गोद्भिन्न चन्द्रमण्डल से निकलती हुई अमृतधारा से जिनका शरीर भीगा हुआ हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, बाएं हाथ में नरकपाल है और जो उसी कपाल में से गिरते हुए रक्त को पी रही हैं, जिनके केश बिखरे हुए हैं जो नग्न वेश में है, जिनकी कटि में काञ्ची (करधनी) सिर पर मणियों का मुकुट है, जिह्वा लपलपाती हुई अग्नि के समान दीप्तियुक्त है, शरीर की कान्ति नीले कमल के समान है, दोनों कानों के कुण्डल के रूप में चन्द्र एवं सूर्य सुशोभित है जो आलीढ़ पद पर खड़ी हैं ऐसी देवी हमारी रक्षा करें।

इस प्रकार ध्यान कर दक्षिणा कालिका की पद्धति के अनुसार सभी कार्य करे। इक्कीस हजार जप से इस मन्त्र का पुरश्चरण होता है।

कालीतन्त्र में ही कहा गया है मन्त्र का २१००० (इक्कीस हजार) जप करे। जप का दशांश शिरीष के पुष्पों से होम करे।

मन्त्रान्तरम्

विश्वसारेः

मूलबीजं ततो माया लज्जाबीजं ततः परम् ।
महाविद्या महाकाल्या महाकालेन भाषिता ।।९३।।
वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं रतिबिन्दुसमन्वितम् ।
एतत्त्रयं वह्निवल्लभा । निजबीजत्रयं फट् वह्निवल्लभा ।
निजबीजत्रयं कूर्चं लज्जा पुनस्तान्येव वह्निवल्लभा ।
वाग्भवं नमो मूलबीजं पुनस्तदेव कालिकायै वह्निवल्लभा ।।

एतासां पूजाप्रयोगः

प्रातः कृत्यादि प्राणायामान्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ।

यथा दक्षिणामूर्त्तिर्ऋषिः पंक्तिश्छन्दः कालिका देवता । शिरसि दक्षिणामूर्त्ति ऋषये नमः । मुखे पंक्तिच्छन्दसे नमः । हृदि कालिकायै देवतायै नमः ततोध्यानम्–

चतुर्भुजा कृष्णवर्णा मुण्डमालाविभूषिता ।
खड्गच्च दक्षिणे पाणौ विभ्रतीन्दीवरद्वयम् ।।९४।।
कर्त्रीञ्च खर्परञ्चैव क्रमाद्वामेन विभ्रती ।
द्यां लिखन्तीं जटामेकां विभ्रती शिरसा स्वयम् ।।९४।।
कर्त्रीञ्च खर्परञ्चैव क्रमाद्वामेन विभ्रती ।
द्यां लिखन्तीं जटामेकां विभ्रती शिरसा स्वयम् ।।९५।।
मुण्डमालाधरा शीर्षे ग्रीवायामथ चापरम् ।
वक्षसा नागहारञ्चविभ्रती रक्तलोचना ।।९६।।
कृष्णवस्त्रधरा कट्यां व्याघ्राजिनसमन्विता ।
वामपादं शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पदम् ।।९७।।
विलाप्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहाना शवं स्वयम् ।
साट्टहासा महाघोररावयुक्त सुभीषणा ।।९८।।

एवं ध्यात्वा अन्यत् सर्वं दक्षिणावत् कुर्यात् । पूर्वोक्तानां मन्त्राणां सर्वं दक्षिणावत् कार्यम् । अस्य पुरश्चरणं लक्षद्वयजपः । अन्यसां मन्त्रवर्णसंख्यलक्षजपः ।

पद्मा—अब अन्य मन्त्र कहे जा रहे हैं । विश्वसार तन्त्र में लिखा है कि क्रीं ह्रीं ह्रीं यह महाविद्या काली का मन्त्र स्वयं महाकाल ने कहा है । क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा । क्रीं क्रीं क्रीं फट् स्वाहा । क्रीं क्रीं क्रीं हूं ह्रीं क्रीं क्रीं क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा । ऐ नमः क्रीं

ऐं नमः क्रीं कालिकायै स्वाहा । इन समस्त मन्त्रों की पूजा प्रणली इस प्रकार है कि सर्वप्रथम प्रातः कृत्य से प्राणायाम तक के कर्म कर ऋष्यादिन्यास करे। यथा–**शिरसि दक्षिणामूर्ति ऋषये नमः, मुखे पंक्तिश्छन्दसे नमः, नाभौ ह्रीं शक्तये नमः, हृदि कालिकायै देवतायै नमः ।** इसके पश्चात् ध्यान करे–देवी चार भुजा वाली, कृष्णवर्णा है तथा मुण्डों की माला से विभूषित हैं। दाहिनी ओर के दोनों हाथों में खड्ग और दो नीलकमल तथा बायीं ओर के दोनों हाथ में कैंची और खर्पर लिये हुए हैं। देवी के मस्तक मे दो जटाएं है जिनमें से एक आकाश को स्पर्श कर रही है। सिर तथा गले मे दो मुण्ड की मालाएं हैं और वक्षस्थल पर नागहार धारण किए हैं। नेत्र लाल हैं, कटि में कृष्णवस्त्र और व्याघ्रचर्म है। यह शव के हृदय पर बाँयाँ पैर और सिंह की पीठ पर दाहिना पैर रखकर विराजमान हैं। देवी मद्यपान, अट्टहास और भीषण शब्द कर रही हैं। इनकी आकृति भयानक है।

इस प्रकार ध्यान कर अन्य सभी कर्म दक्षिण कालिका की पद्धति से करे। पूर्वोक्त मन्त्रों के सभी कर्म दक्षिणा काली की भाँति करे। इसका पुरश्चरण दो लाख जप है। अन्य मन्त्रों में जिनते भी वर्ण होंगे उतने ही लाख जप से उनका पुरश्चरण होगा ॥९३-९८॥

निजबीजद्वयं मायाद्वयं दक्षिणेकालिके वह्निवल्लभा ।

निजं कूर्चं लज्जा दक्षिणे कालिके फट्

मूलबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं दक्षिणे कालिके पूर्वषड्बीजानि वह्निवल्लभा ।

एतासां पूजा प्रयोगः

प्रातः कृत्यादिप्राणायामान्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। एतासां दक्षिणामूर्त्तिऋषिः पंक्तिश्छन्दः दक्षिण कालिका देवता। अन्यत् सर्वं दक्षिणावत् ।

पद्मा—**क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा । क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके फट् । क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कोलिके क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं स्वाहा ।** इन सभी मन्त्रों की पूजा विधि यह हैं कि प्रातः कृत्य से प्राणायाम तक के कर्म कर ऋष्यादि न्यास करे। यथा–**शिरसि दक्षिणामूर्तिऋषये नमः, मुखे पंक्तिश्छन्दसे नमः, हृदये दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः ।** अन्य सभी पूजाकर्म दक्षिणकालिका की भाँति करे।

निजबीजं वह्निवल्लभा। भैरवोऽस्य ऋषिः । निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जायुगं वह्निवल्लभा। निजबीजं कूर्चं लज्जा वह्निवल्लभा । अस्य पञ्चवक्त्र ऋषिः । मूलत्रयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं वह्निवल्लभा । मूल बीजं दक्षिणे कालिके वह्निवल्लभा निजबीजं कूर्चद्वयं मायां पुनस्तानि वह्निवल्लभा । मूलद्वयं कूर्चद्वयं

लज्जाद्वयं पुनस्तान्येव वह्निवल्लभा। हृदयं वाग्भवं मूलद्वयं कालिकायै उद्वयम्। हृदयं पाशद्वयं अंकुशद्वयं दक्षिणावत्। पुरश्चरण लक्षजापः। एतासां विद्यानां प्रमाणं विश्वसारेः

अथपञ्चाक्षरीं वक्ष्ये शृणुष्व कमलनने।
प्रजापतिं समुद्धृत्य वह्नयारूढ़ं ततः प्रिये!।।९९।।
चतुर्थस्वरसंयुक्तं नादबिन्दुविभूषितम्।
बीजमत्रयं क्रमेणैव तदन्ते वाह्नसुन्दरी।।१००।।
पञ्चाक्षरी महाविद्या कथिता पद्मयोनिना।
षडक्षरीं महाकालीं वक्ष्यामि शृणु पार्वती।।१०१।।
बीजत्रयं समुद्धृत्य अस्त्रमन्त्रं समुद्धरेत्।
वह्निजायावधिः प्रोक्ता विद्या त्रैलोक्यमोहिनी।।१०२।।
अष्टाक्षरी महाविद्या कथ्यते परमेश्वरि!।
बीजत्रयं क्रमेणैव पुनर्बीजत्रयं सुधीः।।१०३।।
स्वाहान्ता कथिता विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा।
एकादशाक्षरी विद्या कथ्यते परमेश्वरि!।।१०४।।
वाग्भवं हृदयं पश्चाद्वह्नयारूढं प्रजापतिम्।
चतुर्थस्वरसंयुक्तं विन्दुनादविभूषितम्।।१०५।।
द्विगुणञ्च ततः कृत्वा ङेऽन्तञ्च कालिकापदम्।
स्वाहान्ता कथिता विद्या प्रिये! एकादशाक्षरी।।१०६।।
ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्तिश्छन्दः पंक्तिरूदाहृतम्।
परात्परतरा शक्तिः कालिका देवता स्मृता।।१०७।।
एकादशाक्षरी विद्या कालिकायाः सुदुर्लभा।
लक्षद्वयं जपेद्विद्यां पुरश्चरणकर्मणि।
अन्यासां वर्णलक्षं स्यात् कथितं पद्मयोनिना।।१०८।।

अन्यासामुक्तपञ्चाक्षरीप्रभृतीनाम्।

अस्या ध्यानम्

चतुर्भुजां कृष्णवर्णामित्यादि।

पद्मा—क्रीं स्वाहा। इसके ऋषि भैरव हैं।

क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा। इस पञ्चाक्षर मन्त्र के ऋषि पञ्चवक्त्र हैं।

क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा।

क्रीं हूं हूं ह्रीं क्रीं हूं हूं क्रीं स्वाहा।

क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

नमः ऐं क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा।

नमः आँ आँ क्रों क्रों फट् स्वाहा कालिके हूं।

इन समस्त मन्त्रों का ऋष्यादिन्यास व पूजन दक्षिण कालिका की पद्धति के अनुसार करे। एक लाख जप से इनका पुरश्चरण होता है।

इस महाविद्या का प्रमाण **विश्वसारतन्त्र** में इस प्रकार लिखा है–हे कमलानने अब पञ्चाक्षर मन्त्र कहता हूँ सुनो! हे प्रिये! **क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा** यह पञ्चाक्षर मन्त्र स्वयं पद्मयोनि ब्रह्माजी ने कहा है। हे पार्वति! महाकाली का षडक्षरी मन्त्र कहता हूँ सुनो। **क्रीं क्रीं क्रीं फट् स्वाहा** यह त्रैलोक्यमोहिनीविद्या कही गयी है। हे परमेश्वरि! अब अष्टाक्षरी महाविद्या कहता हूँ। **क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा** यह अष्टाक्षर मन्त्र धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रदान करता है। हे परमेश्वरि! अब एकादशाक्षरी मंत्र को कहता हूँ। **ऐं नमः क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा।** इस मन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्द पंक्ति, शक्ति ह्रीं और देवता कालिका हैं। भगवती कालिका की यह एकादशाक्षरी विद्या अत्यन्त ही दुर्लभ है। इस मन्त्र के पुरश्चरण में दो लाख मन्त्र का जप करना चाहिए। पञ्चाक्षर इत्यादि अन्य मन्त्रों के पुरश्चरण में मंत्र में जितने वर्ण हों उतना जप करना चाहिए। इस मंत्र की पूजा पूर्वोक्त **चतुर्भुजा कृष्णवर्णा** का ध्यान करना चाहिए।

मूलबीजं ततो मायां लज्जाबीजं ततः परम्।
दक्षिणे कालिके चेति तदन्ते वह्निसुन्दरी ।।१०९।।
एकादशाक्षरी काली चतुर्वर्गफलप्रदा।
दशाक्षरी महाविद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ।।११०।।
कवचं मूलबीजाद्यं तदन्ते भुवनेश्वरीम्।
दक्षिणे कालिके चेति अस्त्रान्ता समुदीरिता ।।१११।।

पद्मा—क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणेकालिके स्वाहा। भगवती काली का यह एकादशाक्षर मंत्र, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रदान करने वाला है। **क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके फट्** यह मंत्र भी चतुर्वर्ग का फल प्रदान करने वाला है ।।१०९-१११।।

अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां विंशतिवर्णिकाम्।
यस्याः प्रसादमात्रेण भवेद् भूमिपुरन्दरः ।।११२।।

मूलबीजद्वयं ब्रूयात्ततः कूर्चद्वयं वदेत् ।
लज्जाद्वयं समुद्धृत्य सम्बुद्ध्यन्तपदद्वयम् ।।११३।।
पूर्ववत् षट् तथा बीजान्यन्ते च वह्निसुन्दरी ।
ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्त्तिः पंक्तिश्छन्द उदाहृतम् ।
देवता कथिता सद्भिः काली दक्षिणपूर्विका ।।११४।।

पद्मा—अब बीस अक्षर का मन्त्र कहा जाता है। इस मन्त्र के प्रभाव से साधक पृथ्वी लोक में इन्द्र के समान हो जाता हैं **क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा** । इस मंत्र के ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्द पंक्ति और देवता दक्षिण काली हैं ॥११२-११४॥

अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् ।
निजबीजं समुद्धृत्य तदन्ते वह्निसुन्दरी ।।११५।।
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तः सर्वतन्त्रसमन्वितः ।
अष्टाक्षरी तु या प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।।११६।।
निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं ततः ।
स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वकामफलप्रदा ।।११७।।
निजं कूर्चं तथा लज्जा तदन्ते वह्निसुन्दरी ।
पञ्चाक्षरी महाविद्या पञ्चवक्र ऋषिः स्मृतः ।।११८।।
नवाक्षरीं महाविद्यां शृणुष्व कमलानने !
निजबीजत्रयं कूर्चयुग्मं लज्जायुगं ततः ।।११९।।
स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वसम्पत्करी मता ।।१२०।।

पद्मा—अब तीनों भुवनों की स्वामिनी भगवती काली का मन्त्र कहता हूँ। **क्रीं स्वाहा** इस मन्त्र के ऋषि भैरव हैं। अब समस्त तन्त्रों मे गोपनीय अष्टाक्षरी मन्त्र कहता हूँ। **क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा** । यह मन्त्र सभी कामनाओं का फल देने वाला है। **क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा** । इस पञ्चाक्षरी महाविद्या के पञ्चवक्र ऋषि कहे गए हैं। हे कमलानने ! अब नवाक्षरी महाविद्या को सुनो। **क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा** । इसका उपासक सभी प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त करता है ॥११५-१२०॥

अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां तं च नवाक्षरीम् ।
मूलबीजं समुद्धृत्य सम्बुद्ध्यन्तपदद्वयम् ।।
स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वशत्रुक्षयङ्करी ।।१२१।।

पद्मा—अब अन्य नवाक्षरी विद्या कहता हूँ। **क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा** इस नवाक्षर के मन्त्र द्वारा साधक अपने समस्त शत्रुओं का विनाश कर देता है ॥१२१॥

अथ चाष्टाक्षरीं विद्यां शृणुष्व कमलानने ।

निजबीजं ततः कूर्चं ततो मायां समुद्धरेत्।
पुनस्तानि समुद्धृत्य स्वाहान्ता मोक्षदायिनी ।।१२२।।

पद्मा—हे कमलानने ! अब अष्टाक्षरी विद्या (मन्त्र) को कहता हूँ सुनो। **क्रीं हूं ह्रीं क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा** इस अष्टाक्षर मन्त्र के जप से साधक मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥१२२॥

अथापरां प्रवक्ष्यामि दशतत्वसमन्विताम्।
मूलद्वयं कूर्चयुग्मं तथा लज्जाद्वयं ततः ।।१२३।।
पुनस्तान्येव बीजानि तदन्ते वह्निसुन्दरी।
चतुर्दशाक्षरी विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ।।१२४।।
ब्रह्मत्रयं समुद्धृत्य रतिवह्निसमन्विताम्।
नादविन्दुसमायुक्तं लज्जाकूर्चद्वयं ततः ।।१२५।।
पुनः क्रमेण चोद्धृत्य वह्निजायावधिर्मनुः।
षोडशीयं समाख्याता विद्या कल्पद्रुमोपमा ।।१२६।।

मायातन्त्रेः

हृदयं वाग्भवं देवि! निजबीजयुगं ततः।
कालिकायै पदं चोक्त्वा तदन्ते वह्निसुन्दरी ।।१२७।।

तन्त्रान्तरेः

पाशाङ्कुशौ द्वेधा फट् स्वाहा कालि कालिके।
दीर्घतनुच्छन्द कालीमनुः पञ्चदशाक्षरः।
एतेषां पूजनं देवि! दक्षिणावत्सुरेश्वरि!।।१२८।।
लक्षसंख्यं जपं कुर्यात् पुरश्चरणसिद्धये।

एतासां पूजायन्त्रं कालीतन्त्रे—

आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्वह्निर्न्यसेत्।
ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम्।।१२९।।
ततो वृत्तं समालिख्य लिखेदष्टदलं ततः।
वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेद्भुपूरमेककम्।।१३०।।

कुमारी कल्पेः

मध्ये तु वैन्दवं चक्रं बीजमायाविभूषितम्।।१३१।।

पद्मा—अब दशतत्त्व से युक्त अन्य मन्त्र कहता हूँ। **क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।** यह चतुर्दशाक्षरी मन्त्र धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को देने वाला है। **क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं स्वाहा** यह सोलह अक्षर का मन्त्र सभी प्रकार की सम्पत्ति प्रदान करता है। **मायातन्त्र** में लिखा है कि **नमः ऐं क्रीं**

क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा । तन्त्रान्तर में लिखा है **नमः आँ आँ क्रों क्रों फट् स्वाहा कालि कालिके हूं ।** दक्षिण कालिका की पूजा पद्धति के अनुसार ही उक्त मंत्रो की पूजा करे। एक लाख मन्त्र जप से पुरश्चरण होता है। इनके पूजायन्त्र के विषय में **काली तन्त्र** में लिखा है सर्वप्रथम एक त्रिकोण बनाये। उसके बाहर एक और त्रिकोण बनाकर तीन अन्य त्रिकोण बनाये। पाँच त्रिकोणों के बाहर एक वृत्त उसके बाहर अष्टदलपद्म तदुपरान्त भूपुर बनाये। **कुमारी कल्प** में लिखा है कि मध्य में विन्दु चक्र अंकित कर उसे **क्रीं** और **ह्रीं** से शोभित करे ॥१२३-१३१॥

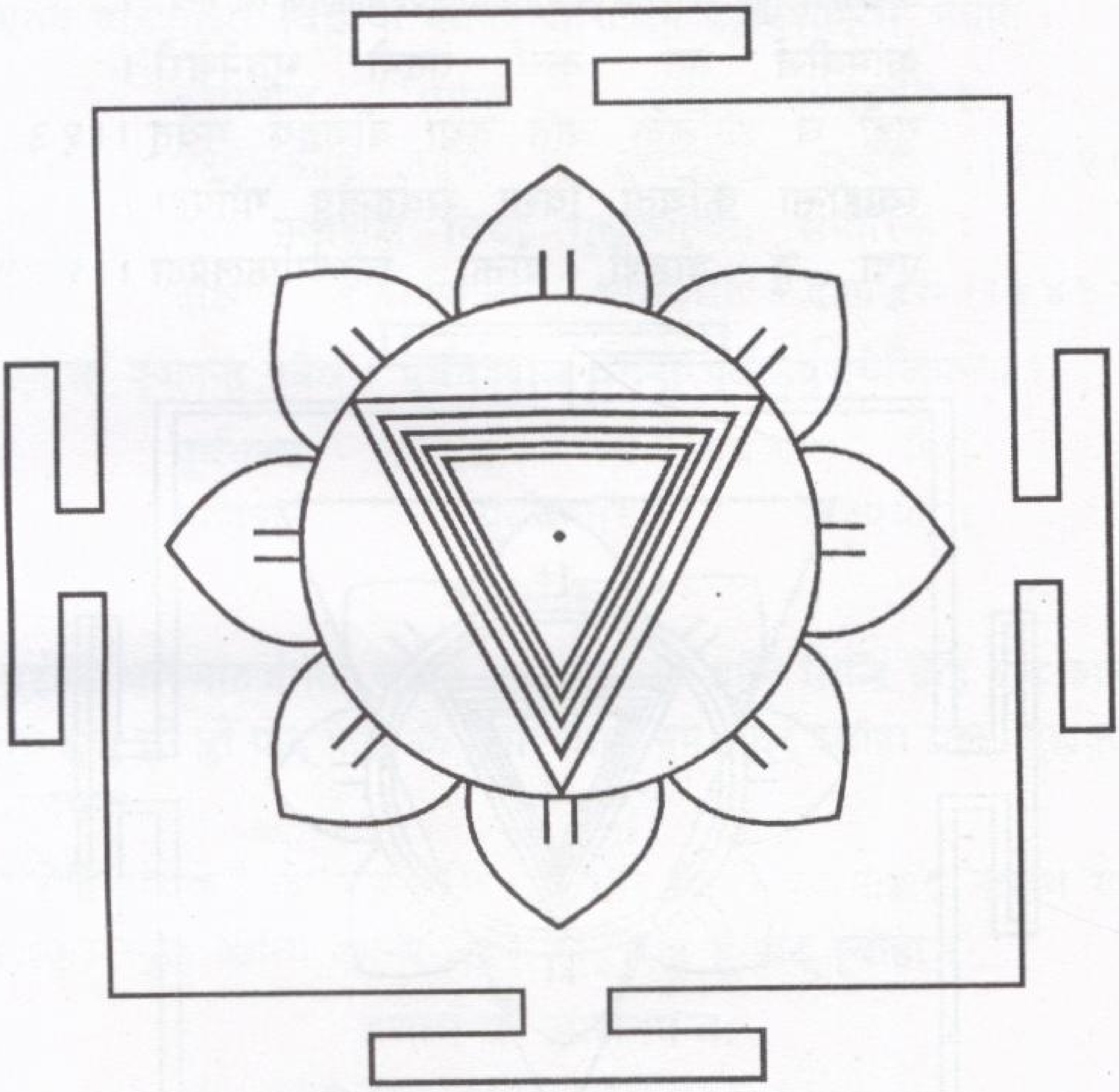

अथ गुह्य काली

तत्र विश्वसारे

अथ वक्ष्ये महेशानि! विद्यां सर्वफलप्रदम्।
चतुर्वर्गप्रदां साक्षान्महापातकनाशिनीम्।।१३२।।
सर्वसिद्धिप्रदां नित्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्।
गुह्यकालीं महाविद्यां त्रैलोक्ये चातिदुर्लभाम्।।१३३।।
इन्द्रादिरूढं वर्गाद्यं रतिबिन्दुसमन्वितम्।

त्रिगुणं च ततः कृत्वा ईशानं च समुद्धरेत् ।।१३४।।
षष्ठद्वयसमायुक्तं नादबिन्दुकलान्वितम् ।
द्विगुणं च ततः कृत्वा ईशानद्वयमुद्धरेत् ।।१३५।।
वामाक्षि वह्निसंयुक्तं नादबिन्दुकलायुतम् ।
तद्गुह्ये कालिके प्रोक्त्वा चाथवा दक्षिणे वदेत् ।।१३६।।
सप्तबीजं ततः पूर्वक्रमेण योजयेत्ततः ।
वह्निजायावधिः प्रोक्ता विद्या त्रैलोक्यमोहिनी ।।१३७।।
अथवेत्वि गुह्ये कालिके बीजद्वयं दक्षिणे कालिके वा मन्त्रः ।
कामबीजं ततः कूर्चं तदन्ते भुवनेश्वरी ।
गुह्ये च कालिके चेति तथा बीजद्वयं भवेत् ।।१३८।।
स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।
एषा तु षोडषी प्रोक्ता चतुर्वर्गफलप्रदा ।।१३९।।

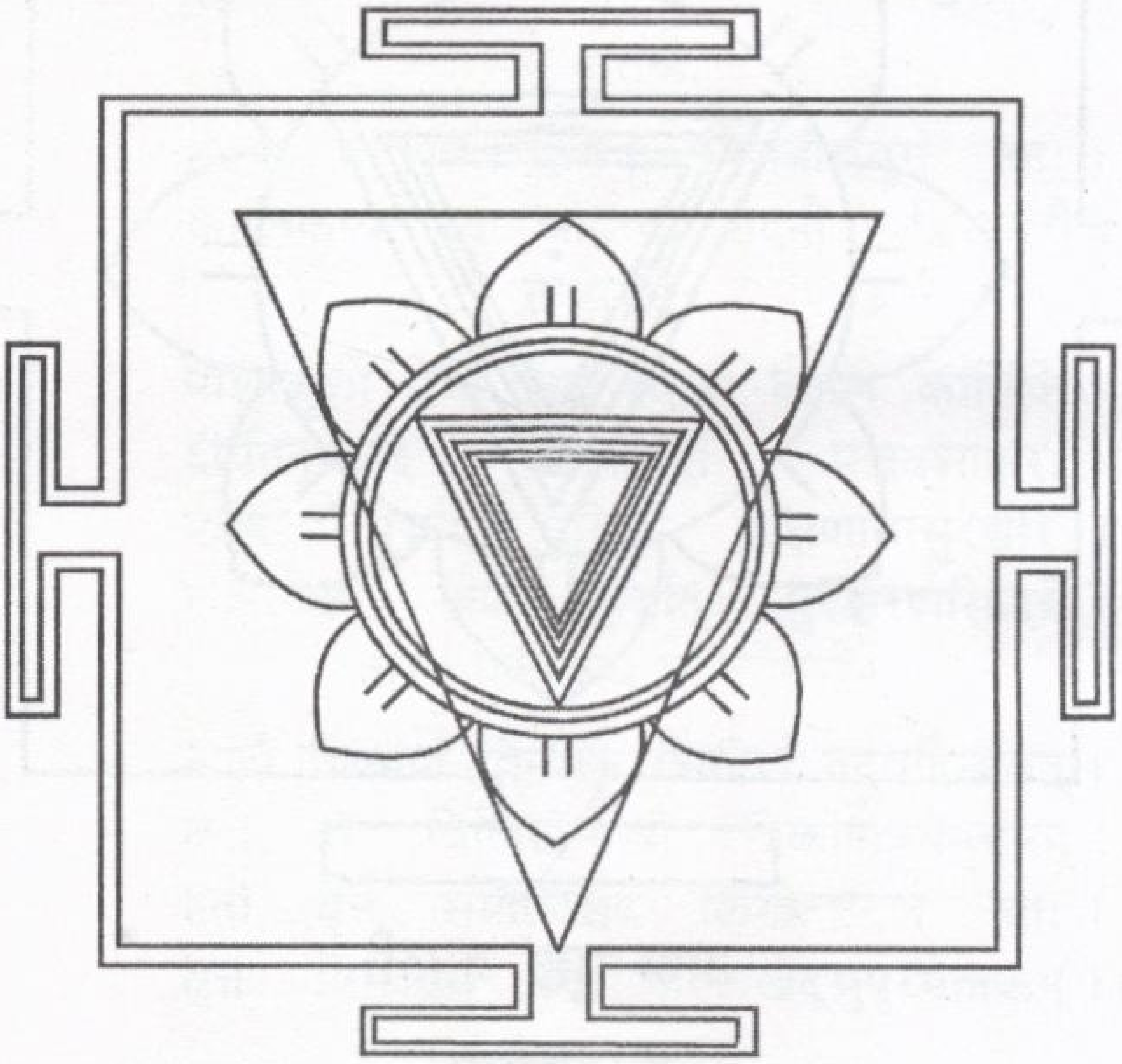

(गुह्यकाल्यादि यन्त्र चित्रम्)

अस्यार्थः

आदौ निजबीजं ततः कूर्चं माया ततः सम्बोधनपदद्वयम् । ततो निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं वह्निवल्लभा । कामबीजद्वयं हित्वा भवेद्विद्या चतुर्दशी । अस्य मन्त्रस्येति शेषः ।

सप्तबीजं पुरा प्रोक्तं गुह्येऽन्ते कालिके पुनः।
स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता।।१४०।।

एषापि चतुर्दशाक्षरी। अस्या नामादिपदं हित्वा चेत्तदा दक्षिणे पञ्चदशाक्षरी। तथा च–

दक्षिणे पदमाभाष्य भवेत् पञ्चदशाक्षरी।
तथाः
कामबीजं परित्यज्य अथवा षोडशाक्षरी।।१४१।।

एतेन षोडशाक्षर विद्यायां कामबीजाभावेन पञ्चदशाक्षरी भवति।

कामबीजं समुद्धृत्य सम्बुद्ध्यन्तपदद्वयम्।
पुनः कामं तदन्ते च दद्याद्वह्नेश्च सुन्दरीम्।।१४२।।
एषा नवाक्षरी विद्या गुह्यकाल्याः समीरिता।
दक्षिणे पदमाभाष्य भवेद्विद्या दशाक्षरी।।१४३।।

एतासां पूजनन्तु तत्रैव। पूर्ववन्न्यास वर्गन्तु पूर्ववत्पूजयेच्छिवाम्।

पूर्ववच्च जपेद्विद्यां सर्वं पूर्ववदेव हि।
बलिदानं पूर्ववत्परि कल्पयेत्।

बलिमन्त्रस्तुः

एह्येहि जगन्मातर्जगतां जननि गृह्ण गृह्ण मम बलिं सिद्धिं देहि देहि शत्रुक्षयं कुरु कुरु हूं हूं ह्रीं ह्रीं फट् फट् ॐ कालिकायै नमः फट् स्वाहा यद्वा, गुह्यकाल्या अयं बलिमन्त्रः

एह्येहि गुह्यकालिके मम बलिं गृह्ण गृह्ण मम शत्रून् नाशय नाशय खादय खादय स्फुर स्फुर छिन्धि छिन्धि सिद्धिं देहि देहि हूँ फट् स्वाहा।

तथायं वा आसनमन्त्रः

ॐ सदाशिवमहाप्रेताय गुह्यकाल्यासनाय नमः।

पद्मा—अब भगवती गुह्यकाली का मन्त्र कहा जाता है। **विश्वसार तन्त्र** में लिखा है कि हे महेशानि! अब मै समस्तफलदायक, धर्मार्थकाममोक्ष प्रदायक, समस्त महापातकों का नाश करने वाली, सभी सिद्धियों को देने वाली नित्या, भोग एवं मोक्ष को प्रदान करने वाली, तीनों लोक में अत्यन्त ही दुर्लभ महाविद्या गुह्यकाली को कहता हूँ। **क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं गुह्ये कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा**। यह एकविंशाक्षर (२१) का मन्त्र है। अथवा **क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा** यह २२ अक्षर का मन्त्र है। **क्रीं हूं ह्रीं गुह्य कालिके क्रीं**

क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा । यह सोलह वर्ण का मन्त्र है। इस मन्त्र के उपासक को चतुर्वर्ग का फल प्राप्त होता है। **क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं गुह्यकालिके स्वाहा** यह समस्त तन्त्रों में गोपनीय चतुर्दशाक्षर मन्त्र है। इस मन्त्र में **गुह्ये** पद को हटाकर **दक्षिणे** पद जोड़ने पर पञ्चदशाक्षर मन्त्र होता है। यथा **क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा ।** षोडशाक्षर मन्त्र में प्रथम बीज **क्रीं** का परित्याग कर देने पर पञ्चदशाक्षर मन्त्र होता है। यथा **हूं ह्रीं गुह्ये कालिके क्रीं क्रीं हूं ह्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा । क्रीं गुह्ये कालिके क्रीं स्वाहा** यह गुह्यकाली का दशाक्षर मन्त्र है। **क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं स्वाहा** यह देवी का दशाक्षर मन्त्र है। दक्षिण काली की पूजा पद्धति के अनुसार पूजन एवं न्यास करके बलि प्रदान करे। बलि का मन्त्र **है—एह्येहि जगन्मातर्जगतां जननि गृह्ण गृह्ण मम बलिं सिद्धिं देहि देहि शत्रुक्षयं कुरु कुरु हूं हूं ह्रीं ह्रीं फट् फट् ॐ कालिकायै नमः फट् स्वाहा ।** गुह्यकाली का बलि मन्त्र—**एह्येहि गुह्यकालिके मम बलिं गृह्ण गृह्ण मम शत्रून् नाशय नाशय खादय खादय स्फुर स्फुर छिन्धि छिन्धि सिद्धिं देहि हूं फट् स्वाहा ।**

आसन मन्त्र—**ॐ सदाशिव महाप्रेताय गुह्यकाल्यासनाय नमः** ।।१३२-१४३।।

अथ भद्रकाली

भद्रकालीमन्त्राः

भद्रकाल्यादयो विद्याः कथ्यन्ते शृणु पार्वति !।
कामबीजादिकं बीजं सर्वं पूर्वापरे यजेत् ।।१४४।।
भद्रकाली तथा ङेन्ता बीजमध्ये नियोजयेत् ।
स्वाहान्ता कथिता विद्या विंशद्वर्णात्मिका परा ।।१४५।।
चतुर्वर्गप्रदा विद्या भद्रकाली शुभावहा ।
सप्तबीजं समुद्धृत्य श्मशानकालि चेत्तथा ।।१४६।।
पुनर्बीजं क्रमेणैव स्वाहान्ता सर्वसिद्धिदा ।
विंशत्येकाधिका विद्या श्मशानकालिका मता ।।१४७।।
बीजानि चोच्चरेत्पूर्वं महाकालिपदं ततः ।
तदन्ते सप्तबीजानि स्वाहान्ता सर्वसिद्धिदा ।
विंशत्यर्णा महाविद्या महाकाल्याः प्रकीर्तिता ।।१४८।।

एतासां पूजनं जपश्च दक्षिणावत् । विशेषस्तु भूपुरे इन्द्रादीन्वज्रादींश्च पूजयेत् ।

भूपुरस्य पूर्वादि चतुर्द्वारि ॐ विष्णवे नमः, ॐ शिवाय नमः, ॐ सूर्याय नमः, ॐ गणेशाय नमः इति पूजयेत् ।

तद्यथाः

भूगृहे लोकपालांश्च तदस्त्राणि च तद्बहिः ।
भूपुरे च चतुर्दिक्षु पूजयेत् क्रमतः सुधीः ।
विष्णुं शिवं तथा सूर्यं गणेशं पूजयेत्ततः ।।१४९।।

पूजा यन्त्रम्

त्रिकोणं चैव षट्कोणं नवकोणं मनोहरम् ।
त्रिवृत्तं साष्टपत्रं च सकिंजल्कसमन्वितम् ।।१५०।।
भूपुरत्रितयारूढं योनिमण्डलमण्डिताम् ।
त्रिपञ्चारमिदं प्रोक्तं सर्वतन्त्रे प्रकीर्तितम् ।।१५१।।

त्रिकोणं त्रिकोणाकारमित्यर्थः ।।

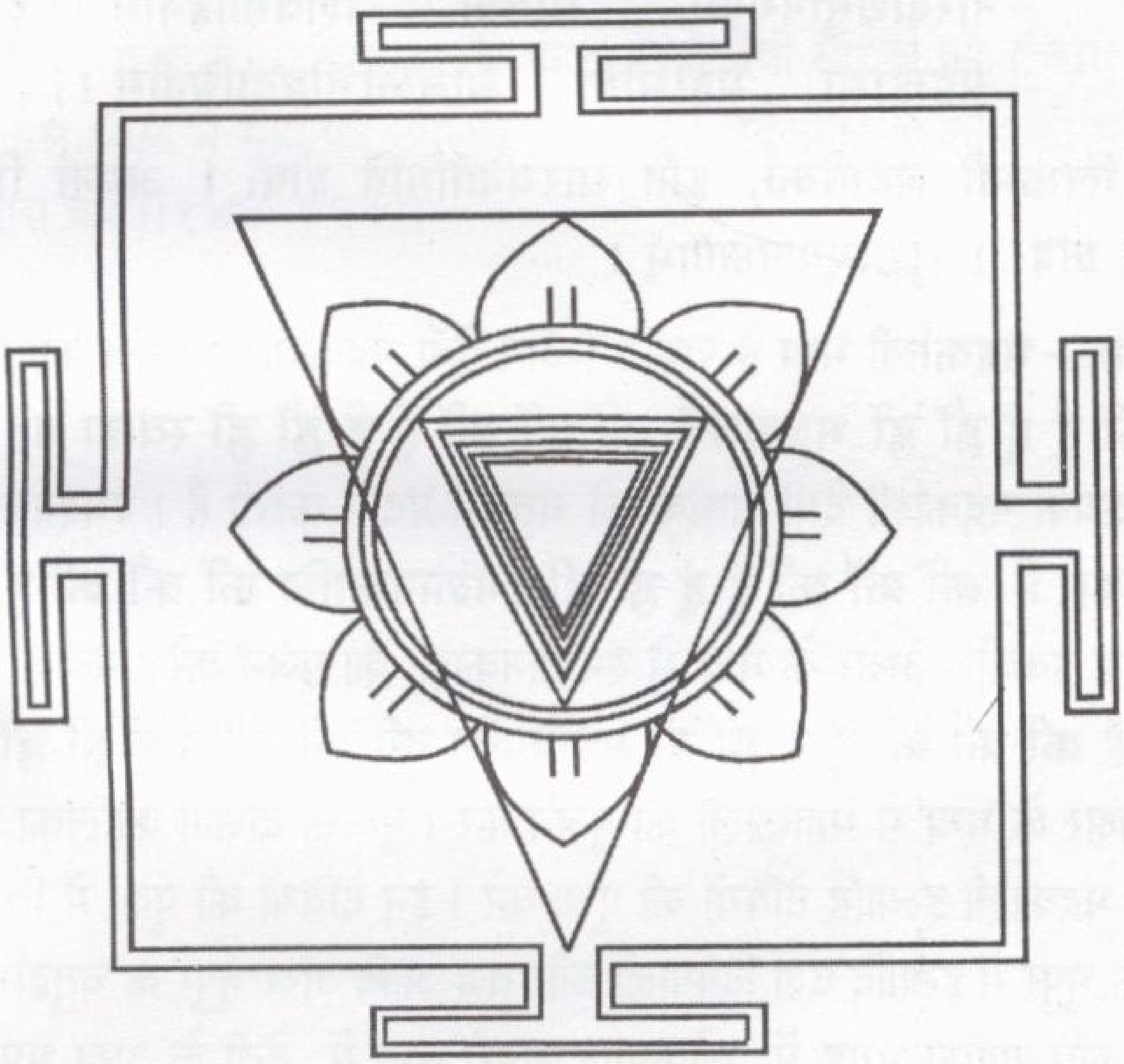

(भद्रकाली पूजा यन्त्रम्)

ध्यानन्तुः

महामेघप्रभां देवीं कृष्णवस्त्रपिधायिनीम् ।
लोलजिह्वां घोरदंष्ट्रां कोटराक्षीं हसन्मुखीम् ।।१५२।।
नागहारलतोपेतां चन्द्रार्द्धकृतशेखराम् ।
द्यां लिखन्तीं जटामेकां लेलिहासनासवं स्वयम् ।।१५३।।

नागयज्ञोपवीताङ्गीं नागशय्यानिषेदुषीम् ।
पञ्चाशन्मुण्डसंयुक्तवनमालां महोदरीम् ।।१५४।।
सहस्रफण संयुक्तमनन्तं शिरसोपरि ।
चतुर्दिक्षु नागफणावेष्टितां गुह्यकालिकाम् ।।१५५।।
तक्षक सर्पराजेन वामकङ्कणभूषिताम् ।
अनन्त नागराजेन कृतदक्षिणकङ्कणाम् ।।१५६।।
नागेन रसनाहारकल्पितां रत्ननूपुराम् ।
वामे शिवस्वरूपं तत कल्पितं वत्सरूपकम् ।।१५७।।
द्विभुजां चिन्तयेद्देवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ।
नरदेहसमाबद्धकुण्डलश्रुतिमण्डिताम् ।।१५८।।
प्रसन्नवदनां सौम्यां नवरत्नविभूषिताम् ।
नारदाद्यैर्मुनिगणैः सेवितां शिवमोहिनीम् ।।१५९।।
अट्टाहासां महाभीमां साधकाभीष्टदायिनीम् ।।१६०।।

द्यां लिखन्तीं जटामेकां, इति धारयन्तीमिति शेषः । अनन्तं शिरसोपरि दधतीमिति शेषः । गुह्येत्युपलक्षणम् ।

पद्मा—भद्रकाली मन्त्र हे पार्वति ! अब देवी भद्रकाली का मन्त्र कहता हूँ सुनो । **क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं भद्रकाल्यै क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा** यह बीस वर्ण वाली शुभदायक भद्रकाली देवी साधक को चतुर्वर्ग प्रदान करती है । श्मशान काली का मन्त्र इस प्रकार है–**क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं श्मशानकालि क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा** । इस इक्कीस अक्षर के मन्त्र से श्मशानकाली का पूजन करे । महाकाली का मंत्र इस प्रकार है **क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं महाकालि क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।** इस २१ अक्षर के मन्त्र से महाकाली का पूजन करे । पूर्वोक्त दक्षिण कालिका की पद्धति के अनुसार भद्रकाली इत्यादि देवियों की पूजा करे । इन देवियों की पूजा में विशेषता यह है कि यंत्र के भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और वज्र आदि अस्त्र भूपुर के चतुर्द्वार में विष्णु, शिव, सूर्य और गणेश भूगृह में, लोकपाल बाहरी भाग में, देवी के अस्त्र भूपुर के चारों ओर पूर्वादि क्रम से विष्णु, शिव, सूर्य तथा गणेश जी का पूजन करे । इसी प्रकार यन्त्र में ही गुह्यकाली, भद्रकाली, श्मशान काली और महाकाली इन चारो देवताओं की पूजा करे । इन सभी के लिए एक ही यन्त्र प्रयुक्त होता है । यंत्र का निर्माण इस प्रकार करे- सर्वप्रथम त्रिकोण, फिर षट्कोण और नवकोण अंकित करके उसके बाहर तीन वृत्त और केशरसहित अष्टदल से युक्त कमल अंकित उसके बाहर तीन वृत्त और केशरसहित अष्टदल से युक्त कमल अंकित करके तीन भूपुर युक्त चार द्वार से युक्त योनिमण्डल स्वरूप

यन्त्र अंकित करे। यह त्रिपञ्चार नामक यन्त्र समस्त तन्त्रों में प्रसिद्ध है। इसके पश्चात् इस प्रकार ध्यान करे-देवी महामेघ के समान प्रभावाली, काले रंग के वस्त्र धारण करने वाली, लपलपाती जीभवाली, अत्यन्त भयानक दाँतो वाली, दोनों नेत्र कोटर में घुसे हुए हास्यपूर्ण मुख, गले मे नाग का हार, ललाट में अर्द्धचन्द्र, मस्तक मे आकाश को स्पर्श करती हुई जटा विद्यमान है। सह आसव फन में आसक्त हैं। नाग का यज्ञोपवतीत धारण करके नाग की शय्या पर आसीन हैं। ये गुह्यकाली देवी गले में पचास मुण्डों की माला धारण किए हुए हैं। इनका उदर अत्यन्त ही विशाल है और मस्तक पर सहस्त्रफणवाले अनन्त शोभायमान है। गुह्यकाली देवी चारों ओर से नाग के फण से घिरी हैं। सर्पराज तक्षक इनके बाएं हाथ के और सर्पराज अनन्त दाहिने हाथ के कंकण के रूप मे स्थित है। ये नागों की बनी कांची (करधनी) पहने है और रत्न के नूपुर धारण किए हुए हैं। वाम भाग में शिव बालक के रूप में विद्यमान हैं। इनकी दो भुजाएं हैं। कानों में नर शरीर कुण्डल के रूप में शोभित हैं। ये प्रसन्न मुख, सौम्य स्वरूप और नवरत्न से विभूषित हैं। नारदादि मुनि इनकी सेवा करते हैं। अट्टहास और महाभयंकरी देवी साधक को इच्छित फल प्रदान करती हैं। इस ध्यान में गुह्य पद् उपलक्षण मात्र हैं। भद्रकाली इत्यादि की पूजा भी इसी ध्यान के द्वारा करे ॥१४४-१६०॥

नारदीय पुराणोक्त
काली प्रकरणम्

सनत्कुमार उवाच

वाग्देवतावतारोऽन्यः कालिकेति प्रकीर्तिता ।
तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ।।१।।
सृष्टिक्रियान्विता शान्तिर्बिन्द्वाढ्या च त्रिधा पुनः ।
अरुणाक्ष्यादीपिका च बिन्दुयुक्ता द्विधा ततः ।।२।।
मायाद्वयं ततः पश्चाद् दक्षिणे कालिके पदम् ।
पुनश्च सप्तबीजानि स्वाहान्तोऽयं मनूत्तमः ।।३।।
भैरवोऽस्य ऋषिश्छन्द उष्णिक्काली तु देवता ।
बीजं मायादीर्घवर्त्म शक्तिरुक्ता मुनीश्वर ।।४।।
षड्दीर्घाढ्ये बीजेन विद्याया अंगमीरितम् ।
मातृकाणान्दर्श दश हृदये भुजयोः पदोः ।।५।।
विन्यस्य व्यापकं कुर्यान्मूलमन्त्रेण साधकः ।
शिरः कृपाणमभयं वरं हस्तैश्च बिभ्रतीम् ।।६।।
मुण्डस्रङ्मस्तकां मुक्तकेशां पितृवनस्थिताम् ।
सर्वालंकृतवर्णा च श्यामाङ्गीं कालिकां स्मरेत् ।।७।।
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं जुहुयादयुतं ततः ।
प्रसूनैः करवीरोत्थैः पूजायन्त्रमथोच्यते ।।८।।
विलिख्य पूर्वं षट्कोणं त्रिकोणत्रितयं ततः ।
पद्ममष्टदलं बाह्ये भूपुरं तत्र पूजयेत् ।।९।।
जया च विजया चापि अजिता अपराजिता ।
नित्या विलासिनी वापि दोग्ध्र्यघोरा च मङ्गला ।।१०।।
पीठस्य शक्तयो मायात्मने हृत्पीठमन्त्रकः ।
शिवरूपशवस्थां च शिवाभिर्दिक्षु वेष्टिताम् ।।११।।
महाकालरतासक्तां ध्यात्वाङ्गान्यर्चयेत् पुरा ।
कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम् ।।१२।।
विप्रचित्तां च षट्कोणे नवकोणे ततोऽर्चयेत् ।
उग्रामुग्रप्रभां दीप्ता नीलाघनां बलाकिकाम् ।।१३।।

मात्रां मुद्रां तथा मित्रां पूज्याः पत्रेषु मातरः ।
पद्मस्यास्य सुयत्नेन ब्राह्मी नारायणीत्यपि ।।१४।।
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता ।
वाराही नारसिंही च पुनरेतास्तु भूपुरे ।।१५।।
भैरवीं महदाद्यां तां सिंहाद्यां धूम्रपूर्विकाम् ।
भीमोन्मत्तादिकां चापि वशीकरणभैरवीम् ।।१६।।
मोहनाद्यां समाराध्य शक्रादीन्यायुधान्यपि ।
एवमाराधिता काली सिद्धा भवति मन्त्रिणाम् ।।१७।।
ततः प्रयोगान् कुर्वीत महाभैरवभाषितान् ।
आत्मनो वा परस्यार्थ क्षिप्रसिद्धिप्रदायकान् ।।१८।।
स्त्रीणां प्रहारं निन्दां च कौटिल्यं वाप्रियं वचः ।
आत्मनो हितमन्विच्छन् कालीभक्तो विवर्जयेत् ।।१९।।
सुदृशो मदनावासं पश्यन् यः प्रजपेन् मनुम् ।
अयुतं योऽचिरादेव वाक्पतेः समतामियात् ।।२०।।
दिगम्बरो मुक्तकेशः श्मशानस्थोऽधियामिनि ।
जपेद् योऽयुतमेतस्य भवेयुः सर्वसिद्धयः ।।२१।।
शवस्य हृदये स्थित्वा निर्वासाः प्रेतभूविगः ।
अर्कपुष्पसहस्रेणाभ्यक्तेन स्वीयरेतसा ।।२२।।
देवीं यः पूजयेद् भक्त्या जपेन्नेकैकशो मनुम् ।
सोऽचिरेणैव कालेन धरणीप्रभुतां व्रजेत् ।।२३।।
रजःकीर्णं भगं नार्या ध्यायन् यो ह्ययुतं जपेत् ।
स कवित्वेन रम्येण जनान मोहयति ध्रुवम् ।।२४।।
त्रिपञ्चारे महापीठे शिवस्य हृदि संस्थिताम् ।
महाकालेन देवेन मारयुद्धं प्रकुर्वतीम् ।।२५।।
तां ध्यायन् स्मेरवदनां विदधत्सुरतं स्वयम् ।
जपेत् सहस्रमपि यः स शङ्करसमो भवेत् ।।२६।।
अस्थिलोमत्वचायुक्तं मांसं मार्जारमेषयोः ।
उष्ट्रस्य महिषस्यापि बलिं यस्तु समर्पयेत् ।।२७।।
भूताष्टम्योर्मध्यरात्रे वश्याः स्युस्तस्य जन्तवः ।
विद्यालक्ष्मीयशः पुत्रैः स चिरं सुखमेधते ।।२८।।
यो हविष्याशनरतो दिवा देवीं स्मरेन् जपेत् ।
नक्तं निधुवनासक्तो लक्षं स स्यादु धरापतिः ।।२९।।

रक्ताम्भोजैर्हुनेन्मन्त्री धनैर्जयति वित्तपम् ।
विल्वपत्रैर्भवेद् राज्यं रक्तपुष्पैर्वशीकृतिः ।।३०।।
असृजा महिषादीनां कालिकां यस्तु तर्पयेत् ।
तस्य स्युरचिरादेव करस्थाः सर्वसिद्धयः ।।३१।।
यो लक्षं प्रजपेन्मन्त्रं शवमारुह्य मन्त्रवित् ।
तस्य सिद्धो मनुः सद्यः सर्वेप्सितफलप्रदः ।।३२।।
तेनाश्वमेधप्रमुखैर्यागैरिष्टं सुजन्मना ।
दत्तं दानं तपस्तप्तं उपास्ते यस्तु कालिकाम् ।।३३।।
ब्रह्मा विष्णुः शिवा गौरी लक्ष्मीर्गणपती रविः ।
पूजिताः सकला देवाः यः कालीं पूजयेत् सदा ।।३४।।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोक्तकाली प्रकरणम् ।

पद्मा—सनत्कुमार ने कहा–वाग्देवता का अन्य अवतार कालिका के रूप में कहा गया है । उनका मन्त्र कहता हूँ जो मनुष्यों को भोग एवं मोक्ष उदान करता है । **क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं वाहा** यह उत्तम मन्त्र है । इस मन्त्र के ऋषि भैरव, छन्द उष्णिक्, देवता काली, बीज ह्रीं, शक्ति हूँ, कहे गये हैं । छः दीर्घ बीजों **(ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः)** से षडङ्गन्यास करे । साधक मातृका वर्णों में से दश दश को हृदय, भुजा और चरणों में न्यस्त करके मूलमन्त्र से व्यापक न्यास करे । तत्पश्चात् सिर, कृपाण तथा अभयास्त्र को हाथों में धारण करने वाली, मुण्डमाला को गले में धारण करने वाली, बिखरे केश वाली, श्मशान में निवास करने वाली, समस्त अलंकारो से विभूषित श्याम अंगो वाली कालिका ध्यान करे । ध्यान के उपरान्त एक लाख मन्त्र का जप करे और दश हजार करवीर (कनेर) के पुष्पों से हवन करे । अब पूजा यन्त्र के विषय में कहा जाता है । सर्व षटकोण बनाकर तीन त्रिकोण को बनाये । इसके पश्चात् अष्टदल कमल को बनाकर उसके बाहर भूपुर का निर्माण करे और इसके पश्चात् यन्त्र का पूजन करे । जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा और मंगला ये पीठ शक्तियाँ है । **ह्रीं आत्मने नमः** यह पीठ मन्.है । सर्वप्रथम शिवस्वरूपा, शिव पर स्थित, चारों ओर सियारिनों से घिरी हुई, महाकाल के साथ सम्भोग क्रीड़ा मे अत्यन्त ही मग्न, काली का ध्यान का ध्यान कर अंग पूजा करे । षट्कोण में काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी और विप्रचित्ता का पूजन करे । नवकोण में दलों के ऊपर उग्रा, उग्रप्रभा, दीप्ता, नीला, घना, बला, मात्रा, मुद्रा, मित्रा इन माताओं की पूजा करे । पुनः अष्टदल कमल पर प्रयासपूर्वक ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा कौमारी, अपराजिता, वाराही तथा नारसिंही का पूजन करे । भैरवी, महदाद्या सिंहाद्या, धूम्रपूर्विका, भीमा, उन्मत्ता, उदिका, वशीकरण भैरवी तथा मोहनाद्या की आराधना करके इन्द्रादि

देवगण एवं उनके अस्त्रों की पूजा करे। इस प्रकार आराधना करने पर भगवती काली साधकों को सिद्ध हो जाती हैं। स्वयं के लिए अथवा अन्य के लिए महाभैरव द्वारा कहे गये शीघ्र सिद्धिदायक प्रयोगों को करे। अपने कल्याण के इच्छुक साधक को चाहिए कि वह स्त्रियों की निन्दा, उनके साथ मारपीट, छल, एवं कटु वचन न करे। जो साधक सुन्दरी स्त्री की भग की ओर देखते हुए दश हजार मन्त्र का जप करता है वह विद्वता में देवगुरु बृहस्पति के समान हो जाता है। जो मनुष्य अर्धरात्रि के समय श्मशान में अपने केशों को बिखेर कर, नग्न होकर भगवती काली के मन्त्र का दश हजार जप करता है, उसे समस्त सिद्धियों की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य श्मशान में नग्न होकर शव के हृदय के ऊपर बैठकर एक हजार आक के पुष्पों को अपने वीर्य में मिलाकर उनसे भक्तिपूर्वक देवी का मन्त्र जप करते हुए पूजन करता है वह शीघ्र ही राजा होता है। जो मनुष्य नारी की रजयुक्त भग को ध्यान करते हुए मन्त्र का दश हजार जप करता है वह अपनी रमणीय कविता से सबको मुग्ध कर लेता है। जो साधक त्रिपञ्चार नामक महापीठ में शवरूप शिव के हृदय पर स्थित तथा महाकाल के साथ सम्भोग रूपी युद्ध करती हुई प्रसन्नमुखी देवी का ध्यान करके स्वयं सुन्दरी स्त्री के साथ सम्भोग करते हुए एक मन्त्र का जप करता है वह शिव के समान हो जाता है। जो साधक कृष्णपक्ष की अष्टमी की मध्यरात्रि में बिलाव भेंड़, ऊँट तथा भैसे के अस्थि, रोम एवं त्वचा सहित मांस की बलि समर्पित करता है उसके वश में सभी प्राणी हो जाते हैं और वह विद्या, लक्ष्मी, यश तथा पुत्रों को प्राप्त क्रर चिरकाल तक सुख का उपभोग करता है। जो साधक दिन में हविष्यभोजन करते हुए तथा रात्रि में सुन्दरी स्त्री के साथ सम्भोग करते हुए मन्त्र का एक लाख जप करता है वह राजा होता है। लाल कमल से हवन करने वाला साधक धन में कुबेर को भी जीत लेता है। बिल्वपत्र से हवन करने वाले साधक को राज्य की प्राप्ति होती है। लाल रंग के पुष्पों से हवन करने वाले को वशीकरण की सिद्धि प्राप्त होती है। जो साधक महिषादि के रक्त से कालिका को तृप्त करता है उसे समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। जो मन्त्र का ज्ञाता शव पर आरूढ़ होकर एक लाख मन्त्र का जप करता है वह शीघ्र ही अभीष्ट फलदायक मन्त्र को सिद्ध कर लेता है। जो सुजन्मा व्यक्ति भगवती काली की उपासना करता है वह मानो अश्वमेधादि यज्ञ, दान तथा तप करता है। जो काली की पूजा करता है वह ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गौरी, लक्ष्मी, गणेश तथा सूर्य आदि समस्त देवताओं की पूजा करता है ॥१-३४॥

इस प्रकार सिद्धाश्रमस्थ परमपूज्य परमहंस स्वामी श्री निखिलेश्वरानन्द जी महाराज के शिष्य आचार्य अजय कुमार उत्तम कृत वृहन्नारदीय पुराणोक्त श्री कालीप्रकरण की **पद्मा** हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

श्री कालिका प्रकरणम्

क अथ श्मशानकाली मन्त्रः

स्वतन्त्र तन्त्रे

श्मशानकालिकामन्त्रं शृणुष्वावहिता शिवे !
वाणीं मायां ततो लक्ष्मीं कामबीजं ततः परम् ।।१।।
कालिके संपुटत्वेन चतुष्कं बीजमालिखेत् ।
एकादशार्णा देवेशि ! चतुर्वर्गफलप्रदा ।।२।।
ऋषिर्भृगुर्निवृच्छन्दो देवता कालिका परा ।
श्मशानाद्या च वाङ्माया बीजं शक्तिर्महेश्वरि ।।३।।
कीलकं कामबीजं तम्.........इति ।
चतुश्चतुस्त्रिचतुस्तु विद्यामन्त्रैः षडङ्गकम् ।।४।।
विन्यस्य ध्यानं कुर्वीत कालिकायां समाहितः ।
अञ्जनाद्रिनिभां देवीं श्मशानालयवासिनीम् ।।५।।
त्रिनेत्रां मुक्तकेशीं च शुष्कमांसातिभीषणाम् ।
पिङ्गाक्षीं वामहस्तेन मद्यपूर्णं कपालकम् ।।६।।
सद्यः कृत्तशिरो दक्षहस्तेन दधतीं शिवाम् ।
स्मितवक्त्रां सदा वाममांसतर्पणतत्पराम् ।।७।।
नानालङ्कारभूषाङ्गी नग्नां मत्तां सदा शवैः ।

एवं ध्यायेदिति शेषः ।

अथ पुरश्चरणम्

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशेन होमयेत् इति ।।८।।

ख-अथ सिद्धिलक्ष्मीमन्त्रः

कालानलतन्त्रे

ॐ ह्रीं हूँ हाँ फ्रैं क्षौं क्रौं नमः

श्रुतिश्चढी च दोग्ध्री च शोषिणी शिरया सह ।
दोला तदनु मालूराः सामरश्च निरत्ययः ।।९।।
शेषे दण्डः परिज्ञेय इयमुक्ता नवाक्षरी ।
नैतस्य सदृशो मन्त्रस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।।१०।।

अथ मन्त्रान्तरं तत्रैव

अथोद्धरिष्ये देवेशीं षोडशार्णां मनूत्तमाम् ।
यामेकवारमुच्चार्य मुच्यते जन्मसंकटात् ।।११।।
ह्रीं हूँ फ्रैं छ्रौं हसौः ह्रीं क्रौं फ्रैं,
स्त्रीं श्रीं हौं जूँ ब्लौं व्रीं स्वाहा ।
चटी दोग्ध्री शिरोसिद्धिभूमर्द्धिः प्रोथ एव च ।
फली पुनः शिरो रेतः प्रान्तरान्त्रे ततः परम् ।।१२।।
पुरश्चरणहोमाः स्युर्मलिनाहृदयर्पताः ।
मन्त्रोऽयमपि सर्वेषां मनूनामुत्तमः स्मृतः ।।१३।।

अनयोर्ऋष्यादिन्यास उक्तस्तत्रैव

श्रीसिद्धिलक्ष्मीमन्त्रस्य ऋषिर्नारद ईरितः ।
गायत्री छन्द आख्यातं सिद्धिलक्ष्मीश्च देवता ।।१४।।
चटीबीजं तथाऽऽख्यातं समीहा शक्तिरिष्यते ।
प्रबन्धः कीलकं विद्यात् पुरुषार्थचतुष्टये ।
विनियोगोऽस्य मन्त्रस्य कथितस्त्वयि नारद ।।१५।।

अथ कराङ्गन्यासौ

षड्दीर्घभाजा बीजेन कराङ्गन्यासमीरितम् ।
इदानीं ते सुगमेन कथयामि द्विजर्षभ् ।।१६।।
श्रुतिपूर्वं बीजमुक्त्वा अङ्गुष्ठाभ्यां पदं ततः ।
शेषे दण्डः समाख्याता पुनर्बीजद्वयं वदेत् ।।१७।।
तर्जनीभ्यां यदा तत्र दण्ड इत्यभिधीयते ।
पुनर्बीजद्वयं यत्र भ्यामन्ता मध्यमा ततः ।।१८।।
दण्डः शेषे च विज्ञेयः पुनस्तद्बीजमेव च ।
अनामिका भ्यामन्ता च ततो दण्डः प्रकीर्तितः ।।१९।।
बीजद्वयात् कनिष्ठाभ्यां पदाद्दण्डबीजं स्मृतम् ।
बीजद्वयं करतलपृष्ठाभ्यां दण्ड इत्यपि ।।२०।।
इति करन्यासं कृत्वा अङ्गन्यासं चरेत् सुधीः ।
क्रमेणानेन वै ब्रह्मन् संभवन्यासमाचरेत् ।।२१।।
श्रुतिचट्यौ समाभाष्य हृदयाय पदं ततः ।
दण्डस्तदनु विप्रर्षे बीजद्वयं तथा परम् ।।२२।।
शिरसे पदतश्चैव दोग्ध्रीबीजं स्मृतं तदा ।
तद्बीजद्वयमुच्चार्य शिखायै पदमेव च ।।२३।।

इन्द्रबीजं समाख्यातं पुनर्बीजद्वयं वदेत्।
कवचाय पदाच्चैव दोग्ध्रीबीजं हि नारद ।।२४।।
बीजे तथा समुच्चार्य नेत्रत्रयाय वौषडिति।
षडङ्गन्यासमित्युक्तमर्चायां कायशोधनम् ।।२५।।

अथ ध्यानम्

ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि तन्निबोध अजात्मज।
श्वेतां श्वेतशवारूढां नृमुण्डकृतकुण्डलाम् ।।२६।।
पञ्चवक्त्रां महारौद्रीं प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनाम्।
व्याघ्रचर्मावृतकटीं शुष्कावयभूषिताम् ।।२७।।
आबद्धयोगपट्टां च नरास्थिकृतभूषणाम्।
हस्तैः षोडशभिर्दीप्तां विस्रस्तघनकुन्तलाम् ।।२८।।
खड्गं वाणं तथा शूलं चक्रं शक्तिं गदामपि।
जपमालां कर्त्तृकां च विभ्रतीं दक्षिणैर्भुजैः।।२९।।
फलकं कार्मुकं नागपाशं परशुमेव च।
डमरुं फेरुपोतं च नरमुण्डकपालकम् ।।
उद्वहन्तीं करैर्वामैर्दीर्घसर्वाङ्गभूषणाम् ।।३०।।

एतद्ध्यानं नवाक्षर्याः। षोडशार्णविद्यायास्तु ध्यानान्तरमुक्तं तत्रैव–

महातेजोमयी लक्ष्मी रश्मिकोट्युतप्रभा।
पञ्चवक्त्रा दशभुजा त्रिपञ्चनयनैर्युता ।।३१।।
श्वेतवर्णनिभा देवी महाप्रेतोपरिस्थिता।
मातृकाष्टमध्यस्था सिद्धियोगनिषेविता ।।३२।।
दारितास्या लेलिहाना ज्वालालुप्तजगत्त्रयी।
उच्छ्रासोच्छ्वासवेगेन चालयन् कुलपर्वतान् ।।३३।।
क्वचिद्देशे क्वचित् कूटे क्वचित् संहरते क्षणात्।
क्वचित् सृजेत् पालयेच्च स्वतन्त्राद्वा प्रवर्त्तते ।।३४।।
गोनासाभरणैर्युक्ता उरगेन्द्रविभूषिता।
पाशाङ्कुशधरा देवी वराभयकराम्बुजा ।।३५।।
सव्यहस्ते धृतं खड्गं त्रैलोक्यक्षोभकारकम्।
वामे खट्वाङ्गमत्युग्रं दक्षिणे शूलमुत्तमम् ।।३६।।
वामे तु कलशं दिव्यं महारत्नप्रपूरितम्।
एषा प्रत्यङ्गिरा देवी उन्मत्ता व्योमदेहजा ।।३७।।

एकात्मा नैकभेदेन विश्वं व्याप्य व्यवस्थिता ।
प्रत्यङ्गिरा महादेवी सिद्धिलक्ष्मीर्जयप्रदा ।।३८।।

पद्धतौ

खट्वाङ्गङ्कुशपाशशूलवरकृद्भीत्राणपात्रं शिरः
कुम्भासिज्वलितोद्भटैर्भुजवरैराभासमानां शिवाम् ।
रुद्रस्कन्धगतां शरच्छशिनिभां पञ्चाननां सुन्दरीं
पञ्चत्र्यक्षविराजितां भगवतीं श्रीसिद्धिलक्ष्मीं भजे ।।३९।।

उक्तयोः श्रीसिद्धिलक्ष्मीमन्त्रयोः पुरश्चरणं तु वक्ष्यमाण-(महाकालसंहितो)-क्तगुह्यापुरश्चरणवज्ज्ञेयम् ।

तदुक्तं (कालानलतन्त्रे)

यथा कामकला काली गुह्यकाली यथा द्विज ।
यथा छिन्ना यथा तारा वज्रकापालिनी यथा ।।४०।।
सिद्धिलक्ष्मीस्तथा देवी विशेषो नास्ति कश्चन ।
एकैव पूजा विज्ञेया प्रयोगाश्च तथा द्विज ।।४१।।
अत्रानुक्तं हि यत् किञ्चित् संहितायां च तद्विदुः ।
ग्रन्थगौरवभीत्या प च नोक्तमन्यात् त्वयि द्विज ।।४२।।
संक्षेपेण सिद्धिलक्ष्म्यास्त्वयि सर्वं प्रकीर्तितम् ।
विस्तृतं च महाकालसंहितायां द्विजोत्तम् ।।४३।।
जपः पुरश्चरणं च आचारश्चापि नारद ।
महाकालसंहितायां कामकलाभ्यासे प्रकीर्त्तितः ।।४४।।
तेनैव वर्त्मना विप्र सिद्धलक्ष्म्याऽखिलं विदुः ।
पौनरुक्त्यभयेनात्र निगदामि न नारद ।।४५।।

ग-अथ गुह्यकालीमन्त्रः
महाकालसंहितायाम्

गुह्यकाल्यास्तु मन्त्राणामष्टादश भिदाः प्रिये !।
सर्वागमेषु गोप्यास्ते न प्रकाश्याः कदा चन ।।४६।।
मन्त्राणां भेदतो ध्यानभेदाः स्युर्विविधास्तथा ।
यन्त्रभेदा अपि तथा वाहनानां भिदास्तथा ।।४७।।
यो मन्त्रो येन चाभ्यस्तस्तत्राम्नायः प्रकीर्तितः ।
ब्रह्मणा च वशिष्ठेन रामेण च तथा प्रिये !।।४८।।

हिरण्याक्षानुजेनापि कुवेरेण यमेन च ।
भरतेन दशास्येन वलिना वासवेन च ।।४९।।
विष्णुनाऽन्यैश्च देवैश्च दैत्येन्द्रैर्विविधैरपि ।
उपासिता सिद्धिहेतोर्लब्ध्वा सिद्धिश्च भूयसी ।।५०।।
शतवक्त्राऽशीतिवक्त्रा षष्टिवक्त्रा तथैव च ।
षट्त्रिंशदानना विंशदानना परिकीर्त्तिता ।।५१।।
तथा विंशतिवक्त्रा च दशवक्त्रा च कालिका ।
पञ्चवक्त्रा त्रिवक्त्रा च द्विवक्त्रा चैकवक्त्रिका ।।५२।।
या गुह्यकाली तन्मध्ये भरतोपासिता प्रिये ! ।
दशवक्त्रा षोडषार्णा चतुष्पञ्चाशद्दोर्युता ।।५३।।
सर्वासां गुह्यकालीनां सा वै मुख्यतमा स्मृता ।
तामेवादौ व्याहरामि व्याहरिष्ये ततः पराः ।।५४।।
षोडशाक्षरको मन्त्रः कीलितश्चाप्यकीलितः ।
तत्रादौ कीलितं वच्मि ततो वक्ष्याम्यकीलितम् ।।५५।।
कीलकाकीलकध्यानमेकमेव हि पार्वति !।

मन्त्रोद्धारमाह

आदौ वेदादिमुद्धृत्य ततः पश्य द्वितीयकम् ।।५६।।
एकारयुक्तं तदधो रेफं विन्दुं च योजयेत् ।
सिद्धिशब्दं ततः प्रोच्य करालिं च विनिर्दिशेत् ।।५७।।
लज्जां क्रोधमनुस्मृत्य कफोणिं वामयुद्धरेत् ।
वामदृग्निन्द्वधोवह्नियुक्तं कुर्यात् ततश्च तम् ।।५८।।
वधूबीजं पुनर्मन्त्रद्वितीयं बीजमुद्धरेत् ।
ह्नन्मन्त्रो वह्निजाया च मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः ।।५९।।

प्रकारान्तरमाह

अथ वा कामिनीबीजात् पूर्व क्रोधमनुस्मरेत् ।
इयं हि भरतोपास्या कीलिताऽपि च शापतः ।।६०।।

भरतोपासिता षोडशाक्षरी द्विविधा । तत्राद्या कीलिता द्वितीया त्वकीलितेत्यर्थाः ।

सप्तदशाक्षरीमाह

रामोपास्यामतो वक्ष्येऽक्षरसप्तदशान्विताम् ।
साऽऽपि हारीतमुनिना कीलिता तपसो बलात् ।।६१।।
आदौ तस्यैव मन्त्रस्य चतुरोऽर्णान् समुद्धरेत् ।
द्वितीयबीजोपरि च हसखं विनियोजयेत् ।।६२।।

एवं तु पञ्चमं बीजं षष्ठं खेन च वर्जितम् ।
सप्तमं हसहीनं च करालि तदनन्तरम् ।।६३।।
त्रयोदशैकादशके स्थाने सप्तममक्षरम् ।
पञ्चमं द्वादशस्थाने द्वितीयं च चतुर्दशे ।।६४।।
आद्यं पञ्चदशे कुर्याद्वाह्नजायान्तगो मनुः ।
हारीतोपासिता ह्येषा च्यवनोपासितां शृणु ।।६५।।
षष्ठपञ्चमयोरस्य व्यत्ययः समुदीरितः ।
एतावतैव भवति च्यावनी सुमहाफला ।।६६।।

अत्रापि रामोपासितासप्तदशाक्षरी द्विविधा हारीतोपासिता च्यवनोपासिता चेति । तयोर्मध्ये हारीतोपासितैव कीलिता च्यवनोपासिता तु न कीलितेति बोध्यम् ।

ऋष्यादिकमाह

षोडशाक्षरयोर्मन्त्रभेदयोरधुना ब्रुवे ।
ऋष्यादिकं ततः सप्तदश्याश्च कथयामि ते ।।६७।।
अथर्वा ऋषिरुद्दिष्टो जगती छन्द उच्यते ।
देवतागुह्यकाली च द्वितीयार्णं तु कीलकम् ।।६८।।
शक्तिस्तु दशमं बीजं द्वितीये नवमं भवेत् ।
पुरुषार्थचतुष्कस्य सिद्धये कामनास्थितिः ।।६९।।
सप्तदश्यास्तु मन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषीर्मतः ।
छन्दश्च सप्रतिष्ठाख्यं देवता गुह्यकालिका ।।७०।।
पञ्चमार्णं कीलकं स्यात् सप्तमं शक्तिरुच्यते ।
तदेव विपरीतं हि च्यावनीसमुदीरितम् ।।७१।।
प्रयोगः सर्वसिद्ध्यर्थं जपे प्रोच्चारितो भवेत् ।
अन्येषां मन्त्रभेदानां यदुद्धारं वदामि ते ।।७२।।
तदा ऋष्यादिकं तेषां कथयिष्यामि पार्वति !

अथ षडङ्गन्यासस्तत्रैव--

द्वे पञ्च त्रीणि च द्वे च द्वे पुनर्द्वे पुनस्तथा ।।७३।।
वर्णाक्षराणां भारव्यास्तत्तत्स्थाने प्रविन्यसेत् ।
तावन्तोऽर्णाः सप्रणवास्तत्र तत्र स्थले न्यसेत् ।।७४।।
यादृशी च्यावनी मन्त्रवर्णावल्यनुतिष्ठति ।
तारयोर्मध्यवर्त्तीनि देवीवर्णानि तानि हि ।।७५।।
न्यस्येत् स्थानेषु तेष्वेव हारीतोपासिते मनौ ।

ध्यानमाह

भरतोपासिता या च रामोपास्या च या स्मृता ।
ध्यानं तयोरेकमेव कथ्यमानं मया शृणु ।।७६।।
ध्यायेद्देवीप्रभावोत्थप्रोच्छलद्रक्तवारिधिम् ।
उत्तुङ्गोत्तुङ्गकल्लोलप्रपूरितदिगन्तरम् ।।७७।।
तत्र द्वीपं रक्तमांसपूरितं रक्तवालुकम् ।
नवकोटिक चामुण्डकोटिभैरवेष्टितम् ।।७८।।
तन्मध्ये मण्डलं ध्यायेद्योजनायुतविस्तृतम् ।
भैरवीकोटिघटितं प्राकारं तत्र चिन्तयेत् ।।७९।।
एकं श्मशानं तन्मध्ये शतयोजनविस्तृतम् ।
चिन्तयेत् प्रोच्छलद्वह्निज्वालाव्याप्तर्क्षमण्डलम् ।।८०।।
योगिनीकोटिविहितकरतालिकचेष्टितम् ।
नारान्त्रनद्धमुण्डस्रक्कृततोरणमालिकम् ।।८१।।
तदन्तः स्थापिनीं कालीं ध्यायेत्त्रिश्चलमानसः ।
रत्नसिंहासनं दिव्यं हीरमुक्तादिनिर्मितम् ।।८२।।
धारयन्तं चतुष्कोणे युगं वेदं विचिन्तयेत् ।
सत्ययुगं च ऋग्वेदं शुक्लवर्णं च पूर्वगम् ।।८३।।
त्रेतायुगं यजुर्वेदं पीतवर्णं च दक्षगम् ।
द्वापरं सामवेदं च रक्तं पश्चिमदिग्गतम् ।।८४।।
अथर्ववेदं च कलिं श्याममुत्तरदिग्गतम् ।
उपवेदस्य शुभ्रस्य मूर्ध्नि सिंहासनं स्थितम् ।।८५।।

दिक्पाल ध्यानम्

तस्य सिंहासनस्योर्ध्वमन्यत् सिंहासनं महत् ।
स्वस्वास्त्रवाहनयुतैर्दिगष्टपतिभिर्वृतम् ।।८६।।
देव्याः सिंहासनधराँस्ताँश्च ध्यायेदतन्द्रितः ।
स्वां स्वां दिशमवष्टभ्य स्थितान् परमशोभितान् ।।८७।।
इन्द्रं पीतं सवज्रं च स्थितमैरावतोपरि ।
पावकं रक्तवर्णं च छागस्थं शक्तिपाणिकम् ।।८८।।
यमं कृष्णं कासरस्थं दण्डहस्तं भयानकम् ।
निर्ऋतिं धूम्रवर्णं च खड्गहस्तं तुरङ्गगम् ।।८९।।
वरुणं पाशहस्तं च शुभ्रं मकरवाहनम् ।
श्यामं वायुं ध्वजधरं हरिणोपरि संस्थितम् ।।९०।।

गदाधरं कुबेरं च कुङ्कुमाभं नरे स्थितम् ।
ईशानं शुभ्रवर्णं च शूलहस्तं वृषे स्थितम् ।।९१।।

पञ्चप्रेत ध्यानम्

सिंहासनं तृतीयं च पञ्चप्रेतैर्धृतं प्रिये !।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।।९२।।
एते पञ्चमहाप्रेताः स्थिताः सिंहासनादधः ।
पीतः श्यामस्तथा रक्तो धूम्रः श्वेतः क्रमादिमे ।।९३।।
दण्डं चक्रं च शक्तिं च शूलं खट्वाङ्गमेव च ।
धारयन्तो मुखे न्यस्ततर्जनीकास्त्रिलोचनाः ।।९४।।
केशरिद्विपकोलाश्च फेत्काररवभीषणाः ।

भैरवाख्यपीठध्यानम्

ऊर्ध्वं पीठं ततो ध्यायेद्भैरवाख्यं भयानकम् ।।९५।।
खर्वं स्थूलतरं घोरं कृष्णवर्णं चतुर्भुजम् ।
पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं च कीकशाभरणान्वितम् ।।९६।।
खट्वाङ्गं कर्त्तृकां दक्षे कपालं डमरुं तथा ।
धारयन्तं मुण्डमालायुतं दंष्ट्रोग्रभीषणम् ।।९७।।
तदूर्ध्वं षोडशदलं पद्मं यज्ञोपकल्पितम् ।
ज्योतिष्टोमोऽग्निष्टोमो वाजपेयश्च षोडशी ।।९८।।
चयनं पुण्डरीकं च राजसूयोऽश्वमेधकः ।
बार्हस्पत्यं विश्वजिच्च गोमेधो नरमेधकः ।।९९।।
सौत्रामण्यर्धसावित्री सूर्यकान्तोऽचलम्भिदः ।
एतादृशैः षोडशभिर्दलैः पद्मं प्रकल्पितम् ।।१००।।
तस्योपरि ततो ध्यायेच्छिवासनमनुत्तमम् ।
विन्दुनादयुतं नीलं शशाङ्ककृतलाञ्छनम् ।।१०१।।
महार्घरत्नाभरणं त्रिनेत्रं भीमदर्शनम् ।
वज्रदंष्ट्रानखस्पर्श पद्मपृष्ठे शिवोत्तमम् ।।१०२।।
पिङ्गोग्रैकजटाभारं द्विभुजं नागहारिणम् ।
वसानं चर्म वैयाघ्रं शूलखट्वाङ्गधारिणम् ।।१०३।।
अष्टपत्राम्बुजं तस्योपरिष्टान्नवमासनम् ।
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च चतुर्दिशि ।।१०४।।
यशो विवेकः कामश्च मोक्षश्चेति विदिग्दिशि ।

दशमुख्या गुह्यकाल्या ध्यानम्

एवमष्टदलाम्भोजोपविष्टां गुह्यकालिकाम् ।।१०५।।
ध्यायेन्नीलोत्पलश्यामामिन्द्रनीलसमद्युतिम् ।
घनाघनतनुद्योता स्निग्धदूर्वादलद्युतिम् ।।१०६।।
ज्ञानरश्मिच्छटाटोपज्योतिर्मण्डलमध्यगाम् ।
दशवक्त्रां गुह्यकालीं सप्तविंशतिलोचनाम् ।।१०७।।
द्विद्विनेत्रयुतां वक्त्रे वामदक्षिणसंमुखे ।
सप्तस्वन्येषु वक्त्रेषु त्रित्रिलोचनसंयुताम् ।।१०८।।
ऊर्ध्ववक्त्रं द्वीपिकाख्यं चण्डयोगेश्वरीति हि ।
तस्याधः केशरिमुखं श्वेतवर्णं विभीषणम् ।।१०९।।
तस्याधः फेरुवक्त्रं च कृष्णं त्रैलोक्यडामरम् ।
वानरास्य ततो वामे रक्तवर्णं महोज्ज्वलम् ।।११०।।
नरास्यं तदधो ज्ञेयं किर्मीराभं महोत्कटम् ।
ऋक्षवक्त्रं भवेद्दक्षे धूम्रवर्णं भयानकम् ।।१११।।
गारुडास्यं ततो वामे पिङ्गवर्ण सुचञ्चुकम् ।
दक्षिणे मकारास्यं च हरिताभं प्रकीर्तितम् ।।११२।।
गजास्यं वामतः प्रोक्तं गौरवक्त्रं स्त्रवन्मदम् ।
हयास्यं दक्षिणे काल्याः श्यामवर्णं विचिन्तयेत् ।।११३।।
महादंष्ट्रकरालानि दारुणस्वनवन्ति च ।
अट्टाट्टाहासयुक्तानि स्त्रवद्रक्तानि सर्वदा ।।११४।।
लेलिहानविनिष्क्रान्तललाज्जिह्वान्वितानि च ।
अहर्निशं कम्पमानान्यास्यानि दधतीं शिवाम् ।।११५।।
भीमनिर्ह्रादिनीं भीमां भूभ्रङ्गकुटिलाननाम् ।
पिङ्गलोर्ध्वजटाजूटां चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।।११६।।
नानारत्नविनिर्माणसुमुण्डस्वर्णभूषणाम् ।
स्त्रवद्रक्तनृमुण्डास्त्रक्कृतनक्षत्रमालिकाम् ।।११७।।
आकण्ठगुल्फलम्बिन्याऽलङ्कृतां मुण्डमालया ।
श्वेतास्थिगुलिकाहारग्रैवेयकमहोज्ज्वलाम् ।।११८।।
शवदीर्घाङ्गुलीपङ्क्तिमण्डितोरः स्थलस्थिराम् ।
कठोरपिङ्गलोत्तुङ्गवक्षोजयुगलान्विताम् ।।११९।।
महामारकतग्राववेदिश्रोणिपरिष्कृताम् ।
विशालजघनाभोगामतिक्षीणकटिस्थलाम् ।।१२०।।

अन्त्रनद्धार्भकशिरोवलत्किङ्किणिमण्डिताम् ।
चतुष्पञ्चाशता दोष्णा भूषितां जगदम्बिकाम् ।।१२१।।
रत्नमालां कपालं च चर्म पाशं तथैव च ।
शक्तिं खट्वाङ्गमुण्डं च भुशुण्डीं धनुरेव च ।।१२२।।
चक्रं घण्टां ततो बालप्रेतं शैलमतः परम् ।
नरकंकालनकुलौ सर्पमुन्मादवंशिकाम् ।।१२३।।
मद्गरं वह्निकुण्डं च डमरुं डिण्डिमं तथा ।
भिन्दिफलं च मुशलं पाशं पट्टिशमेव च ।।१२४।।
शतघ्नीं च शिवापोतं वामहस्तेषु बिभ्रतीम् ।
अक्ष दक्षभुजे रत्नमालां कर्त्रीमसिं तथा ।।१२५।।
तर्जनीमङ्कुशं दण्डं रत्नकुम्भं त्रिशूलकम् ।
पञ्चपाशुपतान् बाणान् शोषकोन्मादमूर्च्छकान् ।।१२६।।
संहारकान् मृत्युकरानेवं नामप्रधारिणः ।
कुन्तं च पारिजातं च छुरिकां तोमरं तथा ।।१२७।।
पुष्पमालां डिण्डिभं च गृध्रं चैव कमण्डलुम् ।
मांसखण्डं स्रुवं बीजपूरं स्रुचं तथैव च ।।१२८।।
परशुं च गदां यष्टीं मुष्टिं कुणपलालनम् ।
धारयन्तीं महारौद्रीं जगत्संहारकारिणीम् ।।१२९।।
जवापुष्पाभनागेन्द्रकृतनूपुरयुग्मकाम् ।
पाटलोरगनिर्माणलसदङ्गदमोशिभताम् ।।१३०।।
धूसराहिकृतस्फीतकटिसूत्रावलम्बिनीम् ।
सुपाण्डुरभुजङ्गेन्द्रकृतताटङ्कशोभिताम् ।।१३१।।
पिशङ्गाशीविषाभोगकृतहारमहोज्ज्वलाम् ।
कल्माषपवनाहारकृतताटङ्कशोभिताम् ।।१३२।।
श्वेतदर्वीकरानद्धजटामुकुटमण्डिताम् ।
वैयाघ्रचर्मवसनां द्वीपिचर्मोत्तरीयकाम् ।।१३३।।
किङ्किणीजालशोभाढयां वीरघण्टानिनादिनीम् ।
नूपुरावललितां घर्घराशब्दभीषणाम् ।।१३४।।
कटकाङ्गदकेयूरनरास्थिकृतशोभनाम् ।
रक्तपद्ममयीं मालां पादपद्मावम्बिनीम् ।।१३५।।
काञ्चीकट्टारकप्रेङ्खत्कटिमध्यविराजिताम् ।
ब्रह्मसूत्रोज्ज्वलत्कण्ठयोगपट्टोत्तरीयकाम् ।।१३६।।

सौम्योग्रभूषणैर्युक्तां नागाष्टकविराजिताम् ।
रत्नकुण्डलकर्णश्रीपञ्चकालानलस्थिताम् ॥१३७॥
पद्मोपरिस्थितां देवीं नृत्यमानां सदोदिताम् ।
पद्मासनसुखासीनां सर्वदेवाधिदेवताम् ॥१३८॥
मुक्तहुँकारजिह्वाग्रं चालयन्तीं विचिन्तयेत् ।
त्रिकोटिशक्तिचामुण्डानवकोटिभिरन्विताम् ॥१३९॥
महायोगिनीकोटीनामष्टादशभिरूर्जिताम् ।
चरन्ती च हसन्तीं च डाकिनीषष्टिकोटिभिः ॥१४०॥
भैरव्यशीतिकोटीभिः परिवारैश्च वेष्टिताम् ।
कोटिकालानलज्ज्वालान्यक्कारोद्यत्कलेवराम् ॥१४१॥
महाप्रलयकोट्यर्कविद्युदर्बुदसन्निभाम् ।
दुर्निरीक्ष्यां महाभीमां सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥१४२॥
शत्रुपक्षयकरीं दैत्यदानवसूदिनीम् ।
निर्विकारां निराभासां कूटस्थां चिद्विलासिनीम् ॥१४३॥
अद्वैतां परमानन्दां नित्यां शुद्धां निरञ्जनाम् ।
सृष्टिः स्थितिश्च संहारोऽनाख्या भासा पदाभिदाम् ॥१४४॥
वेदान्तवेद्यां कैवल्यरूपां निर्वाणकारिणीम् ।
गुणातीतामात्मरूपप्रबोधातीतगोचराम् ॥१४५॥
एवं ध्येया महाकाली प्रोद्भिन्ननवयौवना ।
पञ्चवक्त्रस्य मध्यस्थां गुह्यकालीं परेश्वरीं ॥१४६॥

अथ पुरश्चरणं तत्रैव—

पर्वते वा नदीकुले शून्यागारे शिवालये ।
पीठे चतुष्पथे कुर्यात् पुरश्चरणमुत्तमम् ॥१४७॥
नियमास्तत्र भूयांसः प्रकर्त्तव्याः प्रयत्नतः ।
अवैधकरणात् सिद्धिहानिः स्यान्नात्र प्रयत्नतः ॥१४८॥
त्रिकालमाचरेत् स्नानं हविष्यं भक्षयेन्निशि ।
स्वमन्त्रं चाक्षसूत्रं च गुरोरपि न दर्शयेत् ॥१४९॥
त्यजेद्दुष्टप्रवादं च परीवादं च वर्जयेत् ।
तथा दुर्जनसंसर्गान् स्त्री शूद्रालापनं तथा ॥१५०॥
वस्त्रं कुशासनं व्याघ्रचर्म चापि नृमुण्डकम् ।
आसनं च महादेवि प्रशस्तश्चोत्तरामुखः ॥१५१॥
शुद्धस्फटिकरुद्राक्षनृमुण्डास्थिविनिर्मिताम् ।
जपमालां शुभां विद्धि प्रशस्तामुत्तरोत्तराम् ॥१५२॥

अनेनोक्तविधानेन लक्षसंख्यं जपेन्मनुम् ।
होमं दशांशतः कुर्यात् तर्पणं चाभिषेचनम् ।।१५३।।
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत् प्रिये !।।१५४।।

महाथवर्णसंहितायाम्

षोडशार्णा महाविद्या देवानामपि दुर्लभा ।
कोटिजन्मार्जितैः पुण्यैर्महद्भिर्भक्तिनोदितैः ।।१५५।।
येन लब्धा कुलेशानि! सद्गुरोर्मुखपङ्कजात् ।
स धन्यः सर्वलोकेषु पूज्यस्त्रिभुवनौकसाम् ।।१५६।।
नातः परतरा विद्या त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
अतः सर्वप्रयत्नेन विद्येयं षोडशाक्षरी ।।१५७।।
जप्तव्या साधकश्रेष्ठैर्ध्यातव्या गुह्यकालिका ।
येनेयं साधिता विद्या स एव स्यात् सदाशिवः ।।१५८।।

महाकालसंहितायाम्

दशवक्त्रा तु या प्रोक्ता गुह्यकाली मया तव ।
प्रकृतिः सा परिज्ञेया कालीनां जगदम्बिका ।।१५९।।
अन्या विकृतयः प्रोक्ताः कार्यकारणभेदतः ।

तथा

सैव ज्ञेया वरारोहे निर्गुणब्रह्मरूपिणी ।।१६०।।
जगत् सर्वं वशे तस्या वश्या कस्यापि सा न च ।
विश्वं सर्वं सृजति सा कोऽपि सृजति तां न हि ।।१६१।।
सा पालयति संसारं तां पालयति कोऽपि न ।
तां न संहरते कोऽपि सा सर्वं संहरत्यदः ।।१६२।।
तदाज्ञयाऽनिलो वाति सूर्यस्तपति तद्भयात् ।

महाथर्वणसंहितायाम्

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सेन्द्राश्चैव दिवौकसः ।
ऋषयश्च मरीच्याधास्तामेव समुपासते ।।१६३।।

इति श्री गुह्यकालीमन्त्रसाधन विधिः ।

❖

घ. अथ श्रीकामकलाकाली मन्त्रः

महाकालसंहितायाम्

श्री देव्युवाच

परात् पर परेशान शशाङ्ककृतशेखर ।
योगादियोगिन् सर्वज्ञ सर्वभूतदयापर ।।१६४।।
त्वत्तः श्रुता मया मन्त्राः सर्वतन्त्रेषु गोपिताः ।
विधिवत् पूजनं चापि न्यासावरणकक्रमैः ।।१६५।।
तारा च छिन्नमस्ता च तथा त्रिपुरसुन्दरी ।
बाला च वगला चापि त्रिपुरा भैरवी तथा ।।१६६।।
काली दक्षिणकाली च कुब्जिका विवरेश्वरी ।
अघोरा राजमातङ्गी सिद्धिलक्ष्मीस्त्वरुन्धती ।।१६७।।
अश्वारूढ़ा भोगवती नित्यक्लिन्ना च कुक्कुटी ।
कौमारी चापि वाराही चामुण्डा चण्डिकाऽपि च ।।१६८।।
भुवनेशी तथोच्छिष्टचाण्डाली चण्डघण्टिका ।
कालसंकर्षिणी चापि गुह्यकाली तथाऽपरा ।।१६९।।
एताश्चान्याश्च वै देव्यः समन्त्राः कथितास्त्वयाः ।
किन्तु कामकलाकालीं नोक्तवानसि मे प्रभो!।।१७०।।
तत् किं मय्यपि गोप्यं ते प्रायशः परमेश्वर ।
न हीदृशं त्रिलोकेषु तव किञ्चन विद्यते ।।१७१।।
यदकथ्यं मयि भवेदपि प्राणाधिकाधिकम् ।
तत् किं गोपयसि प्राज्ञ मयीदं दैवतं महत् ।।१७२।।
यद्यस्मि ते दयापात्रं मान्याऽस्मि स्नेहभाजनम् ।
अनुग्राह्याऽस्मि कान्ताऽस्मि वद साम्प्रतम् ।।१७३।।
देवीं कामकलाकाली समन्त्रध्यानपूर्विकाम् ।
सरहस्यां सकवचां कथयस्व मम प्रभो ।।१७४।।

महाकाल उवाच

धन्याऽस्यनुगृहीत्वाऽसि तया देव्यैव सर्वथा ।
यत् ते बुद्धिः समुत्पन्नां तां देवीं प्रति भामिनी ।।१७५।।

विधाय शपथं देवि! कथयामि तवाग्रतः ।
न हीदृशं भुक्तिमुक्तिसाधनं भुवि विद्यते ।।१७६।।
यथार्थमात्थ देवि! त्वं गोप्यत्वं चापि सर्वथा ।
किन्तु भक्तिविशेषात् ते कथयामि न संशयः ।।१७७।।
राज्यं दद्याद्धनं दद्यात् स्त्रियं दद्याच्छिरस्तथा ।
न तु कामकलाकालीं दद्यात् कस्यापि न क्वचित् ।।१७८।।
इन्द्रेणोपासिता पूर्वं देवराज्यमभीप्सिता ।
वरुणेन कुबेरेण ब्रह्मणा च मया तथा ।।१७९।।
रामेण रावणेनापि यमेनापि विवस्वता ।
चन्द्रेण विष्णुना चापि तथाऽन्यैश्च महर्षिभिः ।।१८०।।
सहेलं वा सलीलं वा यस्याः स्मरणमात्रतः ।
विद्यालक्ष्मीः राज्यलक्ष्मीः कीर्त्तिलक्ष्मीर्वशे स्थिता ।।१८१।।
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।
राज्यार्थी लभते राज्यं कान्तार्थी कामिनीं शुभाम् ।।१८२।।
यशोऽर्थी कीर्त्तिमाप्नोति मुक्त्यर्थी मुक्तिमाप्नुयात् ।
अणिमाद्यष्टसिद्ध्यर्थी सिद्ध्यष्टकमवाप्नुयात् ।।१८३।।

तथा

द्विसप्ततितमं यावत् पुरुषाः पूर्वजाः स्थिताः ।
तेषां भाग्योदयैः पूर्णैर्विद्येयं यदि लभ्यते ।।१८४।।
तदा सर्वस्वादानेन गृह्णीयादविचारयन् ।
कृतकृत्यं मन्यमानो गुरोः पादावभिस्पृशन् ।।१८५।।

तथा

एकतः प्राणदानं स्यादेकतश्चैतदर्पणम् ।
तुलया विधृतं चेत् स्यादेतद्दानं विशिष्यते ।।१८६।।

तथा

कोटिजन्मार्जितैः पुण्यैर्लभ्यते वा न लभ्यते ।
शपथं कुरु देवेशि! प्रकाश्येयं न कुत्रचित् ।।१८७।।
सत्यं सत्यं त्रिसत्यं मे ततो वक्ष्यामि पार्वति!।
नो चेत् तेऽपि न वक्ष्यामि प्रमाणं तत्र सैव मे ।।१८८।।

देव्युवाच

शपे त्वच्चरणाब्जाभ्यां हिमाद्रिं शिरसा शपे ।
शपे स्कन्दैकदन्ताभ्यां यद्येनामन्यतो ब्रुवे ।।१८९।।
शपेऽथ वा तया देव्या यां मे त्वं कथयिष्यसि ।
प्रकाशयामि यद्येनां सैव मे विमुखी भवेत् ।।१९०।।

महाकाल उवाच

साधु साधु महाभागे प्रतीतिर्मेऽधुना त्वयि ।
अकार्षीः शपथं यस्मात् तस्माद्वक्ष्याम्यसंशयम् ।।१९१।।
समाहिता सावधाना भव देवि! वरानने!।
विधेहि चित्तमेकाग्रं बध्द्वाऽञ्जलिपुटं प्रिये!।।१९२।।
कालीं कामकलापूर्वां शृणुष्वावहिता मम ।

तथा

या गुह्यकाली सैवेयं काली कामकलाऽभिधा ।
मन्त्रभेदाद्ध्यानभेदाद्भवेत् कामकलात्मिका ।।१९३।।
यथा त्रिभेदा तारा स्यात् सुन्दरी सप्तसप्ततिः ।
दक्षिणा पञ्चभेदा स्यात् तथेयं गुह्यकालिका ।।१९४।।
सप्तधा ध्यानमन्त्राभ्यां जायते भिन्नरूपिणी ।
यथा पञ्चाक्षरो मन्त्रो देवी चैकजटा स्मृता ।।१९५।।
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो देवी दक्षिणकालिका ।
तथाऽन्येष्वपि देवेषु मुख्यासु बहुषु प्रिये ।।१९६।।
देवी कामकलाकाली मनुरष्टादशाक्षरः ।
षोडशार्णा यथा मुख्या सर्वश्रीचक्रमध्यगा ।।१९७।।
तथेयं नवकालीषु सदा मुख्यतमा स्मृता ।
त्रैलोक्याकर्षणो नाम मन्त्रोऽस्याः परिकीर्त्तितः ।।१९८।।
तस्योद्धारं प्रवक्ष्यामि शृणु यत्नेन पार्वति !।
श्रुत्वाऽवधारयस्वेमा सर्वकल्याणहेतवे ।।१९९।।

मन्त्रोद्धारमाह

आद्यवर्गाद्यवर्णोऽक्ष्णा वामेन परिशीलितः ।
मूर्ध्नि मूर्ध्ना यतृतीययुगधः परिकीर्त्तितः ।।२००।।

विन्दुवामाक्षिसंयुक्तो वह्निः खपरमस्तकः ।
वामश्रुत्यर्धचन्द्रेण तृतीयः सपरो भवेत् ।।२०१।।
दक्षस्कन्धोर्ध्वदन्ताभ्यां चाक्षरो विन्दुमस्तकः ।
ओष्ठवर्गद्वितीयो हपूर्वाधरोष्ठविन्दुयुक् ।।२०२।।
षडक्षराणि सम्बोध्य यथानामस्थितिक्रमात् ।
प्रतिलोमेन चोद्धृत्य तानि बीजानि पञ्च वै ।।२०३।।
भूतबीजाद्यमारभ्य मारबीजान्तमेव हि ।
वैश्वानरवधूयुक्तो मन्त्रो ह्यष्टादशाक्षरः ।।२०४।।
अस्याः स्मरणमात्रेण यावत्यः सन्ति सिद्धयः ।
स्वयमायान्ति पुरतो जपादीनां च का कथा ।।२०५।।
सप्त कामकलाकाल्या मनवः सन्ति गोपिताः ।
तेषु सर्वेषु मन्त्रेषु मुख्योऽयं परिकीर्त्तितः ।।२०६।।
स्मरणादस्य मन्त्रस्य मूर्च्छिताः सर्वदेवताः ।
स्तम्भिता वेपमानाश्च उत्तिष्ठन्त्यतिविह्वलाः ।।२०७।।
निदेशवर्त्तिनो भूत्वा वर्त्तन्ते चेटका इव ।
किं बहूक्तेन देवेशि! सत्यपूर्वं ब्रवीम्यहम् ।।२०८।।
सहस्रवदनेनापि लक्षकोट्याननेन वा ।
महिमा वर्णितुं शक्यो नास्य वर्षायुतैर्मया ।।२०९।।
सामान्यतो विजानीह यद्यदिच्छति साधकः ।
तत् तत् करोति सकलं प्रजापतिरिवापरः ।।२१०।।
त्रैलोक्याकर्षको नाम मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ।

ऋष्यादिन्यासमाह—

अतः परं प्रवक्ष्यामि छन्दश्चर्षिं च बीजकम् ।।२११।।
अस्य कामकलाकालीमन्त्रस्याहमृषिर्मतः ।
छन्दश्च वृहतीख्यातं देवी चेयं प्रकीर्त्तिता ।।२१२।।
आद्यबीजं तु बीजं स्यात् क्रोधार्णा शक्तिरेव च ।
विनियोगोऽस्य सर्वस्य सर्वदा सर्वसिद्धये ।।२१३।।
षडङ्गं पञ्चबीजैस्तैर्नाम्नाऽप्येकं च कारयेत् ।
नामाक्षराणि प्रत्येकं तत्र देयानि पार्वति!।।२१४।।

अथ ध्यानम्–

ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि कुरु चित्तैकताननताम् ।
उद्यद्घनाघनाश्लिष्यज्जवाकुसुमसन्निभाम् ॥२१५॥
मत्तकोकिलनेत्राभां पक्वजम्बूफलप्रभाम् ।
सुदीर्घप्रबलालम्बिविस्रस्तघनमूर्धजाम् ॥२१६॥
ज्वलदङ्गारवच्छोणनलेत्रत्रितयभूषिताम् ।
उद्यच्छारदसंपूर्णचन्द्रकोकनदाननाम् ॥२१७॥
दीर्घदंष्ट्रायुगोदञ्चद्विकरालमुखाम्बुजाम् ।
वितस्तिमात्रनिष्क्रान्तललज्जिह्वाभयानकाम् ॥२१८॥
व्यात्ताननतया दृश्यद्वात्रिंशद्दन्तमण्डलम् ।
निरन्तरं वेपमानोत्तमाङ्गा घोररूपिणीम् ॥२१९॥
अंसासक्तनृमुण्डासृक्पिवन्तीं वक्त्रकन्दरात् ।
सृक्कद्वन्द्वस्रवद्रक्तस्नापितोरोजयुग्मकाम् ॥२२०॥
उरोजाम्भोजसंसक्तसम्पतद्रुधिरोच्चयाम् ।
सश्वीत्कृतिं धयन्तीं तल्लेलिहानरसज्ञया ॥२२१॥
ललाटे घननासृग्विहितारुणचित्रकाम् ।
सद्यश्छिन्नगलद्रक्तनृमुण्डकृतकुण्डलाम् ॥२२२॥
श्रुतिनद्धकचालम्बिवतंसलसदंसकाम् ।
स्रवदस्रौघया शश्वन्मानव्या मुण्डमालया ॥२२३॥
आकण्ठगुल्फलम्बिन्याऽलङ्कृतां केशबद्धया ।
श्वेतास्थिगुलिकाहारग्रैवेयकमहोज्ज्वलाम् ॥२२४॥
शवदीर्घाङ्गुलिपङ्क्तिमण्डितोरः स्थलस्थिराम् ।
कठोरपीवरोत्तुङ्गवक्षोजयुगलान्विताम् ॥२२५॥
महामारकतग्रावस्वेदिश्रोणिपरिष्कृताम् ।
विशालजघनाभोगामतिक्षीणकटिस्थलाम् ॥२२६॥
अन्त्रनद्धार्भकशिरोवलत्किङ्किणीमण्डिताम् ।
सुपीनषोडशभुजां महाशङ्खाञ्चदङ्गदाम् ॥२२७॥
शवानां धमनीपुञ्जैर्वेष्टितैः कृतकङ्कणाम् ।
ग्रथितैः शवकेशैः स्रग्दामभिः कटिसूत्रिणीम् ॥२२८॥
शवपोतकरश्रेणीग्रथनैः कृतमेखलाम् ।
शोभमानाङ्गुलीमांसमेदोमज्जाङ्गुलीयकैः ॥२२९॥

अस्त्रिं त्रिशूलं चक्रं च शरमङ्कुशमेव च ।
लालनं च तथा कर्त्रीमक्षमालां च दक्षिणे ।।२३०।।
पाशं च परशुं नागं चापं मुद्गरमेव च ।
शिवापोतं खर्परं च वसासृङ्मेदसान्वितम् ।।२३१।।
लम्बत्कचं नृमुण्डं च धारयन्तीं स्ववामतः ।
विलसन्नूपुरां देवीं ग्रथितैः शवपञ्जरैः ।।२३२।।
श्मशानप्रज्वलद्घोरचिताग्निज्वालमध्यगाम् ।
अधोमुखमहादीर्घप्रसुप्तशवपृष्ठगाम् ।।२३३।।
वमन्मुखानलज्वालाजालव्याप्तदिगन्तराम् ।
प्रोत्थायैव हि तिष्ठन्तीं प्रत्यालीढ़पदक्रमात् ।।२३४।।
वामदक्षिणसंस्थाभ्यां नदन्तीभ्यां मुहुर्मुहुः ।
शिवाभ्यां घोररूपाभ्यां वमन्तीभ्यां महानलम् ।।२३५।।
विद्युदङ्गारवर्णाभ्यां वेष्टितां परमेश्वरीम् ।
सर्वदैवानुलग्नाभ्यां पश्यन्तीभ्यां महेश्वरीम् ।।२३६।।
अतीव भीषमाणाभ्यां शिवाभ्यां शोभितां मुहुः ।
कपालसंस्थं मस्तिष्कं ददतीं च तयोर्द्वयोः ।।२३७।।
दिगम्बरां मुक्तकेशीमट्टाहासभयानकाम् ।
सप्तधा बद्धनारान्त्रयोगपट्टविभूषिताम् ।।२३८।।
संहारभैरवेणैव सार्धं संभोगमिच्छतीम् ।
अतिकामातुरां कालीं हसन्तीं खर्वविग्रहाम् ।।२३९।।
कोटिकालानलज्वालान्यक्कारोद्यत्कलेवरम् ।
महाप्रलयकोट्यर्कविद्युदर्वुदसन्निभाम् ।।२४०।।
कल्पान्तकारिणीं कालीं महाभैरवरूपिणीम् ।
महाभीमां दुर्निरीक्षां सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।।२४१।।
शत्रुपक्षक्षयकरीं दैत्यदानवसूदनीम् ।
चिन्तयेदोदृशी देवीं कालीं कामकलाभिधाम् ।।२४२।।

अथ पुरश्चरणं तत्रैव

अतः परं प्रवक्ष्यामि पौरश्चरणिकं विधिम् ।
एकस्मिन् पत्रविहिते सिद्धिस्तात्कालिकी भवेत् ।।२४३।।
भूमिशुद्धिर्द्रव्यशुद्धिः पूर्वैव कथिता मया ।
यमाश्च नियमा ये स्युः पुरश्चरणकर्मणि ।।२४४।।

सर्वानेव प्रयुञ्जीत सततं भक्तितत्परः ।
कृतनित्यक्रियः प्रातः कृतपूजाविधिः शुचिः ।।२४५।।
नरास्थि निखनेद्भूमावस्त्रमन्त्रमुदीरयन् ।
तारं क्रोधोऽनु ह्रीं पाशस्मरभूतान् समुद्धरेत् ।।२४६।।
सिद्धिमुच्चार्य देहीति युग्मं वह्न्यङ्गनां वदेत् ।
भूतबीजं स्फ्रोमिति तथा–
तदुपर्येव चास्तीर्य स्वासनं सुष्ठु कल्पितम् ।
नृमुण्डमग्रतः कृत्वा नरास्थिजपमालया ।।२४७।।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवां शुचिः ।
अशुचिश्च तथा रात्रौ लक्षमेकं तथैव च ।।२४८।।
दशांशं होमयेन्मन्त्री तर्पयेदभिषेचयेत् ।
होमे सन्तर्पणे चैव पूजावत् कथितो विधिः ।।२४९।।
पूजायां वा प्रयोगे वा होमे वा तर्पणेऽथ वा ।
गुह्य कालीविधानेन सर्वं कार्यं शुचिस्मिते !।।२५०।।
अत्रानुक्तं विधानं यत् तत्रत्यं तत् प्रकल्पयेत् ।
तत्राप्यनुक्तं यत् किञ्चित् तत्रोक्तो दक्षिणाविधिः ।।२५१।।

इति श्रीकालिकाप्रकरणम्

❖

श्री कामाख्या काली प्रकरणम्

कामाख्यातन्त्रे

श्री देवी उवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ! सर्वविद्याप्रिय प्रभो!।
सवैदानन्दहृदय! सर्वागमप्रकाशक ।।१।।
श्रुतानि सर्वतन्त्राणि यामलानि च भूरिशः ।
विद्यास्ताः सकला देव! फलानि त्वत्प्रसादतः ।।२।।
सारात् सारतरं तन्त्रं जानासि किं वद प्रभो!
अतीवेदं रहःस्थानं तेनाहं श्रवणोद्यता ।।३।।

पद्मा—कामाख्या तन्त्र में श्री देवी ने कहा-हे भगवन् । हे प्रभो ! आप सभी धर्मों के ज्ञाता, समस्त विद्याओं के स्वामी, सभी आगमों के प्रकाश और सदा ही आनन्दमय हृदय वाले है । हे देव ! मैने सभी तन्त्रों और यामलों को अनेक बार सुना है । आपकी कृपा से मुझे सभी विद्याएं ज्ञात हो गयी हैं । हे प्रभो ! आप रहस्य से भी रहस्यतर तन्त्र के ज्ञाता हैं अत: रहस्यमय तन्त्र को मुझे कहिए ॥१-३॥

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि! मुदा भद्रे! मदीये प्राणवल्लभे!।
योनिरूपा महाविद्या कामाख्या वरदायिनी ।।४।।
वरदाऽऽनन्ददा नित्या महाविभववर्द्धिनी ।
सर्वेषां जननी साऽपि सर्वेषां तारिणी मता ।।५।।
रमणी चैव सर्वेषां स्थूला सूक्ष्मा सदा शुभा ।
तस्यास्तन्त्रं प्रवक्ष्यामि सावधानाऽवधारय ।।६।।
निखिलासु च विद्यासु ये ये सिध्यन्ति साधकाः ।
यत्र कुत्रापि केनापि कामाख्या फलदायिनी ।।७।।
कामाख्या सिद्धिदा तेषां सर्वविद्यास्वरूपिणी ।
कामाख्याविमुखा लोका निन्दिता भुवनत्रेय ।।८।।

पद्मा—श्रीशिव ने कहा–हे भद्रे ! हे प्राणवल्लभे ! प्रसन्नतापूर्वक सुनो । योनि स्वरूपा और वरदायिनी कामाख्या महाविद्या हैं । वे वरप्रदान करने वाली आनन्द देने वाली तथा महान् ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाली हैं । वह सभी की जननी और सभी का उद्धार करने

वाली कही गयी हैं। वह सभी की रमणी, स्थूला और सूक्ष्मा होते हुए कल्याणकारी हैं। भगवती कामाख्या का तन्त्र कहता हूँ, अत्यन्त सावधान होकर सुनो। समस्त विद्याओं में सिद्धि प्राप्ति के लिए साधकगण जिन विभिन्न साधनाओं को प्राप्त करते हैं उन सभी विद्याओं में एक मात्र कामाख्या ही फलदायिनी होती है। कामाख्या से विमुख साधकों की निन्दा तीनों लोक में होती है ॥५-८॥

विना कामात्मिकां काऽपि न दात्री सिद्धिसम्पदाम्।
कामाख्या च सदा धर्मः कामाख्या चार्थ एव च ॥९॥
कामाख्या कामसम्पतिः कामाख्या मोक्ष एव च।
निर्वाणं सैव देवेशि! सैव सायुज्यमीरिता ॥१०॥
सालोक्यं सहरूपं च कामाख्या परमा गतिः।
सेविता देवि! ब्रह्माद्यैश्चेन्द्रेण विष्णुना तथा ॥११॥

पद्मा—विना कामाख्या के कहीं भी कोई भी शक्ति सिद्धि एवं सम्पत्तिदायिनी नही होती है। कामाख्या सदैव धर्म और अर्थ स्वरूपा है। कामाख्या काम और अर्थस्वरूपा है। हे देवि! कामाख्या ही निर्वाण मुक्ति और सायुज्य मुक्ति कही गयी है। कामाख्या ही श्रेष्ठगति है। हे देवि! कामाख्या, ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रादि देवताओं से सेवित है ॥९-११॥

मन्त्रोद्धारः

मन्त्रोद्धांर प्रवक्ष्यामि शृणु देवि! परात् परम्।
यज्ज्ञात्वा साधयेत् सिद्धिं देवानामपि दुर्लभम् ॥१२॥
मन्त्रस्यास्य प्रभावेण मोहदेयखिलं जगत्।
ब्रह्मादीन् मोहयेद् देवि! बालकं जननीं यथा ॥१३॥
देवदानवगन्धर्वकिन्नरादीन् सुरेश्वरि!।
मोहयेत् क्षणमात्रेण प्रजाश्च नृपतिर्यथा ॥१४॥
मन्त्रस्य पुरतो देवि! राजानं सचिवादयः।
अन्ये च मानवाः सर्वे मेषादिजन्तवो ॥१५॥
मोहयेन्नगरं राज्ञः सहस्त्यश्वरथादिकम्।
उर्वश्याद्यास्तु स्वर्वेश्या राजपत्न्यादिकाः क्षणात् ॥१६॥
स्तम्भनं मोहनं देवि! क्षोभणं जृम्भणं तथा।
द्रावणं त्रासनञ्चैव विद्वेषोच्चाटनं तथा ॥१७॥
आकर्षणञ्च नारीणां विशेषेण महेश्वरि!।
वशीकरणमन्यानि साधयेत् साधकोत्तमः ॥१८॥

पद्मा—हे देवि ! कामाख्या देवी के मन्त्रोद्धार की विधि कह रहा हूँ सुनो। इस मन्त्रोद्धार का ज्ञान प्राप्त होने पर साधक को देवताओं को भी दुर्लभ सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इस मन्त्र के प्रभाव से साधक सम्पूर्ण जगत् को मोह लेता है। जिस प्रकार बालक को माता मोहित करती है अथवा राजा जिस प्रकार प्रजा को वशीभूत कर लेता है उसी प्रकार हे सुरेश्वरि ! देव, दानव, गन्धर्व, किन्नर आदि क्षण भर में वश में आ जाते हैं। हे देवि ! इस मन्त्र के सामने राजा और मन्त्री तथा अन्य सभी मनुष्य भेड़ आदि पशुओं के समान वशीभूत हो जाते हैं। हाथी, घोड़े रथ आदि के सहित सम्पूर्ण नगर, राजा की रानी और उर्वशी आदि स्वर्ग के वेश्यायें (अप्सरायें) भी इस मन्त्र के प्रभाव से क्षण भर से वशीभूत हो जाती हैं। हे देवि ! स्तम्भन, मोहन, क्षोभण, जृम्भण, द्रावण, त्रासन, विद्वेषण, उच्चाटन, विशेष रूप से स्त्रियों का आकर्षण तथा अन्य वशीकरण करने में सक्षम हो जाता है ॥१२-१८॥

जृम्भणान्तं त्यक्तपाशं यात्रावारणरोहकम्।
वामकर्णयुतं देवि! नादविन्दुयुतं पुनः ॥१९॥
एतत्तु त्रिगुणीकृत्य कल्पवृक्षमनुं जपेत्।
एवं वापि द्वयं वापि चतुर्थं वा जपेत् सुधीः ॥२०॥

पद्मा—नादविन्दु से युक्त जृम्भणान्त (त) यात्रावारण (र) वामकर्ण (ई) से हे देवि ! **त्रीं** बीज बनता है। इस बीज को त्रिगुणित करने पर **त्रीं त्रीं त्रीं** मन्त्र बनता है। कल्पवृक्ष के समान फलदायक इस मन्त्र का जप करे। बुद्धिमान साधक एक दो अथवा चार बार इस मन्त्र का जप करे ॥१९-२०॥

सिन्दूरमण्डलं कृत्वा त्रिकोणं च समालिखेत्।
निजबीजानि तन्मध्ये योजयेत् साधकोत्तमः ॥२१॥
चतुरस्रं लिखेद् देवि! ततो वज्राष्टकं प्रिये!।
अष्टादिक्षु यजेत् तां तु न्यासजालं विधाय च ॥२२॥
अक्षोभ्यश्च ऋषिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।
कामाख्या देवता सर्वसिद्धये विनियोजिता ॥२३॥
कराङ्गन्यासकं चैव निजबीजेन कारयेत्।
षड्दीर्घभाजां ध्यायेत्तु कामाख्यामिष्टदायिनीम् ॥२४॥

पद्मा—सिन्दूर से वृत्त बनाकर त्रिकोण की रचना करे। उसके मध्य में निज बीजों त्रीं त्रीं त्रीं को श्रेष्ठ साधक लिखे। इसके पश्चात् चतुष्कोण बनाकर आठ वज्रों को अंकित कर न्यासों को कर आठ दिशाओं में उनकी पूजा करे। कामाख्या मन्त्र के ऋषि अक्षोभ्य, छन्द अनुष्टुप्, देवता कामाख्या और सर्वसिद्धि के लिए विनियोग है। निजबीज **(त्रीं)** मे

छः दीर्घ स्वर लगाकर (त्रां त्रीं, त्रूं, त्रैं, त्रौं त्रः)। कराङ्गन्यासादि करे। इसके पश्चात् अभीष्टदायिनी कामाख्या देवी का ध्यान करे ॥२१-२४॥

ध्यानम्

रक्तवस्त्रां वरोद्युतां सिन्दूरतिलकान्विताम्।
निष्कलङ्कां सुधाधामवदनकमलोज्ज्वलाम्।।२५।।
स्वर्णादिमणिमणिक्यभूषणैर्भूषितां पराम्।
नानारत्नादिनिर्माणसिंहासनोपरिस्थिताम् ।।२६।।
हास्यवक्त्रां पद्मरागमणिकान्तिमनुत्तमाम्।
पीनोत्तुङ्कुचां कृष्णां श्रुतिमूलगतेक्षणाम्।।२७।।
कटाक्षैश्च महासम्पद्दायिनीं परमेश्वरीम्।
सर्वाङ्गसुन्दरीं नित्यां विद्याभिः परिवेष्टिताम्।।२८।।
डाकिनीयोगिनीविद्याधरीभिः परिशोभिताम्।
कामिनीभिर्युतां नानागन्धाद्यैः परिगन्धिताम्।।२९।।
ताम्बूलादिकराभिश्च नायिकाभिर्विराजिताम्।
समस्तसिद्धवर्गाणां प्रणतां च प्रतीक्षणाम्।।३०।।
त्रिनेत्रां मोहनकरीं पुष्पचापेषु बिभ्रतीम्।
भगलिङ्गसमाख्यानां किन्नरीभ्योऽपि नृत्यताम्।।३१।।
वाणी-लक्ष्मी-सुधा-वाक्य-प्रतिवाक्य-समुत्सुकाम्।
अशेषगुणसम्पन्नां करुणासागरां शिवाम्।।३२।।

पद्मा—लाल वस्त्रधारिणी, वर देने को उद्यत्, सिन्दूर का तिलक लगाए, अमृत के धाम निर्मल चन्द्रमा के समान उज्ज्वल, एवं कमल के समान सुन्दर मुखवाली स्वर्णादि से निर्मित मणिमाणिक्यजटित आभूषणों से सुशोभित, अनेक प्रकार के रत्नों से निर्मित सिंहासन पर बैठी हुई, हँसमुखी, पद्मराग मणि के समान आभावाली, मांसल, सुडौल एवं ऊँचे स्तनों वाली, कृष्णवर्णा, कान तक फैले बड़े बड़े नेत्रों वाली, क़टाक्षमात्र से ही अत्यधिक ऐश्वर्य देने वाली, शंकर को मोहित करने वाली, समस्त सुन्दर अंगो वाली, नित्या, विद्याओं द्वारा घिरी हुई, डाकिनी-योगिनी-विद्याधरी-समूहों द्वारा शोभायमाना, सुन्दर स्त्रियों से विभूषिता, विविध सुगन्धादि से सुवासित शरीर वाली हाथों मे ताम्बूलादि लिए हुए नायिकाओं द्व्रारा सुशोभिता, प्रतिक्षण समस्त सिद्धसमूहों द्वारा वन्दिता, तीन नेत्रों वाली, समस्त जगत् को मोहित करने वाली, पुष्प व धनुष धारण करने वाली, भग लिंग के आख्यायन से युक्त एवं किन्नरियों के समान नृत्यपरायणा, देवी के अमृतमय वचनों को सुनने के लिये उत्सुका सरस्वती और लक्ष्मी से युक्ता देवी कामाख्या समस्त गुणों से सम्पन्ना, असीम दयामयी एवं मंगलस्वरूपा हैं ॥२५-३२॥

आवाहयेत् ततो देवीमेवं ध्यात्वा च साधकः ।
पूजयित्वा यथोक्तेन विधानेन हरप्रिये !।।३३।।
कुंकुमाद्यै रक्तपुष्पैः सुगन्धिकुसुमैस्तथा ।
जवायावकसिन्दूरैः करवीरैर्विशेषतः ।।३४।।
करवीरेषु देवेशि ! कामाख्या तिष्ठति स्वयम् ।
जवायां च तथा विद्धि मालत्यादिसमीपके ।।३५।।
करवीरस्य माहात्म्यं कथितं नैव शक्यते ।
प्रदानात्तु जवायाश्च गाणपत्यमवाप्नुयात् ।।३६।।

पद्मा—उपरोक्त प्रकार से ध्यान कर कामाख्या देवी का आवाहन करे। हे शिवप्रिये ! यथोक्त विधि से उनकी पूजा करे। कुंकुमादि रक्त पुष्पों, सुगन्धित कुसुमों, जवा, यावक, सिन्दूर और विशेष कर करवीर पुष्पों से पूजन करे। हे देवेशि ! करवीर पुष्पों में कामाख्या देवी स्वयं निवास करती हैं। जवा और मालती आदि सुगन्धित पुष्पों को भी वैसा ही समझे। हे देवि ! करवीर (कनेर) पुष्प की महिमा कहने मे मैं समर्थ नही हूँ। जवा पुष्प को प्रदान करने से साधक स्वयं गणपति स्वरूप बन जाता है।

पूजयेदम्बिकां देवीं पञ्चतत्त्वेन सर्वदा ।
पञ्चतत्त्वं विना पूजामभिचाराय कल्पयेत् ।।३७।।
पञ्चतत्त्वेन देव्यास्तु प्रसादो जायते क्षणात् ।
पञ्चमेन महादेवि ! शिवो भवति साधकः ।।३८।।
पञ्चतत्त्वसमं नास्ति नास्ति किञ्चित् कलौयुगे ।
पञ्चतत्त्वं परं ब्रह्म पञ्चतत्त्वं परा गतिः ।।३९।।
पञ्चतत्त्वं महादेवि ! पञ्चतत्त्वं सदाशिवः ।
पञ्चतत्त्वं स्वयं ब्रह्मा पञ्चतत्त्वं जनार्दनः ।।४०।।
पञ्चतत्त्वं भुक्तिमुक्तीर्महायोगः प्रकीर्तितः ।
पञ्चतत्त्वं विना नान्यत् शाक्तानां सुखमोक्षयोः ।।४१।।

पद्मा—अम्बिका की पूजा सदैव पञ्चतत्त्वों से करे ! पञ्चतत्त्वों के बिना पूजा निरर्थक होती है। इनके द्वारा पूजन से देवी क्षण भर में ही प्रसन्न हो जाती है। हे महादेवि ! पञ्चमकारों से साधक शिव के समान प्रभावशाली हो जाता है। कलियुग में पञ्चतत्त्वों के समान कुछ भी नही है। पञ्च तत्त्व परब्रह्मस्वरूप है और श्रेष्ठ गति देने वाले हैं। हे महादेवि ! पञ्चतत्त्व स्वयं ही ब्रह्मा, विष्णु और शिवस्वरूप हैं। पञ्चतत्त्वों से भोग एवं मोक्ष दोनों ही प्राप्त होते हैं अतः उनका साधन महायोग कहा गया है। शाक्तों को पञ्चतत्त्वों के बिना मोक्ष व मोक्ष प्राप्त नही होता है ।।३७-४१।।

मद्येन मोदते स्वर्गे मांसेन मानवाधिपः ।
मत्स्येन भैरवीपुत्रो मुद्रया साधुतां व्रजेत् ।।४२।।
परेण च महादेवि! सायुज्यं लभते नरः ।
भक्तियुक्तो यजेद् देवीं तदा सर्वं प्रजायते ।।४३।।

पद्मा—'मद्य' से स्वर्ग का जैसा आनन्द प्राप्त होता है, 'मांस' के राज्य प्राप्त होता है 'मत्स्य' से भैरवीपुत्र की योग्यता प्राप्त होती है, मुद्रा से साधुता प्राप्त होती है। परम तत्त्व पञ्चम (मैथुन) से सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है। भक्तिपूर्वक देवी का यजन करने पर ही उपरोक्त लाभ होता है ॥४२-४३॥

स्वयम्भूकुसुमैः पुष्पैः कुण्डगोलोद्भवैः शुभैः ।
कुंकुमाद्यैरासवेन चार्घ्यं देव्यै निवेदयेत् ।।४४।।
नानोपहारनैवेद्यैरन्नदिपायसैरपि ।
वस्त्रभूषादिभिर्देवि! प्रपूज्यावरणं यजेत् ।।४५।।

पद्मा—स्वयम्भू कुसुमों और कुण्डगोलोद्भव शुभ पुष्पों के द्वारा, कुंकुमादि से तथा आसव से देवी को अर्घ्य निवेदित करे। अनेक प्रकार के उपहार, अन्नादि खीर, वस्त्र एवं आभूषणों से देवी का पूजन कर आवरण पूजा करे ॥४४-४५॥

इन्द्रादीन् पूजयेत् तत्र तेषां यन्त्राणि शङ्करि ।
पार्श्वयोः कमलां वाणीं पूजयेत् साधकोत्तमः ।।४६।।
अन्नदा धनदा चैव सुखदा जयदा तथा ।
रसदा मोहदा देवि! ऋद्धिदा सिद्धिदाऽपि च ।।४७।।
वृद्धिदा शुद्धिदा चैव भुक्तिदा मुक्तिदा तथा ।
मोक्षदा सुखदा चैव ज्ञानदा कान्तिदा तथा ।।४८।।
एताः पूज्या महादेव्यः सर्वदा यन्त्रमध्यतः ।
डाकिन्याद्यास्तथा पूज्याः सिद्धयो यत्नतः शिवे ।।४९।।

पद्मा—हे शङ्करि ! वहीं पर इन्द्रादि दिक्पालों और अस्त्रों की पूजा करे ! उत्तम साधक दोनों पार्श्वों में लक्ष्मी और सरस्वती की पूजा करे। हे देवि ! यन्त्र के मध्य में अन्नदा, धनदा, सुखदा, जयदा, रसदा, मोहदा, ऋद्धिदा, सिद्धिदा, वृद्धिदा, शुद्धिदा, भुक्तिदा, मुक्तिदा, मोक्षदा, सुखदा, ज्ञानदा, कान्तिदा इन १६ देवियों की सदा पूजा करे। हे शिवे ! इनके साथ ही प्रयत्नपूर्वक डाकिनी आदि सिद्धियों की उसी प्रकार पूजा करे ॥४६-४९॥

षडङ्गानि ततो देव्याः यजेत् पुष्पाञ्जलीन् क्षिपेत् ।
यथा-शक्ति जपेन्मन्त्रं शुद्धाभावेन साधकः ।।५०।।
जपं समर्प्य वाद्याद्यैस्तोषयेत् परदेवताम् ।
पठेत् स्तोत्रं च कवचं प्रणमेद् विधिनाऽमुना ।।५१।।

ततश्च हृदये देवीं संयुज्यं शेषिकां प्रति ।
निर्माल्यं निक्षिपेदैशे त्रिकोणं परिकल्पयेत् ।।५२।।
निर्माल्यं साधकैः सार्द्धं गृह्णीयाद् भक्तिभावतः ।
विहरेत् पञ्चतत्त्वेन यथाविधि स्वशक्तितः ।।५३।।

पद्मा—इसके पश्चात् देवी के षडङ्गो की पूजा कर पुष्पाञ्जलियाँ प्रदान करे और शुद्धभाव से साधक अपनी शक्ति के अनुसार मन्त्र का जप करे। जप समर्पित कर घण्टादि वाद्य बजाकर पर देवता को सन्तुष्ट करे और स्तोत्र, कवच का पाठ कर विधिपूर्वक प्रणाम करे। इसके पश्चात् हृदय में स्थित में देवी को शेषिका के प्रति उन्मुख कर ईशान कोण में त्रिकोण की कल्पना करके उस पर निर्माल्य को छोड़े। साधकों के साथ भक्तिपूर्वक निर्माल्य ग्रहण कर अपनी शक्ति के साथ पञ्चतत्त्वों से विहार करे ॥५०-५३॥

एवं तु पूजयेद् देवीं यं यं चोद्दिश्य साधकः ।
तं तं कामं करे कृत्वा प्रिये! जयति निश्चितम् ।।५४।।
पुरश्चरणकाले तु लक्षमेकं जपेत् सुधीः ।
तद्दशांश हुनेदाज्यैः शर्करामधुपायसैः ।।५५।।
तर्पयेद् तद्दशांशैश्च जलैश्चन्दनमिश्रितैः ।
गन्धाद्यैः साधकाधीशस्तद्दशैरभिषेचयेत् ।।५६।।
अभिषेकदशांशेन भोजयेच्च द्विजोत्तमान् ।
मिष्ठान्नैः साधकान् देवि! देवीभक्तांश्च पञ्चमैः ।।५७।।
एवं पुरस्क्रियां कृत्वा सिद्धो भवति साधकः ।
प्रयोगेषु ततो देवि! योग्यो भवति निश्चितम् ।।५८।।

पद्मा—हे प्रिये! जिस जिस उद्देश्य के लिए उपरोक्त प्रकार से जो देवी की पूजा करता है वह उस उस कामना को प्राप्त कर निश्चित ही जय प्राप्त करता है। विद्वानसाधक पुरश्चरण काल में मंत्र का एक लाख जप करे जप का दशांश हवन, घी, शर्करा, मधु एवं खीर से करे। हवन का दशांश तर्पण चन्दनयुक्त जल से करे। तर्पण का दशांश गन्धादि द्वारा अभिषेक करे। अभिषेक का दशांश श्रेष्ठ द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) को मिष्ठान्नों द्वारा और देवी के भक्तों को पञ्चतत्त्व द्वारा भोजन कराये। इस प्रकार पुरश्चरण की क्रिया करके साधक सिद्ध हो जाता है। हे देवि! इस प्रकार वह प्रयोगों को करने में निश्चित रूप से सक्षम हो जाता है ॥५४-५८॥

एतत् पूजादिकं सर्वं कामाख्याप्रीतिकारकम् ।
महाप्रीतिकरी पूजा योनिचक्रे कुलेश्वरि!।।५९।।
योनिपूजा महापूजा तत्समा नहि सिद्धिदा ।
तत्र देवीं यजेद् धीमान् सैव देवी न चान्यथा ।।६०।।

आवाहनादिकर्माणि च तत्र सर्वथा प्रिये !।
लेपयेत् तां तु गन्धाद्यैः पूजयेद् विविधेन च ।।६१।।
महाप्रीतिर्भवेद् देव्याः सिद्धो भवति तत्क्षणात् ।
योनिपूजासमा पूजा नास्ति ज्ञाने तु मामके ।।६२।।

पद्मा—हे कुलेश्वरि ! यह सभी पूजनादि देवी कामाख्या को प्रसन्न करता है । योनिचक्र मे की गयी पूजा से देवी अत्यधिक प्रसन्न होती है । योनि पूजा महापूजा है । योनिपूजा के समान अन्य कोई पूजा सिद्धिदायक नही होती है । बुद्धिमान साधक को योनि में ही पूजा करनी चाहिए इसमें अन्यथा नही है । योनि पूजन में हे प्रिये ! आवाहन आदि कर्म करने की आवश्यकता नहीं है । साधक योनि को सुगंधित पदार्थों से लेप कर विविध प्रकार से पूजन करे । ऐसा करने पर देवी को अत्यन्त ही प्रसन्नता होती है और वह तत्क्षण ही सिद्ध हो जाती है । मेरे ज्ञान में योनिपूजा से बढ़कर और कोई पूजा नही है ।५९-६२।।

चुम्बनाल्लेहनाद् योनेः कल्पवृक्षमतिक्रमेत् ।
दर्शनात् साधकाधीशः स्पर्शनात् सर्वमोहनः ।।६३।।
लिङ्गयोनिसमाख्यानः कामाख्याप्रीतिवर्द्धनम् ।
तदेव जीवनं तस्या गिरिजे ! बहु किं वचः ।।६४।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन योनिपूजां समाचरेत् ।

पद्मा—जो साधक योनि का चुम्बन करता है और योनि को चाटता है वह कल्पवृक्ष का भी अतिक्रम कर जाता है अर्थात् वह सभी की इच्छाओं को पूर्ण करने में समक्ष हो जाता है । साधकों में सर्वोच्च साधक योनि का दर्शन एवं उसको स्पर्श करके सभी को मोहित कर लेता है । लिंग और योनि की कथायें भगवती कामाख्या की प्रीति मे वृद्धि करने वाली हैं और वही कामाख्या का जीवन भी है । हे गिरिजे ! योनि के विषय में बहुत क्या कहा जाये ? इसलिए सभी प्रयास करके योनि की पूजा करे ॥६३-६४.१/२॥

परस्त्रीयोनिमासाद्य विशेषेण यजेत् सुधीः ।।६५।।
वेश्यायोनिः परा देवि ! साधनं तत्र कल्पयेत् ।
त्रिरात्रादेव सिध्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ।।६६।।
ऋतुयुक्तं लता मध्ये साधयेद् विधिवन्मुदा ।
अचिरात् सिद्धिमाप्नोति देवानामपि दुर्लभम् ।।६७।।
सारात् सारतरं देवि ! योनिसाधनमीरितम् ।
विना तत् साधनं देवि ! महाशापः प्रजायते ।।६८।।
योनिनिन्दां घृणां देवि ! यः करोति नराधमः ।
अचिराद् रौरवं याति देवि ! सत्यं शिवाज्ञया ।।६९।।

योनिमध्ये वसेद् देवी योगिन्यश्चिकुरे स्थिताः ।
त्रिकोणा च त्रयो देवाः शिवविष्णुपितामहः ।।७०।।
तस्मान्न निन्दयेद् योनिं यदीच्छेदात्मनो हितम् ।
योनिनिन्दां प्रकुर्वाणः सवंशेन विनश्यति ।।७१।।
योनिस्तुतिपरो देवि ! शिवः स्यात् तत्क्षणेन च ।
शैवानां वैशणवानां च शाक्तानां विशेषतः ।।७२।।
किं ब्रूमो योनिमाहात्म्यं योनिपूजाफलानि च ।
चाञ्चल्याद् गदितं किञ्चित् क्षन्तव्यं कामरूपिणि ।।७३।।

पद्मा—बुद्धिमान साधक किसी अन्य की नवयौवना स्त्री की योनि की विशेष रूप से पूजा करे । हे देवि ! इस योनि पूजन के लिए वेश्या की योनि* अत्युत्तम है । इसलिए वेश्या की योनि में ही साधना करे । इस प्रकार की साधना करने वाला साधक तीन रात्रि में ही सिद्धि को प्राप्त कर लेता है इसमें किसी भी प्रकार के विचार की आवश्यकता नही है । साधक ऋतुमती सुन्दरियों में मध्य में अनेक प्रकार के प्रयोग प्रसन्नतापूर्वक करे । ऐसा करने पर वह देवताओं को भी दुर्लभ सिद्धियों को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है । हे देवि ! योनि की साधना सार से भी सारतर कही जाती है । हे देवि ! विना योनिपूजन के महाशाप की प्राप्ति होती है । हे देवि ! जो भी नराधम व्यक्ति योनि की निन्दा या उससे घृणा करता है वह शिवाज्ञा से शीघ्र ही रौरव नामक नरक में जाता है यह निश्चित ही सत्य है । योनि के मध्य भाग में भगवती कामाख्या का निवास होता है तथा योनि में चारों ओर उगे हुए रोमों से योगिनियाँ स्थित रहती हैं । योनि के त्रिकोण में शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा स्थित रहते हैं । अत: स्वयं का कल्याण चाहने वाले साधक को कभी भी योनि निन्दा नही करनी चाहिए । हे देवि ! योनि की निन्दा करने वाला अपने वंश सहित नष्ट हो जाता है और योनि का प्रशंसक तत्काल ही शिव के समान प्रभावशाली हो जाता है । मै योनिपूजा के फल और उसकी महिमा के विषय में क्या कहूँ ? हे कामरूपिणी ! मैने चञ्चलता वश यदि कुछ कहा है जो उसे क्षमा करना ॥६५-७३॥

कामाख्यामन्त्रः
कामाख्यातन्त्रे–

वरमन्त्रं प्रवक्ष्यामि सादरं शृणु पार्वति !।
यस्य प्रसादमोत्रण ब्रह्मविष्णुशिवा अपि ।।७४।।
इन्द्राद्याः देवताः सर्वा भवन्ति कामनायुतः ।
गन्धर्वाः किन्नरा देवि ! तथा विद्याधरादयः ।।७५।।
यत्प्रसादं समागत्य स्वकीय विषयान्विताः ।
योगिनी डाकिनी विद्या भैरवी नायिकाऽऽदिकाः ।।७६।।

** द्रष्टय-निरुत्तरतन्त्र चतुर्दश पटल—अजय कुमार उत्तम*

कामाख्यामन्त्रमासाद्य भजन्ति योग्यतां पराम् ।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले ये ये सिद्ध्यन्ति साधकाः ।।७७।।

पद्मा—कामाख्या देवी का मन्त्र । कामाख्या तन्त्र में भी भैरव कहते हैं । हे पार्वति ! श्रेष्ठ मन्त्र कहता हूँ उसे आदरपूर्वक सुनो । इस मन्त्र के प्रभाव से ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी तथा इन्द्रादि सभी देवगण कामनापूर्ण होते हैं । हे देवि ! गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर आदि तथा योगिनी, डाकिनी, भैरवी, नायिका आदि विद्यायें जिसके प्रसाद से आकर अपने विषय को पूर्ण करती हैं । इस कामाख्या मन्त्र को प्राप्त कर स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताल में जो जो सिद्ध साधक हैं वे श्रेष्ठ योग्यता को प्राप्त करते हैं ।।७४-७७।।

निजवीजत्रयं देवि! क्रोधद्वयमतः परम् ।
वधूबीजत्रयं चैव कामाख्ये च पुनर्वदेत् ।।७८।।
प्रसीदेति पदं चैव पूर्वबीजानि कल्पयेत् ।
ठद्वयान्ते मनुः प्रोक्तः सर्वतन्त्रेषु दुर्लभः ।।७९।।

त्रीं त्रीं त्रीं हूं हूं स्त्रीं स्त्रीं कामाख्ये प्रसीद स्त्रीं स्त्रीं हूं हूं त्रीं त्रीं त्रीं स्वाहा ।

पद्मा—हे देवि ! निज बीजत्रय **(त्रीं त्रीं त्री)** उसके पश्चात् दो क्रोध बीज **(हूं हूं)** और तीन वधूबीज **(स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं)** फिर **कामाख्ये** इसके पश्चात् **प्रसीद** पद और पूर्वोक्त बीजों **(त्रीं त्रीं त्रीं हूं हूं स्त्रीं स्त्रीं** की कल्पना करे और अन्त में **दो ठ (स्वाहा)** यह सभी तन्त्रों में दुर्लभ कहा गया है ।।७८-७९।।

प्रणवाद्या महादेवि! त्रैलोक्ये चाति दुर्लभा ।
चतुर्वर्गप्रदा साक्षान्महापातकनाशिनी ।।८०।।
स्मरणादेव मन्त्रस्य सर्वे विघ्नाः समाकुलाः ।
नश्यन्ति दहने दीप्ते पतङ्गा इव पार्वति!।।८१।।

पद्मा—हे महादेवि ! इस मन्त्र के आदि में प्रणव **(ॐ)** लगाने से यह चारों वर्ग (धर्म, अर्थ काम एवं मोक्ष) को प्रदान करने वाली, महापापों का नष्ट करने वाला साक्षात् देवीस्वरूप बन जाता है । हे पार्वति ! इस मन्त्र का स्मरण करते ही सभी विघ्न उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार पतङ्गे अग्नि में जलकर भस्म हो जाते हैं ।।८०-८१।।

विमर्श—मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होगा–**ॐ त्रीं त्रीं त्रीं हूं हूं स्त्रीं स्त्रीं कामाख्ये प्रसीद स्त्रीं स्त्रीं हूं हूं त्रीं त्रीं त्रीं स्वाहा ।**

जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि !।
वर्णितुं नैव शक्नोमि मन्त्रमेतन्महेश्वरि!।।८२।।
न्यासपूजादिकं सर्वं पूर्वमुक्तं वरानने !।
पुरश्चर्याविधौ किन्तु षट्सहस्रं मनुं जपेत् ।।८३।।

यथाविधि षट्शतानि होमादींश्च समाचरेत् ।
सिद्धो भवति मन्त्रज्ञः प्रयोगेषु ततः क्षमः ।।८४।।

पद्मा—हे महेश्वरि ! करोड़ों हजार जिह्वाओं से और करोड़ों सैकड़ों मुखों से भी इस मन्त्र की महिमा का वर्णन मै नहीं कर सकता है । हे वरानने ! इसके न्यास, पूजन आदि समस्त विधियाँ पूर्व में कही जा चुकी हैं, किन्तु इसके पुरश्चरण में मन्त्र का छः हजार जप करना चाहिए । विधिपूर्व छः सौ होमादि कर्म करे । इससे साधक को मन्त्र सिद्ध हो जाता है और वह इसका प्रयोग करने में समर्थ हो जाता है ॥८२-८४॥

कामाख्याः ध्यानम्

अतिसुललितवेशां हास्यवक्त्रां त्रिनेत्राम्
जितजलदसुकान्तिं पट्टवस्त्रप्रकाशाम् ।
अभयवरकराढयां रत्नभूषातिभव्यम्
सुरतरुतलपीठे रत्नसिंहासनस्थाम् ।।८५।।
हरिहरविधिवन्द्यां बुद्धिवृद्धिस्वरूपाम्
मदनशरसमातां कामिनीं कामदात्रीम् ।
निखिलजनविलासोल्लासरूपां भवानीम्
कालिकलुषनिहन्त्रीं योनिरूपां भजामि ।।८६।।

पद्मा—मै उस योनिस्वरूपा भवानी का ध्यान करता हूँ जो अत्यन्त ही मनोहर वेश धारण किए हुए हैं, हास्यमुखी, तीननेत्र वाली, नीलमेघ की कांति को भी विजित कर लेने वाली, कटि में मेखला धारण करने वाली, रेशमी वस्त्रों से प्रकाशमान, हाथों में वर एवं अभयमुद्रा से युक्त, रत्नयुक्त आभूषणों से भव्य, देववृक्ष के नीचे पीठ पर रत्न जटित सिंहासन पर विराजमाना, हरि (विष्णु) हर (शिव) एवं ब्रह्मा के द्वारा वन्दनीया, बुदिवृद्धिस्वरूपा कामदेव के मनमोहक वाण के समान अत्यन्त कमनीया, कामिनी, काम देने वाली, समस्त जनों को भोग विलास के उल्लास के परिपूर्ण कर देने वाली, कलिकाल के पापों को नाश कर देने वाली हैं ॥८५-८६॥

साधन पद्धतिः

स्वयम्भूकुसुमेनैव तिलकं परिकल्प्य च ।
तूलिकायां महादेवि ! कुलशक्तिं समाविशेत् ।।८७।।
कर्पूरितमुखः स्वादु साधकश्चुम्बयन्मुदा ।
तस्याधरो यथा भृङ्गो नीरजव्याकुलः प्रिये ।।८८।।
दन्तक्षतिवितानां च परमं तत्र कारयेत् ।
आलिङ्गयेन्मदोन्मत्तः सुदृढ़ कुचमर्दनम् ।।८९।।
नखाघातैर्नितम्बे च रमयेद् रतिपण्डितः ।
पुनः पुनश्चुम्बनं च योनौ कुर्यात् कुलेश्वरि!।।९०।।

शुक्रं तु स्तम्भयेद् वीरो योनौ लिङ्गं प्रवेशयेत् ।
आघातैस्तोषयेत् तां तु सन्धानभेदतः प्रिये!।।९१।।
ततो लिङ्गे स्थिते योनौ आज्ञां तस्याः प्रगृह्य च ।
अष्टोत्तरशतं मन्त्रं जपेद् होमादिकांक्षया ।।९२।।
दिनत्रयं महाधीरः प्रजपेद् ध्यानतत्परः ।
प्राप्यते मानसं वस्तु नात्र कार्या विचारणा ।।९३।।
ऋतुयुक्तलतां देवि! निवेश्य तूलिकोपरि ।
करवीरप्रसूनं च तस्या लिङ्गोपरि न्यसेत् ।।९४।।
तद् वीक्ष्य देवदेवेशि! जपेच्चाष्टसहस्रकम् ।
दिनत्रयं ततो देव्याः प्रीतिः स्यादचला प्रिये ।।९५।।
धनं विन्दति तस्यैव लक्षसंख्यं न संशयः ।
आनन्दं वर्द्धयेन्नित्यं साधकस्य महात्मनः ।।९६।।
अष्टोत्तरशतं योनिं संचुम्ब्य पूज्य सज्जनः ।
पुनर्लिङ्गे स्थिते योनौ जपेच्चाष्टसहस्रकम् ।।९७।।
कांक्षापञ्चगुणं वित्तं प्राप्यते सर्वदा सुखी ।
नित्यं तस्य महेशानि! नायिका संगमो भवेत् ।।९८।।
वेश्यालतां समानीय कुलचक्रं विधाय च ।
तस्या योनौ यजेद् देवीं हृष्टचित्तेनसाधकः ।।९९।।
भगलिङ्गसमाख्यानं सुस्वरेण समुच्चरेत् ।
योनिं वीक्ष्य जपेन्मन्त्रं सप्तरात्रमतन्द्रितः ।।१००।।
प्रत्यहं कृत्वा सोऽपि सिद्धीश्वरः कलौ ।
आज्ञां गृह्णाति धनदस्तस्य देवि! न संशयः ।।१०२।।
सद्गुरोः स्मरणं कृत्वा योनेश्च साधनं यदि ।
तदा सिद्धिमवाप्नोति चान्यथा हास्यमेव हि ।।१०३।।

इति श्रीकामाख्यातन्त्रोक्त श्री कामाख्या काली प्रकरणम् ।

पद्मा—हे महादेवि ! साधक स्वयम्भू कुसुम से तिलक कर कुल शक्ति (सुन्दर नवयौवना युवती) को रुई से भरे गद्दे पर बैठाये । अपने मुख मे कर्पूर का टुकड़ा रखकर जिस प्रकार भ्रमर (भौंरा) कमल के पुष्प को चूसते हुए व्याकुल कर देता है । साधक भी उसी प्रकार से प्रसन्नचित्त होकर कुलशक्ति के अधरों को चूसते हुए उसे व्याकुल कर दे । उसे अपने दन्तक्षत के द्वारा विह्वल कर मदोन्मत्त अवस्था में कसकर आलिंगन में बाँध ले और उसके स्तनों को दृढ़तापूर्वक मसले । रति शास्त्र का ज्ञाता साधक उसके नितम्बों में नखों से क्षत करे । हे कुलेश्वरि ! साधक उसकी योनि को बार बार चूमे । वीराचारी

साधक अपने शुक्र को स्तम्भित कर अपने लिंग को कुल-युवती की योनि में प्रवेश कराये। हे प्रिये ! सन्धानादि के भेदानुसार अर्थात् जिस अंग पर आघात से सन्तुष्ट होती हो उसी अंग पर आघात करके उसे सन्तुष्ट करे। इसके पश्चात् कुलयुवती की आज्ञा लेकर अपने लिंग को उसकी योनि में स्थिर रखकर होमादि की इच्छा से १०८ बार कामाख्या मन्त्र का जप करे। इस प्रकार कामाख्या देवी का ध्यान कर तीन दिन मंत्र को जपे। ऐसा करने पर साधक का अनुष्ठान सफल होता है और वह अपनी मनोवांछित वस्तु प्राप्त कर लेता है। इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह न करे। हे देवि ! रजस्वला कुलयुवती को कोमल एवं गद्देदार बिछौने पर लिटाकर उसकी योनि के ऊपर कनेर का पुष्प रखे। हे देवदेवेशि ! उसे देखते हुए साधक ८००० बार भगवती कामाख्या का मन्त्र जपे। हे प्रिये ! तीन दिन तक ऐसा करने पर देवी की अचल प्रीति प्राप्त होती है। यदि साधक एक लाख मन्त्र का जप कर लेता है तो उसे धन का लाभ होता है तथा प्रतिदिन आनन्द की वृद्धि होती है। सज्जन साधक योनि का १०८ बार चुम्बन करते हुए उसकी पूजा करे। इसके पश्चात् साधक अपने लिंग को भग मे डाल कर स्थिर रखते हुए मन्त्र का ८००० जप करे। ऐसा करने पर साधक को इच्छित धन से पाँच गुना अधिक धन प्राप्त होता है और सदैव सुखी रहता है। हे महेशानि ! उस साधक का नित्य ही नयी-नयी नायिकाओं के साथ संगम होता है।

साधक वेश्यालता को लाकर कुलचक्र का निर्माण करे। इसके उपरान्त वह साधक प्रफुल्लित हृदय से उस देवी की योनि का पूजन करे। भग लिंग के आख्यान का सुन्दर स्वर में उच्चारण करे। एकाग्र मन से योनि को देखते हुए सात रात्रि तक मंत्र का जप करे। साधक इसी क्रम से प्रतिदिन ३०० की संख्या में जप करे। ऐसा करने वाला साधक कलियुग में सिद्धियों का स्वामी बन जाता है। हे देवि ! कुबेर भी उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नही करना चाहिए। यदि साधक श्रीसद्गुरुदेव की आज्ञा लेकर या स्मरण कर योनि का साधन करता है जो उसको सिद्धि की प्राप्ति होती है अन्यथा उपहास का पात्र बनकर रह जाता है ॥८७-१०२॥

इस प्रकार सिद्धाश्रमस्थ परमहंस स्वामी श्री निखिलेश्वरानन्द जी महाराज के शिष्य अजय कुमार उत्तम द्वारा श्रीकामाख्यातन्त्रोक्त श्री कामाख्या काली प्रकरण की पद्मा की व्याख्या पूर्ण हुई।

❖

श्री कालीनित्या प्रकरणम्

शक्तिसंगमतन्त्रे

श्री देव्युवाच

देवेश श्रोतुमिच्छामि कालीनित्याविवरणम्।

श्रीशिव उवाच

काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधनी ।।१।।
विप्रचित्ता तथोग्रोग्रप्रभा दीप्ताऽथवा तथा।
नीला घना बलाका च मात्रा मुद्रा मिता तथा ।।२।।
नित्यामण्डलमेतद्धि तत्क्रमं श्रृणुं शांभवि।

१. कालीनित्याविवरणम्

कालीनित्या च तन्मन्त्रः कथ्यते श्रृणु साम्प्रतम् ।।३।।
विषबीजं ततो मायां कालीति युगलं वदेत्।
महाकालि पदं प्रोच्य कौमारीति पदं वदेत् ।।४।।
मह्यं देहि पदं देवि ठठयुक्ता मनुर्मता।
ऊनविंशाक्षरी विद्या कालीनित्या प्रकीर्त्तिता ।।५।।
ॐ ह्रीं कालि कालि महाकालि कौमारी मह्यं देहि स्वाहा।
पर्शुरामो ऋषिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुप् प्रकीर्त्तितम्।
देवता कालिका प्रोक्ता माया बीजं प्रकीर्त्तितम् ।।६।।
कालिका च भवेच्छक्तिः ठयुग्मं कीलकं भवेत्।
कालिकाप्रीणानाद्यर्थे विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।।७।।
षडङ्गमाचरेद्देवि! जातियुक्तेन मायया।
ततो ध्यायेन्महेशानि! चिता निर्वाण मण्डले ।।८।।
श्यामवर्णा महाभीमा घोररावा करालिनी।
मुण्डमालाविभूषाढ्या दक्षे खड्गं प्रविभ्रती ।।९।।
तर्जनीं धारयन् वामे नृत्यन्ती प्रेतभूमिषु।
एवं ध्यात्वा महेशानि तद्यन्त्रं श्रृणु. पार्वति!।।१०।।
त्रिकोणयुग्मं देवेशि! वृत्ताष्टदलभूपुरम्।
बिन्दौ कालीं समाराध्य त्रिकोणयुग्मके पुनः ।।११।।

गुणत्रयं तत्पुरुषास्तच्छक्तयः क्रमान्मताः ।
ब्राह्म्यादिमातरश्चाष्टौ लोकपालाः सशस्त्र काः ।।१२।।
भूपुरे पूजयेद्देवि! धूपदीपोपचारकैः ।
नैवेद्यं विविधं खाद्यं पञ्चखाद्यं विशेषतः ।।१३।।
निवेदयेत्कालिकयै ततस्तुष्टा भविष्यति ।
नीराजनान्तं कृत्वाऽथ प्रजपेल्लक्षमात्रकम् ।।१४।।
दशांशं पायसेनैव होमं कुयाद्विधानतः ।
अथवा करवीरेण होमयेत्सर्वसिद्धये ।।१५।।
सर्वसिद्धीश्वरो देवि! भवत्येव न संशयः ।
मन्त्रभेदान्प्रवक्ष्यामि यथावदवधारय ।।१६।।
नामत्रयं महेशानि! प्रत्येकं प्रणवक्रमात् ।
मंत्रत्रयं महेशानि! बीजत्रयनियोजनात् ।।१७।।
विद्यात्रयं पुनर्देवि ध्रुवमाया नियोजयेत् ।
विद्यात्रयं महेशानि! प्रत्येकं नवधा मनुः ।।१८।।
दुर्भगानां च दीनानां क्रूराणां पापकर्मिणाम् ।
मन्त्रमेनं न कथयेत्सर्वैश्वर्य्यमयो भवेत् ।।१९।।
लक्ष्मीवान्कीर्तिमान्धान्यो भवत्येव न संशयः ।
सुन्दरीं कामिनीं दृष्ट्वा तस्याश्चैव × × वदेत् ।।२०।।
× × शब्देन तद्भगं सा दासी मंत्रजापतः ।
व्याकुला सा भवत्येव स्वेच्छया भोगमेष्यति ।।२१।।
ललाटे हृदये विद्यां योनिमध्ये यथाक्रमम् ।
यस्याः सञ्चिन्तयेद्विद्यां तन्नामस्मृतिपूर्वकम् ।।२२।।
तामाकर्षयति क्षिप्रं किमन्यैर्बहुजल्पितैः ।
साक्षात्स कालीपुत्रः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ।।२३।।

२. कपालिनी नित्या वर्णनम्

श्रीदेव्युवाच

देवेश श्रोतुमिच्छामि कपालिन्या विधिं पराम् ।
नित्या द्वितीया देवेश! प्रोक्ता कपालिनी परा ।।२४।।
तस्या मंत्रं महेशान! कथयस्य ममाधुना ।

श्रीशिव उवाच

देवेशि! कथ्यते गोप्यं यन्न कुत्राऽपि कीर्तितम् ।।२५।।
कपालिनी महाविद्या द्वितीया तन्मनुं शृणु ।
आदौ सप्तकुलं प्रोच्य कामं वह्निपदे स्थितम् ।।२६।।

इन्दिराबिन्दुभूषाढ्यं बीजं कालीस्वरूपकम् ।
कपालिनि महाकालप्रियमानसे वदेत् ।।२७।।
कपालसिद्धिं मे देहि हूँ फट् स्वाहान्तको मनुः ।
त्रिंशद्वर्णोऽर्धवर्णाढ्यो मंत्रराजो महोत्तमः ।।२८।।

ॐ ह्रीं क्रीं कपालिनि महाकालप्रियमानसे कपालसिद्धिं मे देहि हूँ फट् स्वाहा ।

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तस्त्रिष्टुप् छन्द उदाहृतम् ।
कपालिनी देवताऽत्र कालिका बीजमीरितम् ।।२९।।
स्वाहा शक्तिः समाख्याता हूँ फट् कीलकमीरितम् ।
कपालिनीसिद्धयेऽत्र विनियोगः प्रकीर्तितः ।।३०।।
षड्दीर्घभाजा बीजेन कुर्यादङ्गानि षट्क्रमात् ।
ध्यायेदञ्जनपुञ्जाभामापीनस्तनयुग्मकाम् ।।३१।।
चन्द्रवक्त्रां च बिम्बोष्ठीं मुक्तकेशीं दिगम्बराम् ।
चतुर्मुण्डोपरिगतां शङ्खकङ्कणभूषिताम् ।।३३।।
एवं सञ्चितयेद्देवि! नित्यां कपालिनी पराम् ।
त्रिकोणत्रितयं वृत्तं दलाष्टकविभूषितम् ।।३४।।
भूपुरेण समाकीर्णे चतुर्द्वारोपशोभितम् ।
यंत्रं कपालिनीदेव्याः सर्वसाम्राज्यदायकम् ।।३५।।
महाकालीं महालक्ष्मीं महासरस्वतीं तथा ।
रतिं प्रीतिं तथा कान्तिं द्वितीये तु त्रिकोणके ।।३६।।
ईच्छां ज्ञानं क्रियां चैव त्रिकोणे तु तृतीयके ।
मध्ये कपालिनीं पूज्य दलेऽष्टौ मातृकार्चनम् ।।३७।।
ततोऽष्टौ भैरवांश्च दिगीशान् शस्त्रकान्यजेत् ।
पञ्चोपचारैः संपूज्य कुलाचारपरायणः ।।३८।।
साधकः प्रजपेल्लक्षं हयारिकुसुमैर्हुनेत् ।
मांसेन मधुना चाऽपि जुहुयादिष्टसिद्धये ।।३९।।
तदा कपालिनी देवी सिद्धा भवति निश्चितम् ।
पुरश्चर्या विना देवि! कथं सिद्धा कपालिनी ।।४०।।
मुण्डासने नरः स्थित्वा सदा तद्गतमानसः ।
महामालां महापात्रं महायन्त्रासनादिकम् ।।४१।।
कृत्वा तु विधिवद्देवि! तदा भवति साधकः ।
अथान्यदपि वक्ष्यामि कपालिन्याः पराक्रमम् ।।४२।।

रणवीरकपालिनि कुजवारे निशामुखे ।
समाहृत्य महेशानि! पञ्च पञ्च समन्वितः ।।४३।।
दिग्बन्धभूतशुद्धादिकपालाद्युपहारकैः ।
साधकः सहितो भूत्वा सिन्दूरतिलकाङ्कितः ।।४४।।
खड्गहस्तो दिशावासो मुक्तकेशो मुदान्वितः ।
ईदृशः साधकः सोऽहङ्कृतिभावसमन्वितः ।।४५।।
सुदूरे साधकान् स्थाप्य पुष्पवर्त्या घृताक्तया ।
दीपं संलापयेद्देवि! जपेत्तत्र कपालिनीम् ।।४६।।
भाग्यात्कपालिनीसिद्धिः कदाचित्प्रभविष्यति ।
तथापि कालिकाभक्ते भविष्यति भविष्यति ।।४७।।
कपालं भाग्ययोगेन कदाचिद्यदि लभ्यते ।
तदा कपालिनी सिद्धिः कज्ज्वलं तद्धि संग्रहेत् ।।४८।।
तत्कज्ज्वलं कपाले तु कज्ज्वलं स्थाप्य वै जपेत् ।
सम्मोहनाञ्जनं नाम महदञ्जनमीरितम् ।।४९।।
तत्कपाले महेशानि! किं तद्यन्त्र करे स्थितम् ।
एषा कपालिनी नित्या द्वितीया कालिका भवेत् ।।५१।।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं कुल्लां श्रृणुं तृतीयकाम् ।

३. कुल्ला नित्यावर्णनम्

कालिका कुल्लुका कुल्ला त्रिधा नाम्ना तु या मता ।।५१।।
तस्मात्कुल्लेति नाम्ना च कुलपूज्यवतां गता ।
विद्यानां कुलपूज्यत्वात्कुल्लुका परिकीर्तिता ।।५२।।
कुल्लुका कुलपूज्यत्वात्कुल्लानाम्नी कुलेश्वरी ।
तस्या मंत्रं प्रवक्ष्यामि यथावदवधारय ।।५३।।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य कालिकाबीजमुद्धरेत् ।
कुल्लायै हृन्मनुर्देवि! प्रोक्तः सप्ताक्षरो मनुः ।।५४।।
।।ॐ ह्रीं कुल्लायै नमः।।

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो गायत्री छन्द ईरितम् ।
कुल्ला काली देवताऽत्र कालिका बीजमीरितम् ।।५५।।
कुल्लाशक्तिरिति ख्याता नमः कीलकमीरितम् ।
सर्वार्थ साधने चैव विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।।५६।।
कालिकोक्ते यजेत् पीठे कुमारीयंत्रमेव हि ।
कुमार्याः पूजनाद्देवि! कुल्ला सिद्धा भवेद् ध्रुवम् ।।५७।।

लक्षद्वयं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवाशुचिः ।
अशुचिश्च तथा रात्रौ श्रीकुल्लादर्शनोत्सुकः ।।५८।।
कदाचिदभ्रसदृशं कदाचित् ज्योतिसन्निभाम् ।
चतुर्भुजां त्रिनयनां मुकुटाटोपमण्डिताम् ।।५९।।
शवासनगतां कुल्लां दशमुण्डोपरिस्थिताम् ।
वराभयौ करे वामे पुस्तस्रक् दक्षिणे करे ।।६०।।
नानाविलासकुशलां कुलाम्बां परिचिन्तयेत् ।
एवं चिन्तयतस्तस्य दशविद्यामयी कला ।।६१।।
भवत्येव महेशानि! कुल्लाम्बायाः प्रभावतः ।
करवीरैर्जपापुष्पैर्हुनेज्जपदशांशतः ।।६२।।
तद्दशांशं गन्धतोयैस्तर्पयेन्मार्जयेदपि ।
ब्राह्मणान्भोजयद्देवि! तदन्ते तु कुमारिकाम् ।।६३।।
पूजयेत्परमेशानि! कुल्लाविद्या प्रसिध्यति ।
कुल्लाविद्या महेशानि! सर्वविद्याप्रकाशिनी ।।६४।।
यंत्रमस्याति देवेशि नैमित्ते काम्यकर्मणि ।
त्रिकोणद्वयमुद्धृत्व वृत्ताष्टदलभूषितम् ।।६५।।
चतुर्द्वारसमायुक्तं भूपुरैकेण संयुतम् ।
मध्ये बीजं न्यसेत्काल्या बीजयुक्तं महोत्तमम् ।।६६।।
धृतिं पुष्टिं तथा मेधां तुष्टिं प्रज्ञां तथा जयाम् ।
त्रिकोणद्वितये पूज्य दलेऽष्टमातृभैरवाः ।।६७।।
लोकपालान शस्त्रयुक्तान् कुल्लुकावरणे यजेत् ।
अथवा देवदेवेशि! कालिकावत्समस्तकम् ।।६८।।
नवरात्रद्वये चन्द्रसूर्यग्रहद्वये तथा ।
संक्रमे चोत्तमे चार्थे पूजयेद्यन्त्रमद्भुतम् ।।६९।।
यदैव कार्यमुप्तन्नं तदैव कुल्लुकार्चनम् ।
न विद्या सिद्धिमाप्नोति कुल्लुकार्चनमन्तरा ।।७०।।
आदिमांत्यसमायुक्ता सा विद्या सिद्धिमाप्नुयात् ।
आदिमांत्यमजानन् हि यो गुरुः स तु शिष्यहा ।।७१।।
आदिमांत्यक्रियायुक्तो नित्यामंत्रो हि सिध्यति ।
आदिमांत्यविहीनस्य न स्याद्देवस्य दर्शनम् ।।७२।।
प्रीतिर्भयं द्वयमिति द्वाभ्यां संव्यापितं जगत् ।
अयं प्रयोगो गोप्तव्यो न कुत्रापि मयेरितः ।।७३।।

कुल्लादेव्यादिनित्यासु जपो हि द्वितयावधिः ।
द्वितयाभ्यां न सिद्धोऽसौ स मंत्रो न जपक्षपः ।।७४।।
कुल्ला नित्या तृतीयोक्ता यस्यामेतत्प्रतिष्ठितम् ।
समस्तजगतीसारं कुल्लासंक्षेपपूजनम् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।।७५।।

४. कुरुकुल्लानित्यावर्णनम्

श्रीदेव्युवाच

देवेश श्रोतुमिच्छामि रहस्यमपरं महत् ।
कुरुकुल्लाविधानं च कथयस्व ममाधुना ।।७६।।
कुरुकुल्ला च किं नाम किं विधा किं विधो मनुः ।
सर्वं कथय देवेश यद्यहं तव वल्लभा ।।७७।।

श्रीशिव उवाच

श्रृणु देवि! प्रवक्ष्यामि रहस्याति रहस्यकम् ।
विद्यानां कुलपूज्यत्वात्कुल्लुका कुल्लुकाधिका ।।७८।।
कुल्लाया अपि पूज्यत्वात्कुरुकुल्ला महोदया ।
तस्या मंत्रो महेशानि! सर्वमंत्रोत्तमोत्तमः ।।७९।।
कालिकार्चं समुद्धृत्य कुरुकुल्लेपदं वदेत् ।
कालीं मायां ममपदं सर्वजनपदं ततः ।।८०।।
वशमानय चोच्चार्य कालीं च कुरुकुल्ले च वै ।
पदमुद्धृत्य देवेशि! माया स्वाहान्तगो मनुः ।।८१।।

क्रीं ओं कुरुकुल्ले क्रीं ह्रीं मम सर्वजनवशमानय क्रीं कुरुकुल्ले ह्रीं स्वाहा ।

सप्तविंशत्यर्णसंख्यो मन्त्रोऽयं सुरपादपः ।
एतस्या हृन्मनुर्देवि! कुरुकुल्ला नवाक्षरी ।।८२।।
श्रीविद्याविषये भिन्ना कुरुकुल्ला महेश्वरि!
काल्यंगविद्या देवेशि श्रीविद्या कुरुकुल्लिका ।।८३।।
इयं भिन्ना महाविद्या कालीनित्या चतुर्थिका ।
विना तु हृन्मनुर्देवि कुरुकुल्ला न सिध्यति ।।८४।।
हृन्मनुं कुरुकुल्लाया ज्ञात्वा यत्नेन पार्वति!।
प्रणवं कूर्चमुद्धृत्य कुरुकुल्लेपदं वदेत् ।।८५।।
ह्रीं स्वाहान्तो मनुर्देवि कुरुकुल्ला कुमारिका ।
हृन्मनुत्वेन कथितः सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः ।।८६।।

कालभैरवो ऋषिश्चास्य बृहती, छन्द ईरितम् ।
देवता कुरुकुल्ला च सर्वविद्यामयी परा ।।८७।।
क्रौं बीजं ह्रीं तथा शक्तिः स्वाहा कीलकमीरितम् ।
कुरुकुल्लाकुमार्यास्तु भैरवो ऋषिरीरितः ।।८८।।
विराट् छन्दो निगदितं कूर्चं बीजं प्रकीर्त्तितम् ।
स्वाहा शक्तिः समुद्दिष्टा विनियोगो यथेच्छया ।।८९।।
कुरुकुल्लां मित्रकुल्लां कुरुकुल्ला हृदङ्गमाम् ।
कालीध्रुवः कुरुकुल्ले क्रौं ह्रीं च मम सर्वतः ।।९०।।
जनवशं क्रीं कुरुयुक् कुरुकुल्ले त्रिविष्टपे ।
स्वाहान्तोऽयं समुद्दिष्टो भैरवो हि विराट् ततः ।।९१।।
ह्रीं बीजं च तथा स्वाहा शक्तिः क्रौं कीलकं मतम् ।
सर्वार्थे विनियोगः स्यात् पूर्ववत् क्वापि कीर्त्तितः ।।९२।।
विनियोगः पूर्ववत्स्यात् शृणुष्वाङ्गादिकल्पनाम् ।
षड्दीर्घकालीबीजेन षडङ्गानि क्रमाच्चरेत् ।।९३।।
ततो ध्यायेन्महाविद्यां कुरुकुल्लां कुलेश्वरीम् ।
शवोपरि समासीनां मुण्डमालाविभूषिताम् ।।९४।।
कपालकर्तृकाहस्तां खड्गखेटकधारिणीम् ।
अञ्जनाद्रिनिभां दिव्यां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम् ।।९५।।
पीनोन्नतकुचद्वंदां पीनवक्षो नितम्बिनीम् ।
भक्तानन्दकरोद्युक्तां साधकाभीष्टदायिनीम् ।।९६।।
आसवाघूर्णनयनां कामिनीं जनमोहिनीम् ।
एवं सञ्चिंतयेद्देवीं कुरुकुल्ला महोदयाम् ।।९७।।
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षसंख्यं त्रिमधुरान्वितैः ।
होमयेद्बिल्वपत्रैश्च बिल्वपुष्पैरपि प्रिये !।।९८।।
दशांशं तर्पणं कुर्यात्तदशांशेन मार्जनम् ।
तद्दशांशं विप्रभोज्यं तेन सिद्धो मनुर्भवेत् ।।९९।।
पूजयेत्कालिकापीठे त्रिकोणत्रयसोज्ज्वले ।
वृत्ताष्टदलभूषाढये भूपुरद्वयशोभिते ।।१००।।
बिन्दौ बीजं लिखेत्काल्यास्त्रिशक्तित्रयमर्चयेत् ।
कालीं तारां छिन्नमस्तां बालाम्बां बगलां रमाम् ।।१०१।।
उग्रगर्भाभुग्रबीजामुग्रवीर्यां तृतीयकाम् ।
त्रिकोणत्रितये पूजा क्रमेण परिकीर्तिता ।।१०२।।

ब्रह्माद्यष्टौ भैरवांश्च पूजयेत् द्विदलाष्टके ।
लोकपालास्तदस्त्रानतान्पूजयेत्परमेश्वरि ! ।।१०३।।
शवे श्मशाने विपिनेऽरण्ये च भूतसंकुले ।
पूजयेत्कुरुकुल्लां च सर्वसिद्धिं स विन्दति ।।१०४।।
यद्यत्प्रार्थयते चित्ते तत्तदाप्नोति साधकः ।
समस्तान् पूजयेद्देवि ब्राह्मणांश्च सुवासिनीम् ।।१०५।।
विप्राराधनमात्रेण किं तद्यन्न करे स्थितम् ।
तण्डुलेन जयावाप्तिर्गोधूमेन धनागमः ।।१०६।।
माषैः शत्रुर्मृतिं याति मुद्गैर्मोक्षफलं लभेत् ।
तिलतण्डुलहोमेन महाप्रीतिं स विन्दति ।।१०७।।
राजीलवणहोमेणन कामिनी कर्षयेद् ध्रुवम् ।
सर्षपैर्लवणैर्देवि ! कामिनीमानभञ्जनम् ।।१०८।।
सर्पिलवणहोमेन कामिनीमनोरञ्जनम् ।
हरिद्रया दरिद्राणि नश्यन्त्येव न संशयः ।।१०९।।
इति संक्षेपतः प्रोक्तः कुरुकुल्लाविनिर्णयः ।
रहस्यातिरहस्यं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।११०।।

५. विरोधिनी नित्या विवरणम्

श्री देव्युवाच

विरोधिनीविधि ब्रूहि यद्यहं तव वल्लभा ।

श्रीशिव उवाच

रहस्यादतिगोप्यं हि नित्या प्रोक्ता विरोधिनी ।।१११।।
पञ्चमीसंज्ञका नित्या यथावदवधारय ।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य कालीप्रणवमुद्धरेत् ।।११२।।
मायां कामं ततः कूर्च्चं प्रोक्ता विरोधिनीपदम् ।
शत्रूनुच्चाटयपदं विरोधयद्वयं वदेत् ।।११३।।
शत्रुक्षयकरी प्रोच्य हूं फट् स्वाहान्वितो मनुः ।
द्वात्रिंशद्वर्णसंयुक्तो मन्त्रराजो महोत्तमः ।।११४।।

ॐ क्रीं ह्रीं क्लीं हूँ विरोधिनी शत्रूनुच्चाटय विरोधय विरोधय शत्रुक्षयकरी हूँ फट् ।

महामन्त्रोऽयमाख्यातो ऋषिर्भैरव ईरितः ।
गायत्री छन्द आदिष्टं देवता तु विरोधिनी ।।११५।।

कालीबीजं बीजमस्याः माया शक्तिः प्रकीर्तिता ।
कामबीजं कीलकं स्याद्विनियोगो यथेच्छया ।।११६।।
कालीषड्दीर्घबीजेन षडंगयुग्ममाचरेत् ।
ध्यायेदञ्जनगिरिनिभां द्विरष्टवर्षदेशिनीम् ।।११७।।
पीनोन्नतकुचद्वन्द्वां सर्पास्थितमालिकायुताम् ।
चतुर्भुजां त्रिनयनां शवपद्मोपरिस्थिताम् ।।११८।।
त्रिशिखं नागपाशं च घण्टां च डमरूं तथा ।
संबिभ्रमतीं महादेवीं क्रमाद्भुजचतुष्टये ।।११९।।
धूम्राम्बरां पीतगात्रीमीषत्प्रहसिताननाम् ।
मा भैर्वीर वरं ब्रूहि सर्वं तत्ते ददाम्यहम् ।।१२०।।
उपस्थितं तु यत्कार्यं तत्तत्कार्यं करोम्यहम् ।
एवं संवदतीं देवीं चारुहासां मनोहराम् ।।१२१।।
विरोधकरणोद्युक्तां शत्रूणां नाशकारिणीम् ।
कालिकोक्ते यजेत्पीठे त्रिकोणत्रयशोभिते ।।१२२।।
वृत्ताष्टदलभूषाढ्ये भूपुरैकेन शोभिते ।
चतुर्द्वारविभूषाढ्ये श्रीबीजोज्वलकर्णिके ।।१२३।।
विरोधिनी कर्णिकायां त्रिकोण त्रितये क्रमात् ।
धूम्रार्चिरूष्मज्वालिनीं ज्वालिनी विस्फुलिंगिनीम् ।।१२४।।
सुश्रीं सुरूपां कपिलां ततो हव्यवहां यजेत् ।
विरोधिनीमस्तके तु ततो हि दशमीं यजेत् ।।१२५।।
दलाष्टके भैरव्यष्टौ भैरवेण समन्विताः ।
भूपुरे लोकपालाश्च तदस्त्राणि च तद्बहिः ।।१२६।।
ततो नीराजनं कृत्वा लक्षसंख्यं जपेन्मनुम् ।
दशांशं जुहुयाद्वन्हो निम्ववह्नौ यथाविधि ।।१२७।।
अरिष्टमालां कृत्वा च महामुण्डासनो नरः ।
जुहुयादरिनाशाय अरिष्टफलमादरात् ।।१२८।।
बिभीतकेन जुहुयात्सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।
धत्तूरकुसुमैर्होमात् शत्रून् विद्वेषयेन्नरः ।।१२९।।
काकोलूकस्य मांसेन शत्रुं मारयति क्षणात् ।
राजवृक्षप्रसूनैश्च तत्काष्ठाग्नौ हुनेत्सुधीः ।।१३०।।
विरोधिनी भवेत्सिद्धा धूमावत्यादिसंयुता ।
अर्काद्यादिसमायुक्ता शत्रुविद्वेषकारिणी ।।१३१।।

वायव्याभिमुखो भूत्वा कटुजीरकजं जलम् ।
कोष्णं पिबेन्महेशानि ! शत्रुर्ज्वरयुतो भवेत् ।।१३२।।
पराभिचारनाशार्थं स्वरक्षार्थं यथाविधि ।
एकान्ते मातृगेहे वा मृतहट्टे शिवालये ।।१३३।।
विरोधिनीं जपेद्विद्यां ह्ययुतं चोक्तमार्गतः ।
बिभीतकस्य समिधो हुनेच्छत्रुनिवारणम् ।।१३४।।
नाभिमात्रोदके गत्वा मरीचजलयोगतः ।
तर्पयेद्देवतां नीरैस्त्रैलोक्यद्वेषणं चरेत् ।।१३५।।
अथाकर्षणमन्विच्छन्वल्मीकमृत्समानयेत् ।
श्मशानमृत्समादाय गोधूमहिंगुजीरकैः ।।१३६।।
पुत्तलीं साध्यरूपां च कारयेत्परमेश्वरि ! ।
नासायां डोरकं दत्वा प्राणस्थापनपूर्वकम् ।।१३७।।
विरोधिनीं जपेत्तत्र करवीरैः समर्चयेत् ।
दुग्धेन पुत्तलीं कृत्वा तापयेत्खदिरानले ।।१३८।।
अनेन क्रमयोगेन दिनानि तु चतुर्दश ।
यः करोति नरः श्रेष्ठः सर्वाकर्षणकारकः ।।१३९।।
वनितां मदगर्वाढ्यां समाकर्षति योगतः ।
विचार्याकर्षणं कार्यं भवेद्वा न भविष्यति ।।१४०।।
ध्यात्वा साध्यगले पाशं मस्तके ज्वलिताङ्कुशम् ।
एवं सञ्चिंत्य देवेशि ! त्रैलोक्याकर्षको भवेत् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।।१४१।।

(६) विप्रचित्तानित्याविवरणम्

श्रीदेव्युवाच

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि विप्रचित्ता विधानकम् ।
कथयस्व महादेव ! यद्यहं तव वल्लभा ।।१४२।।

श्रीशिव उवाच

रहस्यमपि देवेशि ! तव प्रीत्या निगद्यते ।
विप्रचित्तातिदुष्टानां वधार्थं पूर्वमुद्यता ।।१४३।।
विप्रचित्तेति विख्याता वैप्रचितविनाशिनी ।
षष्ठी नित्या महाविद्या तन्मन्त्रं शृणु पार्वति !।।१४४।।
प्रणवं कमलां कामं चामुण्डेपदमुच्चरेत् ।
विप्रचित्ते पदं प्रोच्य दुष्टघातिनि चोच्चरेत् ।।१४५।।

शत्रून्नाशय चोच्चार्य एतद्दिनावधि प्रिये !।
सिद्धिं मे देहि चोच्चार्य हुँ फट् स्वाहांतगो मनुः ।।१४६।।

ॐ श्रीं क्लीं चामुण्डे विप्रचित्ते दुष्टघातिनि शत्रून्नाशय एतद्दिनावधि प्रिये सिद्धिं मे देहि हूँ फट् स्वाहा।

चतुस्त्रिंशद्वर्णायुतो विप्रचित्तामनुर्महान्।
ईश्वरोऽस्य ऋषिर्देवि! जगती छन्द ईरितम् ।।१४७।।
विप्रचित्ता देवता हि चामुण्डा बीजमीरितम्।
कमला शक्तिराख्याता कामबीजं तु कीलकम् ।।१४८।।
षड्दीर्घाढ्येन कामेन षडंगन्यासमाचरेत्।
सिंहोपरि समारूढ़ां शवपञ्जरमध्यगाम् ।।१४९।।
चतुर्भुजां त्रिनयनां पीनोन्नतपयोधराम्।
दिगम्बरां मुक्तकेशीं ललज्जिह्वां भयानकाम् ।।१५०।।
भीमदंष्ट्रां करालास्यां सृक्किणीरक्तवाहिनीम्।
खड्गमुण्डकपालत्रिशूहस्तां महोदरीम् ।।१५१।।
नीलोत्पलनिभां श्यामां भक्तानुग्रहकारिणीम्।
दैत्यसंहरणोद्युक्तां साधकानामभीतिदाम् ।।१५२।।
एवं सञ्चिन्त्य देवेशि! विप्रचित्तां शिवप्रियाम्।
लक्षमात्रं जपेन्मन्त्रं दशांशं कुमुदैर्हुनेत् ।।१५३।।
अथाष्टगंधनीरेण तद्दशांशं प्रतर्पयेत्।
मार्जनं तद्दशांशेन दशांशेनाभिषेचनम् ।।१५४।।
तद्दशांशं विप्रभोज्यं विप्रचित्तासुद्धिये।
त्रिकोणं वृत्तषट्कोणं वृत्ताष्टदलभूषितम् ।।१५५।।
वृत्तभूपुरसंयुक्तं बिन्दुबीजविभूषितम्।
बिंदौ यजेद्विप्रचित्तां त्रिकोणे त्रिगुणां यजेत् ।।१५६।।
षट्कोणे तु षडंगानि तद्दले मातृभैरवो।
भूपुरे लोकपालाश्च तदस्त्राणि च तद्बहिः ।।१५७।।
ततो नीराजनं कृत्वा जपे देव्यै समर्पयेत्।
पुरश्चर्यासमायुक्तः प्रयोगार्हो न चान्यथा ।।१५८।।
साकल्यैर्जुहुयाद्देवि! शान्तिकर्मणि साधकः।
मालत्या जुहुयाद्वश्ये केतक्या वाग्भिूतये ।।१५९।।
करवीरैर्वशीकारः किंशुकैः स्तंभनंभवेत्।
मोहनं चोड्रपुष्पेण धत्तूरैर्मारणं दिशेत् ।।१६०।।

बृहत्या तु रिपूच्चाटो गिरिकर्ण्या धनागमः ।
काशपुष्पै रिपूच्चाटो विद्वेषो कर्णिकारजैः ।।१६१।।
नीवारैर्जुहुयाद्देवि ! धान्यसिद्ध्यर्थमेव हि ।
कलायपुष्पैर्जुहुयात्ततः स्युः सर्वसम्पदः ।।१६२।।
कौसुंभकुसुमैर्देवि कामिनीं वांछित लभेत् ।
मधुपुष्पैश्च जुहुयादभीष्टसिद्धये ध्रुवम् ।।१६३।।
धातक्या जुहुयाद्देवि ! धनधान्यपतिर्भवेत् ।
यद्रोगे भेषजं यच्च तेन तद्रोगनाशनम् ।।१६४।।

७ उग्रानित्याविवरणम्

श्रीदेव्युवाच

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि उग्रानित्याविनिर्णयम् ।।१६५।।

श्रीशिव उवाच

रहस्यातिरहस्यं च तथापि कथ्यते शृणु ! ।
प्रणवं च वधूबीजं हूँबीजं भुवनां ततः ।।१६६।।
पुनः पूर्वं ततो हूँ फट् उग्रा सप्ताक्षरो मनुः ।
ॐ स्त्रीं हूँ ह्रीं ॐ हूँ फट् ।
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो बृहती छन्द ईरितम् ।।१६७।।
उग्रा तु सप्तमी नित्या देवता परिकीर्तिता ।
कूर्चं बीजं च फट् शक्तिर्वधूः कीलकमीरितम् ।।१६८।।
सर्वाभीष्टादिसिद्ध्यर्थे विनियोगः प्रकीर्तितः ।
षड्दीर्घाढ्येन बीजेन मायाख्येन षडंगकम् ।।१६९।।
ततो ध्यायेत्परामुग्रां प्रत्यालीढ़पदस्थिताम् ।
चतुर्भुजां त्रिनयनां मुण्डमालाविभूषिताम् ।।१७०।।
दिगम्बरां करालास्यां घोरदंष्ट्रां भयानकाम् ।
शवोत्संगे क्रीडमानां श्मशानालयवासिनीम् ।।१७१।।
श्यामवर्णां मुक्तकेशीं खड्गेन्दीवरधारिणीम् ।
कपालकर्तृकाहस्तां वरदानपरायणाम् ।।१७२।।
उग्रां ध्यायेन्महाविद्यां लक्षयुग्मं जपं चरेत् ।
तद्दशांशेन जुहुयात्कमलैर्घृतसंयुतैः ।।१७३।।
तद्दशांशं तर्पणं च तद्दशांशं च मार्जनम् ।
विप्रभोज्यं दशांशेन तेनोग्रा सिद्धिदा ध्रुवम् ।।१७४।।

पर्वते प्रान्तरे घोरे विपिने तटिनीतटे ।
एकलिङ्गे श्मशाने वा पुरश्चरणवान्भवेत् ।।१७५।।
अथास्याः पूजायंत्रं च यथावत्कथ्यते शृणु ।
त्रिकोणं वृत्ताष्टदलं वृत्तभूपुरभूषितम् ।।१७६।।
शूलाष्टकविभूषाढ्यं किंवा वज्रविभूषितम् ।
त्रिकोणमध्ये विलिखेत्कूर्चबीजं महोत्तमम् ।।१७७।।
तारां नीलामेकजटां तत् त्रिकोणे प्रपूजयेत् ।
ततो दलाष्टके देवि ! उग्राघोराष्टकं यजेत् ।।१७८।।
वैरोचनाष्टकं पूज्य ततः पद्मान्तकान् यजेत् ।
लोकपालान्तदस्त्राणि यथावद्विधिना यजेत् ।।१७९।।
ततो नीराजनं कृत्वा जपं देव्यै समर्प्य च ।
शवासने वा × × × संस्थित्वा सर्वदा जपेत् ।।१८०।।
सिन्दूरतिलको नित्यं संविदासवघूर्णितः ।
मुक्तकेशो दिशावासो भक्तभक्तो जितेन्द्रियः ।।१८१।।
महाचीनद्रुमलतां संपाद्य परमेश्वरि ! ।
तत्त्रिकोणं च संवीक्ष्य सदा तद्गतमानसः ।।१८२।।
लक्षमात्रं जपेन्मन्त्रं उग्रा सिद्धयति निश्चितम् ।
अन्यत्सर्वं तु तारावत्कीर्तितं जगदीश्वरि ! ।।१८३।।
न्यासपूजादिकं ध्यानं पुरश्चर्याविधानकम् ।
महोग्रतारावज्ज्ञेयं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।१८४।।

८ उग्रप्रभानित्याविवरणम्

श्रीदेव्युउवाच

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि नित्यामुग्रप्रभाभिधाम् ।
अष्टमीं शुभदां नित्यां नित्यानन्दकरां वराम् ।।१८५।।

श्रीशिव उवाच

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य शिवबीजं समुद्धरेत् ।
वह्न्यारूढं नादबिन्दुं षष्टस्वरविभूषितम् ।।१८६।।
बीजद्वयं समुच्चार्य उग्रप्रभेस्वरूपकम् ।
देवि कालि महादेवि स्वरूपं दर्शयेति च ।।१८७।।
हूँ फट् स्वाहासमायुक्तः प्रोक्तस्तूग्रप्रभामनुः ।
पञ्चविंशतितत्त्वाढ्यः प्रोक्तश्चोग्रप्रभामनुः ।।१८८।।

ॐ हूं हूं उग्रप्रभे देवि! कालि महादेवि स्वरूपं
दर्शय हूं फट् स्वाहा।
महाकालो ऋषिः प्रोक्तस्त्रिष्टुप् छन्दः प्रकीर्तितम्।
उग्रप्रभामहाकाली देवता परिकीर्तिता ।।१८९।।
हूँ बीजं ॐ तथा शक्तिः फट् कीलकमुदाहृतम्।
कालिकादर्शनाद्यर्थे विनियोगः प्रकीर्तितः ।।१९०।।
उग्रप्रभाख्यबीजेन षड्दीर्घेण षडंगकम्।
ध्यायेदुग्रप्रभां दिव्यां दिव्यनीलोत्पलप्रभाम् ।।१९१।।
चतुर्भुजां त्रिनयनां शवपद्मोपरिस्थिताम्।
दिगम्बरां मुक्तकेशीं पीनोन्नतपयोधराम् ।।१९२।।
सुप्रसन्नमुखाम्भोजां शवमांसप्रभोजिनीम्।
शवानां करसङ्घातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम् ।।१९३।।
खड्गमुण्डधरां वामे दक्षे खर्परकर्तृके।
बिभ्रतीं परमाल्हादजननीं कालवञ्चनीम् ।।१९४।।
एवं ध्यात्वा महाविद्यां लक्षयुग्मं जपेच्छिवे।
कालिकोक्ते यजेत्पीठे त्रिकोणद्वयसोज्वले ।।१९५।।
वृत्ताष्टदलभूषाढ्ये भूपुरद्वयभूषिते।
उग्रप्रभाबिन्दुमध्ये कालीं तारां च रोचनीम् ।।१९६।।
प्रथमे पूजयेद्देवीं द्वितीये तारिणीगणाः।
तारामेकजटां नीलां द्वितीयं तु त्रिकोणके ।।१९७।।
दलाष्टके मातृकाष्टौ दलाग्रे भैरवाष्टकम्।
भूपुरे लोकपालांश्च तदस्त्राणि च तद्बहिः ।।१९८।।
त्रिस्त्रिः पूजा प्रकर्तव्या सर्वेषामपि देशिकैः।
एवमुग्राप्रभामिष्टां लक्षयुग्मं जपं चरेत् ।।१९९।।
दशांशं वज्रपुष्पाणि मैरेयाक्तानि होमयेत्।
तर्पयेत्तद्दशांशेन दुग्धेन मधुनाथ वा ।।२००।।
दध्ना चेक्षुरसेनापि पीठतोयेन वा पुनः।
तद्दशांशं मार्जनं च दशांशे विप्रभोजनम् ।।२०१।।
कुमारीं पूजयेत्पश्चाच्छक्तिं चापि प्रपूजयेत्।
उग्रप्रभापताकायां मूर्तिं कृत्वा विधारयेत् ।।२०२।।
रणे देवासुरान् जित्वा त्रैलोक्यविजयी भवेत्।
दुन्दुभौ फलके खड्गे जप्त्वा चोग्रप्रभां शिवाम् ।।२०३।।

सर्वसिद्धिं समासाद्य कालीरूपो नरो भवेत् ।
मानिनीमण्डलं दृष्ट्वा जपेदुग्रप्रभामनुः ।।२०४।।
कालिका सिद्धिदा भूयान्नात्र कार्याविचारणा ।
भगमालिख्य जपेदुग्रप्रभां पराम् ।।१०५।।
तत्र सञ्चिन्त्य देवेशि ! साधकः किन्न साधयेत् ।
उग्रप्रभाख्यां काली तु भुक्त्वा मांसंजपेच्छिवे !।।२०६।।
मात्रमात्रप्रयोगेण कालिका, वरदा भवेत् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छामि ।।२०७।।

९ दीप्तानित्याविवरणम्

श्रीदेव्युवाच

देवेश श्रोतुमिच्छामि रहस्यातिरहस्यकम् ।
तन्मध्ये कथय देवेश ! दीप्तानित्याविधानकम् ।।२०९।।

श्रीशिव उवाच

पूर्वतन्त्रेषु संगुप्ता दीप्ता नित्या महोदया ।
नवमीसंख्यका नित्या सारात्सारा महोदया ।।२१०।।
तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि यथावदवधारय ।
प्रणवं कालिकाबीजं कौलिनीबीजमेव च ।।२११।।
कूर्चबीजं समुद्धृत्य दीप्तायै तदनन्तरम् ।
सर्वमन्त्रफल प्रोच्य दायै शब्दं समुच्चरेत् ।।२१२।।
हुँ फट् स्वाहान्तको मन्त्रस्तूनविंशाक्षरः परः ।
ॐ क्रीं ह्रीं हूँ दीप्तायै सर्वमन्त्रफलदायै हूं फट् स्वाहा ।
अर्धसंख्याविहीनेन वीतिसंख्यः प्रकीर्तितः ।।२१३।।
महादेव ऋषिश्चास्य उष्णिक् छन्दः प्रकीर्तितम् ।
दीप्ताख्या नवमी नित्या देवता परिकीर्तिता ।।२१४।।
कालीबीजं बीजमस्याः कौलिनी शक्तिरेव हि ।
स्वाहा कीलकमित्युक्तं काल्यर्थे विनियोगता ।।२१५।।
काल्याः षड्दीर्घयुक्तेन षडंगन्यासमाचरेत् ।
ध्यायेद्दीप्तां महानीलमणिप्रख्यां महोदरीम् ।।२१६।।
चतुर्भुजां त्रिनयनां मुण्डमालाविभूषिताम् ।
दिगम्बरां मुक्तकेशीं घोरदंष्ट्रां करालिकाम् ।।२१७।।

शवपद्मे समासीनां पीनोन्नतपयोधराम् ।
शवास्थिकृतकेयूरशंखकङ्कणभूषिताम् ।।२१८।।
लेक्तिहानां शवं कापि प्रहसन्तीं मदातुराम् ।
भक्तानां वरदां नित्यां कालिकोद्योतकारिणीम् ।।२१९।।
नरान्त्रयोगपट्टेन भूषितां योगमार्गगाम् ।
खड्गमुण्डधरां वामे सव्येऽभयवरप्रदाम् ।।२२०।।
सुदन्तुरां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम् ।
एवं संचिन्त्य दीप्ताम्बां लक्षमेकं जपेच्छिवे ।।२२१।।
दशांशं करवीरेण हवनं समुपाचरेत् ।
कदल्यां हवनं कार्यं सर्वदीप्तिप्रसिद्धये ।।२२२।।
दशांशं पीठतोयेन हवनं समुपाचरेत् ।
तद्दशांशं मार्जनं च गंधाष्टक जलेन वै ।।२२३।।
तद्दशांशं विप्रभोज्यं भोजयेद्धि कुमारिकाम् ।
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगार्हो न चान्यथा ।।२२४।।
ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय गुरुस्मरणपूर्वकाम् ।
गुरुं ध्यात्वा सहस्रारे पूर्वोक्तध्यानयोगतः ।।२२५।।
मूलाधारात्स्वजिह्वान्तं मूलविद्यां परां स्मरेत् ।
सरस्वतीं दीपरूपां मूलबीजस्वरूपिणीम् ।।२२६।।
सम्पूर्णा मातृकां प्रोच्य मूलविद्यां समुच्चरेत् ।
पुनर्वै मातृकां प्रोच्य पुनर्विद्यां समुच्चरेत् ।।२२७।।
त्रिधाभिमन्त्र्य तोयं तु क्रमेणानेन सुन्दरि !।
मूलविद्यां ततो ध्यात्वा जिह्वायां दीपरूपिणीम् ।।२२८।।
तेजोरूपां सायुधां वै तज्जलं तु पिबेच्छिवे ।
योगेवानेन देवेशि ! त्रिकालज्ञो नरो भवेत् ।।२२९।।
विना न्यासैर्विना ध्यानैर्विना पाठादिना शिवे ! ।
चतुर्विधं तु पाण्डित्यं तस्य हस्ते व्यवस्थितम् ।।२३०।।
जातीपुष्पेण देवेशि ! कविता वशवर्तिनी ।
कुन्दपुष्पेण देवेशि ! सर्वशास्त्रवशीकृतिः ।।२३१।।
दूर्वया शान्तिको होमो गुहुच्या मृत्युवारणम् ।
सुरया मोहनं प्रोक्तं जम्बा स्तम्भनमीरितम् ।।२३२।।
आम्रेण वश्यसिद्धिः स्यादम्बुजेन महोदयः ।
उच्चाटनं करीषेण विद्वेषः कर्क्कटीफलैः ।।२३३।।

मारणं नीलपुष्पेण मरीचेन तु कर्षणम् ।
एवमादिक्रियाः सर्वाः सिद्धमन्त्री समाचरेत् ।।२३४।।
अञ्जनं गुटिका खड्गो धातुवादो रसायनम् ।
चरुकं तिलकं वासो दुन्दुभिश्च कपालकम् ।।२३५।।
एवमादिक्रियासिद्धिर्दीप्तामन्त्रेण वै भवेत् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्त किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।।२३६।।

१० नीलानित्याविवरणम्

श्रीदेव्युवाच

देवेश! श्रोतुमिच्छासि नीलाविद्याविधानकम् ।
नीला नीलस्वरूपा हि महानीलसरस्वती ।।२३८।।
तस्या विधानं संब्रूहि यद्यहं तव वल्लभा ।

श्रीशिव उवाच

मन्त्रोद्धांर शृणु प्राज्ञे येन सिद्धिं स विन्दति ।।२३९।।
कूर्चयुग्मं महादेवि! कालीबीजद्वयं तथा ।
मायाद्वयं समुद्धृत्य हसबल्मरीस्वरूपकम् ।।२४०।।
अथ नीलपताके च हुँ फडन्ता महेश्वरि !
हूँ हूँ क्रीं क्रीं ह्लीं ह्लीं हसबलमरी नीलपताके हूँ फट् ।
नीला नीलपताकेयं सर्वसिद्धिकरी परा ।।२४१।।
उग्रचण्डा ललज्जिह्वा या सा सिद्धिकरालिका ।
पञ्चधा कथिता नीला महानीलपताकिका ।।२४२।।
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो बृहती छन्द ईरितम् ।
देवता दशमी नित्या महानीलपताकिका ।।२४३।।
कूर्चबीजस्वरूपं हि शक्तिरित्यभिधीयते ।
हूं फट् च कीलकं भद्रे! काल्यर्थे विनियोगता ।।२४४।।
कालीषड्दीर्घबीजेन षडङ्गन्यासमाचरेत् ।
अथ ध्यायेन्महानीलां नीलाञ्जनगिरिप्रभाम् ।।२४५।।
चतुर्भुजं त्रिनयनां मुण्डमालाविभूषिताम् ।
शवोपरि समासीनां मदिराघूर्णलोचनाम् ।।२४६।।
मृगशावकनेत्रां च प्रसन्नवदनाम्बुजाम् ।
करकाञ्चीशोभमानां शवकार्णावतंसिनीम् ।।२४७।।

ललज्जिह्वां करालास्यां घोरदंष्ट्रां भयानकाम् ।
पापिनां सर्वदा नीलां क्रूरा पुण्यवतां वराम् ।।२४८।।
दुष्टसंहरणोद्युक्तां साधकस्य वरप्रदाम् ।
फेरुवर्गैर्गृध्रगणैश्चतुर्दिक्षु निनादिनीम् ।।२४९।।
ईदृशीमादिरूपां तां नीलाम्भोजवनप्रभाम् ।
जपेल्लक्षत्रयं देवि हविष्याशी जितेन्द्रियः ।।२५०।।
कुलाचारक्रमेणैव यथोक्तक्रमयोगतः ।
करवीरैर्जवाबिल्वैर्मल्लिकाद्यैर्घृतान्वितैः ।।२५१।।
त्रिकोणकुण्डे जुहुयात्सुपरिष्कृतभूतले ।
दशांशं तर्पणं कार्यं दुग्धेन सुरयाऽपि च ।।२५२।।
मार्जयेद्रक्तनीरैश्च ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ।
सुवासिनीं कुमारीं च शक्तिं वा त्रितयां शुभाम् ।।२५३।।
पुरश्चरणसम्पन्नो मन्त्रः सर्वार्थदायकः ।
यथाद्रव्यं नृपादीनां पुरश्चर्या तु मन्त्रिणाम् ।।२५४।।
पुरश्चरणसम्पन्नः प्रयोगार्हो न चान्यथा ।
यंत्रमस्याः प्रवक्ष्यामि येन सिद्धीश्वरो भवेत् ।।२५५।।
बिन्दुमध्ये लिखेत्कूर्चं त्रिकोणं च ततोपरि ।
वृत्तषट्कोणवृत्ताष्टदलं वृत्तं च भूपुरम् ।।२५६।।
चतुर्द्वारोपशोभाढ्यं यन्त्रं नीलामनोः शुभम् ।
बटुकाद्याश्चतुर्द्वारि परितो द्वारदेवताः ।।२५७।।
तदस्त्राणि च तद्बाह्ये दलेष्टौ भैरवाः प्रिये !।
केसरे मातृकाष्टौ च वृत्तेऽष्टसिद्धयः क्रमात् ।।२५८।।
षट्कोणे तु षडंङ्गानि त्रिकोणे दैवतत्रयम् ।
कालरात्रिमहारात्रिमोहरात्रिक्रमात् त्रिके ।।२५९।।
मध्ये नीलां समाराध्य ततो नैवेद्यमर्पयेत् ।
नीराजनं ततः कृत्वा स्तुत्वा नत्वा विसृज्य च ।।२६०।।
नीलां संसाध्य यत्नेन षट्त्रिंशद्यक्षिणीगणम् ।
कालीकूर्चवधूमाया अमुकीयक्षिणीति च ।।२६१।।
अन्ते पीमानि बीजानि हूँ फट् स्वाहान्विता गणाः ।
क्रीं हूं स्त्रीं ह्रीं अमुकी यक्षिणी क्री हूँ स्त्रीं हूँ फट् स्वाहा ।
षट्त्रिंशश्चैव यक्षिण्यः क्रमेण चोद्धृताः प्रिये ।।२६२।।
तथैव बलिनो यक्षाः हूँ क्रीं हूँ प्रीं पुटेन च ।
सर्वे यक्षा हुं फडन्ता चतुरशीति कीर्त्तिताः ।।२६३।।

यक्षिणीसिद्धिमासाद्य साधकः सुखमाप्नुयात् ।
राजा भवति लोकेऽस्मिन्विना राज्येन पार्वति ।।२६४।।
अल्पज्ञमपि विद्वान्सं मूढं च पण्डितं तथा ।
यः करोत्येवमादीनि राज्यरत्नधनान्यपि ।।२६५।।
यो वै ददाति साध्याय: स यक्षो नात्र संशयः ।
देवयोनिर्मानवी च द्विधा योनिः प्रकीर्तिता ।।२६६।।
तत्तद्रूपं समासाद्य तत्सिद्धिमधिगच्छति ।

श्रीदेव्युवाच

फलं तु यक्षिणीसिद्धेर्यक्षसिद्धेश्च किं फलम् ।।२६७।।
तन्मे वादे दयापार परात्पर नमोऽस्तु ते ।

श्रीशिव उवाच

दीनारं गुटिका खड्गं वेतालापादुकाञ्जनाः ।।२६८।।
रसं रसायनं गुप्तिस्तिलकोऽदृश्यता तथा ।
कपालं च पटः शंखस्त्रिशूलं डमरुं तथा ।।२६९।।
आकर्षणं वश्यता च मोहनोच्चाटनं तथा ।
महेन्द्रजालमिन्द्रादिजालानां रचना तथा ।।२७०।।
उध्वोंत्क्रमणकर्मादि खेचर्याद्या हि सिद्धयः ।
गोपनीयं गोपनीयं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।।२१७।।
प्रोक्ता नीलाभिधा नित्या श्रीविद्यादौ पताकिका ।
यन्त्रमन्त्रादिप्रस्तारसंकेतभ्रंशमनं तथा ।।२७२।।
लोपामुद्राविधौ कादौ यदुक्तं तद्विधौ चरेत् ।
लोपामुद्रा कादिहादि कामराजेऽपि तद्द्वयम् ।।२७३।।
तत्काल्यां कादिकाली च हादिकल्पद्रुमो यथा ।
कादौ निगदितं देवि! यक्षिणीयक्षमण्डलम् ।।२७४।।

११ घनानित्याविवरणम्

श्रीदेव्युवाच

देवेश! श्रोतुमिच्छामि घनानित्याक्रमार्चनम् ।
उद्यद्घना घनाकारा घनानित्या घनोदया ।।२७५।।
घनालया घोषवत घटिकोदयरूपिणी ।
तस्या मन्त्रार्चनं नित्यं वद त्वं करुणानिधे ।।२७६।।

श्रीशिव उवाच

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य कालिकात्र्यक्षरं तथा।
घनालये घनाघने ह्रीं हूं फट् च मनुर्मतः ।।२७७।।
ॐ क्रीं ओं घनालये घनाघने ह्रीं हूं फट् ।।
भुवनाक्षरो घनायाश्च मन्त्रोऽयं सुरपादपः ।
अघोरभैरवऋषिर्विराट् छन्दः प्रकीर्तितम् ।।२७८।।
कालीबीजं तथा माया शक्तिः हुं फट् च कीलकम् ।
कालिकाप्रीतये देवि! विनियोगः प्रकीर्तितः ।।२७९।।
षड्दीर्घभाजा बीजेन कपूरिण षडंगकम् ।
घनानित्यां महाविद्यां नीलजीमूतसन्निभाम् ।।२८०।।
मत्तकोकिलनेत्राभा पक्वजम्बूफलप्रभाम् ।
सुदीर्घप्रपदालम्बिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम् ।।२८१।।
चतुर्भुजां त्रिनयनां दिगम्बरविनोदिनीम् ।
करालास्यां घोरदंष्ट्रां पीनोन्नतपयोधराम् ।।२८२।।
ओष्ठप्रांतगलद्रक्तधराविस्फुरिताननाम् ।
वीराणां करकाञ्च्या तु भूषितां भीमविग्रहाम् ।।२८३।।
खड्गखेटकपट्टीशमुद्गरान् बिभ्रतीं क्रमात् ।
ध्यातव्यां सततं वीरैर्महावीरघनालया ।।२८४।।
लक्षमात्रं जपेन्मन्त्रं घृताक्तैः कमलैर्हुनेत् ।
तद्दशांशं तर्पणं तु गंधदुग्धादिभिः प्रिये! ।।२८५।।
तद्दशांशं मार्जनं तु शीतलेन जलेन च ।
तद्दशांशं ब्राह्मणानां भोजनं समुपाचरेत् ।।२८६।।
एवं क्रियासमायुक्तो मन्त्रसिद्धिं स विन्दति ।
घनायन्त्रं प्रवक्ष्यामि पूजनं यादृशं भवेत् ।।२८७।।
षट्कोणवृत्ताष्टदलं भूपुरेणोपशोभितम् ।
षट्कोणे तु षडंगानि षड्धा तु देवता अपि ।।२८८।।
दलाष्टके मातृकाष्टौ ततो भैरवपूजनम् ।
लोकपालान्भूपुरेषू तदस्त्राणि त तद्बहिः ।।२८९।।
यथाशक्ति जपित्वा तु ततो नीराजयेद्विभुम् ।
नीराजनान्ते देवेशि स्तुत्वा नत्वा विसृज्य च ।।२९०।।

१२ बलाकानित्याविवरणम्

श्रीशिव उवाच

देवेशि! शृणु वक्ष्यामि बलाकापूजनक्रमम्।
बलाका द्वादशी नित्या सर्वनित्यावशङ्करी ।।२९१।।
यज्ज्ञानात्सकला विद्याः स्वस्वस्थानपदंगताः।
तस्या मंत्रो महेशानि! कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ।।२९२।।
प्रणवं कालिकाबीजं कूर्चमाये समुद्धरेत्।
बलाका कालिशद्वान्ते अत्यद्भुतपराक्रमे ।।२९३।।
अभीष्टसिद्धिं मे देहि हुं फट् स्वाहा मनुर्मतः।

ॐ क्रीं हूं ह्रीं बलाकाकालि अत्यद्भुतपराक्रमे अभीष्ट सिद्धिं मे देहि हूं फट् स्वाहा।

कालिकाऽस्य भवेद्बीजं कूर्च शक्तिः प्रकीर्तिता ।।२९४।।
माया कीलकमुद्दिष्टं कीलकेन षडंगकम्।
षडंगन्यासमासाद्य ध्यानं कुर्यान्महेश्वरि !।।२९५।।
अञ्जनानन्त सदृशीं कोटिकालानलप्रभाम्।
चतुर्भुजां त्रिनयनां मुण्डदुर्गनिवासिनीम् ।।२९६।।
दिगम्बरां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम्।
शवानां करसंहत्या कृतकाञ्चीं शवासनाम् ।।२९७।।
मुक्तकेशीं मदाघूर्णां प्रसन्नमुखपङ्कजाम्।
सूर्यकोटिसमाभासां मुण्डमालाविभूषिताम् ।।२९८।।
खड्गमुण्डधरां वामे सव्ये खर्परतर्जनीम्।
संबिभतीं महाकालीं बलाकारूपधारिणीम।।२९९।।
श्मशाननिलयां देवीं भूतप्रेतसमन्विताम्।
शिवाभिर्घोररूपाभिर्वेष्टितां घोरनादिनीम्।।३००।।
मा भै वींरवरं ब्रूहि हृद्गतं ते करोम्यहम्।
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं मन्त्रः सिद्धो भवेद्ध्रुवम् ।।३०१।।
दशांशं बिल्वपत्रैश्च घृताक्तैर्जुहुयात्सुधीः।
तर्पणं तद्दशांशेन तद्दशांशेन मार्जयेत् ।।३०२।।
तद्दशांशं ब्राह्मणानां भोजनं परिकीर्तितम्।
विप्राराधनमात्रेण सर्वांगपूर्णतामियात् ।।३०३।।
यद्यदङ्गं विहीनं च तत्साङ्गं द्विजभोजनम्।
अन्यत्सर्व महेशानि! कालिकावत्समाचरेत् ।।३०४।।

१३. मात्रानित्याविवरणम्

श्री देव्युवाच

देवेश! श्रोतुमिच्छामि रहस्यातिरहस्यकम्।
मात्रानित्याविधानं तु कथयस्व ममाधुना ।।३०५।।

श्रीशिव उवाच

मात्रानित्या तु या प्रोक्ता सर्वनित्योत्तमोत्तमा।
तस्या मन्त्रं महेशानि! यथावदवधारय ।।३०६।।
प्रणवं कालिकाबीजं माया कूर्चं च मातृकाम्।
सबिन्दुमातृकावर्णं चतुर्बीजानि वै पुनः ।।३०७।।
पुनश्च मातृकावर्णं चतुर्बीजं पुनश्च तत्।
एवं क्षान्ता महेशानि! महामात्रा प्रकीर्तिता ।।३०८।।

ॐ क्रीं ह्रीं हूं अँ आँ इँ ईं उँ ऊँ ऋँ ॠँ ऌँ ॡँ एँ ऐँ ओँ औँ अँ अः कँ खँ गँ घँ ङँ चँ छँ जँ झँ ञँ टँ ठँ डँ ढँ णँ तँ थँ दँ धँ नँ पँ फँ बँ भँ मँ यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ लँ क्षँ ॐ क्रीं ह्रीं हूं अँ आँ ईं ईं उँ ऊँ ऋँ ॠँ ऌँ ॡँ एँ ऐँ ओँ औँ अँ अः कँ खँ गँ घँ ङँ चँ छँ जँ झँ ञँ टँ ठँ डँ ढँ णँ तँ थँ दँ धँ नँ पँ फँ बँ भँ मँ यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ क्षँ ॐ क्रीं ह्रीं हूं।

चतुर्बीजं महामात्रे! सिद्धिं मे देहि सत्वरम्।
हूं फट् स्वाहेति देवेशि मात्रामन्त्रः परो मतः ।।३०९।।
ॐ क्रीं ह्रीं हूं महामात्रे सिद्धिं मे देहि सत्वरं हूं फट् स्वाहा।
प्रणवं कालिकाबीजं कूर्चमाये ततः शिवे!।
मध्ये नित्या नाम दद्यात् सम्बुध्यन्तं च केवलम् ।।३१०।।
नित्यामन्त्राश्च जायन्ते भिन्नरूपाश्च पार्वति!।
पुनर्बीजानि हूं फट् च स्वाहान्ताः परिकीर्तिताः ।।३११।।
आद्ययोगात्संपुटाद्वा हुं फडन्तप्रयोगतः।
एवं नवति नित्यानां मन्त्रभेदा भवन्ति च ।।३१२।।
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो उष्णिक् छन्दः प्रकीर्तितम्।
मात्रादेवीति विख्याता देवता परिकीर्तिता ।।३१३।।
क्रीं बीजं हूं तथा शक्तिः ह्रीं कीलकमुदाहृतम्।
विनियोगो महेष्टार्थे कालिकार्थे प्रकीर्तितः ।।३१४।।

मायाषड्दीर्घयुक्तेन षडङ्गन्यासमाचरेत् ।
तथा ध्यायेन्महाविद्यां नीलाञ्जनगिरिप्रभाम् ।।३१५।।
चतुर्भुजां त्रिनयनां मुण्डपद्मोपरिस्थिताम् ।
कपालकर्तृकाहस्तां खड्गमुण्डधरां पराम् ।।३१६।।
सुदन्तुरां महारौद्रीं चण्डनादातिभीषणाम् ।
शववक्षः समारूढां लेलिहानां शवं शिवाम् ।।३१७।।
एवंविधां तां मात्राम्बां महोघोरनिनादिनीम् ।
इति सञ्चित्य देवेशि ! लक्षमात्रं जपं चरेत् ।।३१८।।
दशांशं जुहुयाद्बिल्वैरथवा कदलीफलैः ।
द्राक्षाभिः पायसैर्वापि दशांशं हवनं चरेत् ।।३१९।।
तर्पणं मार्जनं विप्रभोज्यं यत्नेन कारयेत् ।
यद्यदङ्गे विहीयेत तत्संख्याद्विगुणो जपः ।।३२०।।
जपपूजाप्रयोगादि कालीवल्लिपिमातृवत् ।

१४ मुद्रानित्याविवरणम्

श्रीदेव्युवाच

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्यातिरहस्यकम् ।।३२१।।

श्रीशिव उवाच

रहस्यमपि ते देवि ! कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ।
मुद्रानित्याविधानं च सर्वसारोत्तमोत्तमम् ।।३२२।।
मुद्रणी नामका नित्या श्रीविद्यायां तु मुद्रिणी ।
मुद्रिणी दण्डिनी नाम्नी देवी सौन्दर्यविग्रहा ।।३२३।।
महाविद्यादिकादीनां मनोमुद्रणकारिणी ।
तेनेयं मुद्रानित्याख्या सर्वसिद्धिपराम्बिका ।।३२४।।
प्रणवं कालिकाबीजं माया कूर्चं क्रमेण च ।
प्रीं फ्रैं बीजयुगं प्रोच्य मुद्राम्बापदमुद्धरेत् ।।३२५।।
मुद्रासिद्धिं में देहि भो जगन्मुद्रास्वरूपिणी ।
हूं फट् स्वाहासमायुक्तो वीतिवर्णो मनुः शुभः ।।३२६।।

ॐ क्रीं ह्रीं हूँ प्रीं फ्रैं मुद्राम्बे मुद्रासिद्धिं मे देहि भो जगन्मुद्रास्वरूपिणि हूँ फट् स्वाहा ।

महादेवो ऋषिश्चास्य गायत्री छन्द ईरितम् ।
मुद्रानित्या महादेवी देवता परिकीर्तिता ।।३२७।।

कालीबीजं बीजमस्या माया शक्तिः प्रकीर्तिता ।
कूर्चं कीलकमित्युक्तं काल्या षड्दीर्घयुक्तया ।।३२८।।
षडङ्गन्यासमाचर्य मुद्रां ध्यायेन्महेश्वरि !।
अञ्जनाद्रिनिभां मुद्रां मुण्डमालविभूषिताम ।।३२९।।
दिगम्बरां घोरदन्ष्ट्रां चण्डनादातिभीषणाम् ।
दक्षिणां मुक्तकेशालीं दिगम्बरविनोदिनीम् ।।३३०।।
पिङ्गाक्षीं प्रज्वजलज्जिह्वां घोरचेष्टाभयानकम् ।
शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम् ।।३३१।।
सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम् ।
कपालकर्तृकाहस्तां खड्गखेटकधारिणीम् ।।३३२।।
महाकालेन च समं रतासक्तां क्षुधातुराम् ।
वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि वरं ब्रूहीति वादिनीम् ।।३३३।।
एवं सञ्चिन्त्य देवेशि ! पूजयेद्यंत्रमादरात् ।
त्रिकोणं वृत्तषट्कोणं वृत्ताष्टदलभूपूरम् ।।३३४।।
चतुर्द्वारोपशोभाढ्यं तद्द्वारि गणपस्तथा ।
योगिनीक्षेत्रपालाश्च बटुको हि चतुर्थकः ।।३३५।।
लोकपालास्त्रलोकेशा भूपुरे क्रमशो यजेत् ।
दलेऽष्टमातृकां पूज्य केसरे भैरवाष्टकम् ।।३३६।।
दलाष्टग्रे त्वष्टसिद्धिः षट्कोणेषु षडङ्गकम् ।
राज्यदा भोगदा मोक्षजयदाऽभयदा तथा ।।३३७।।
षष्ठी तु सिद्धिदा प्रोक्ता षट्कोणेषु क्रमाद्यजेत् ।
इच्छां ज्ञानं क्रियां चैव त्रिकोणे परिपूजयेत् ।।३३८।।
मध्ये मुद्रां च संपूज्य सर्वपञ्चोपचारकैः ।
इति पूजां समासाद्य ततो नीराजनं चरेत् ।।३३९।।
नीराजनान्ते देवेशि ! प्राणायामपुरःसरम् ।
लक्षद्वयं जपेन्मन्त्रं सुश्वेतैः करवीरजैः ।।३४०।।
दशांशं हवनं कृत्वा तद्दशांशेन तर्पणम् ।
मार्जनं ब्राह्मणानां च भोजनं समुपाचरेत् ।।३४१।।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगार्हो न चान्यथा ।
यद्यद्धृदि समाधत्ते तत्तत्कृत्यं करोति हि ।।३४२।।
सर्वं तु कालिवत्प्रोक्तं विशेषः कथितो मया ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।।३४३।।

१५ मितानित्याविवरणम्

श्रीदेव्युवाच

देवेश श्रोतुमिच्छामि मितानित्याविधिक्रमम् ।
सर्वविद्यावरारोहां मितां मे ब्रूहि सादरम् ।।३४४।।

श्रीशिव उवाच

शृणु वक्ष्यामि देवेशि! रहस्यातिरहस्यकम् ।
सर्वविद्यामहाराज्ञी मितानाम्नी महोदया ।।३४५।।
तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि कालीसर्वाङ्गमद्भुतम् ।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य कालिकाबीजमुद्धरेत् ।।३४६।।
कूर्चबीजं तथा मायां वाग्भवं बीजमुद्धरेत् ।
मितेपदं समुच्चार्य तथा परिमिते पदम् ।।३४७।।
पराक्रमाय च पदं पुनर्बीजानि चोद्धरेत् ।
सोऽहं हूँ फट् ततः स्वाहा सप्तविंशतिवर्णान् ।।३४८।।

ॐ क्रीं हूँ ह्रीं ऐं मिते परिमिते पराक्रमाय ॐ क्रीं हूं ह्रीं ऐं सोऽहं हूँ फट् स्वाहा ।।

मन्त्रोऽयं कथितो देवि! ऋषिछन्दादिकं शृणु ।
महाकालऋषिश्चास्य त्रिष्टुप् छन्दः प्रकीर्तितम् ।।३४९।।
मितानित्या देवता च कालिका बीजमीरितम् ।
कूर्चं शक्तिर्महेशानि! माया कीलकमीरितम् ।।३५०।।
कीलकेन षडङ्गानि षड्दीर्घाढ्येन कारयेत् ।
ध्यायेन्नीलाद्रिसङ्काशां नीलजीमूतसन्निभाम् ।।३५१।।
रक्तवस्त्रां शवासीनां मुण्डमालाविभूषिताम् ।
पीनोन्नतकुचद्वन्द्वां पीनवक्षो नितम्बिनीम् ।।३५२।।
दक्षिणां मुक्तकेशालीं दिगम्बरविनोदिनीम् ।
महादेवहृदम्भोजमध्यस्थां शङ्खकङ्कणाम् ।।३५३।।
कोटिकालानलप्रख्यां श्मशानालयवासिनीम् ।
खड्गमुण्डधरां वामे सव्येऽभयवरप्रदाम् ।।३५४।।
साधकाकांक्षहृदयं साधकस्य वरप्रदाम् ।
मुखसान्द्रस्थितामोदमोदिनी मदविह्वलाम् ।।३५५।।
आरक्तमुखसान्द्राभिर्नेत्रादिभिर्विराजिताम् ।
दक्षिणां सस्मितां दिव्यां दीननाथां विभावयेत् ।।३५६।।

एवं ध्यात्वा मितां देवीं लक्षत्रयं जपं चरेत्।
किंशुकैर्हवनं कार्यं ज्योतिष्मत्याथवा प्रिये!।।३५७।।
ज्योतिष्मतीप्रसूनेन फलं किंशुकवन्मतम्।
आरक्तकरवीरेण जुहुयान्मन्त्रसिद्धये।।३५८।।
त्रिकोणकुण्डे जुहुयात्संस्कृते खदिरानले।
ताम्बूलपत्रहोमेन कालिकां वशमानयेत्।।३५९।।
पुष्याक्तनागवल्या च नागिनीसिद्धिमाप्नुयात्।
वज्रपुष्पेण जुहुयात् डाकिन्या वा महेश्वरि!।।३६०।।
धत्तूरेणारिनिधनं कुन्दैश्च कवितां लभेत्।
जातीपुष्पैर्जयावाप्तिस्तिलपुष्पैर्बलोन्नतिः।।३६१।।
पुन्नागैः पुरुषार्थाय केतक्या कामिनीं लभेत्।
आसुर्या रिपुनाशश्च चन्दनेन जयी सदा।।३६२।।
तथैवाऽगुरुणा देवि! राजराजपदं लभेत्।
रक्तचन्दनहोमेन सर्वमोहनमाचरेत्।।३६३।।
गिरिकर्ण्या कन्यकाप्तिः सेवन्त्या शिवरूपता।
गुडूच्या रिपुनाशश्च मरीचेनाकृष्टिरुत्तमा।।३६४।।
पूगीफलैर्महाभाग्यं तथा जातिफलैर्धनम्।
स्तम्भनम् चम्पकेनैव जंब्वा जन्मार्तिनाशनम्।।३६५।।
एवं नाना विधानेन काममुद्दिश्य साधयेत्।
ततो होमदशांशेन तर्पणं पीठनीरतः।।३६६।।
अष्टगन्धोदकेनापि तथा केसरनीरतः।
तर्पणस्य दशांशेन मार्जनं समुपाचरेत्।।३६७।।
तद्दशांशं विप्रभोज्यं शक्तयश्च कुमारिकाः।
पूजयेद्भोजयेद्देवि! सर्वसिद्धिं स विन्दति।।३६८।।
अथ पूजाविधानस्य यन्त्रं संकथ्यते श्रृणु।
त्रिकोणत्रितयं लिख्य वृत्तं षट्कोणसंयुतम्।।३६९।।
वृत्ताष्टदलशोभाढ्यं भूपुरेण समन्विम्।
चतुर्द्वारोपशोभाढ्यं मध्ये बिन्दुभूषितम्।।३७०।।
कालीं करालिनीं घोरां प्रथमे तु त्रिकोणके।
द्वितीये तु त्रिकोणे च वामां ज्येष्ठां च रौद्रिकाम्।।३७१।।
तृतीये तु त्रिकोणे तु इच्छां ज्ञानं क्रियां तथा।
अथ वृत्ते यजेद्देवि! वार्तालीं प्रथमं यजेत्।।३७२।।

द्वितीयभागे देवेशि! लघुवाराहिकां यजेत्।
तृतीयभागे देवेशि! स्वप्नवाराहिकां यजेत्।।३७३।।
तिरस्करणिकां पूज्य चतुर्थभागके शिवे!।
षट्कोणेवामे देवेशि! चतुर्द्वारं प्रपूजयेत्।।३७४।।
षट्कोणे तु षडंगानि वृत्ते सिद्धष्टटकं तथा।
दलेऽष्टौ मातृकाः पूज्यास्तदन्तेऽष्टौ च भैरवाः।।३७५।।
भूपुरे लोकपालाश्च तदस्त्राणि च तद्बहिः।
एवमिष्ट्वा मितां नित्यां विद्यामित्रां निरञ्जनीम्।।३७६।।
एवमाराधनायुक्तो मन्त्रसिद्धिं लभेन्नरः।
अथवाऽन्यप्रकारेण ध्यानं नित्याक्रमे शृणु।।३७७।।
अञ्जनाद्रिनिभाः सर्वा मुण्डमालाविभूषणाः।
दक्षहस्ते देवी खड्गं वामहस्ते च तर्जनीम्।।३७८।।
धारयन्त्यः शुभाः काल्या वरदाभयतत्कराः।
एतत्सामान्यतो ध्यानं नाममंत्रविधौ स्मृतम्।।३७९।।
रहस्यमत्र कथितं सिद्धयोऽष्ट विधाः करे।
अञ्जनं गुटिका खड्गं वेतालं यक्षिणीगणम्।।३८०।।
चरुकं तिलकं वासः कपालं पादुकां तथा।
लगुडः किन्नरीसिद्धिर्डामर्यादि महाकला।।३८१।।
चराचरगतिश्चैव त्वगुणत्वं लघिमादिकम्।
परकायप्रवेशश्च ततश्चैव रसायनम्।।३८२।।
स्पर्शचिन्तापहारश्च भूतसञ्चरणं तथा।
मृतकोत्थापनं दिव्याः सिद्धयस्तत्करे स्थिताः।।३८३।।
महापीठं समुद्धृत्य नित्या स्थाप्या यथाक्रमम्।
अथवा मूलमन्त्रेण यजेन्मध्ये स्वदेवताम्।।३८४।।
यथोक्तमन्त्रसिद्ध्यर्थं ध्यायेच्च कुलवस्तुभिः।
यजेत्संतर्पयेच्छक्तिं भोजनाच्छादनादिभिः।।३८५।।
धूपयेद्दशगंधेन देवताऽवतारेत्तदा।
रक्ताक्षी स्तब्धनेत्राङ्गी प्रसन्नमुखपङ्कजा।।३८६।।
काचिदेका भवेच्छक्तिरितरास्तन्मुखास्थिताः।
तस्मिन्क्षणे तत्प्रकृतिं कृत्वा माषमयीं शुभाम्।।३८७।।
घृतपक्वा मांसमया उपयोगाः प्रकल्पयेत्।
ग्रासे ग्रासे सुरां दद्यान्मत्स्यशाकलकानि च।।३८८।।

आद्यं बीजं समुच्चार्य नित्ये क्रूरमुखे तथा ।।
क्रूरदंष्ट्रे ललाज्जिह्वेऽमुकस्तेयं प्रकल्पितः ।।३८९।।
आहारो भक्षययुगं स्वाहान्तं ठद्वयं पुनः ।
आद्यबीजं समुच्चार्य मृत्तं ध्यायेद्रिपुं तदा ।।३९०।।
तत्कालमेव हरते मिता प्राणान्सुरेश्वरि ।
श्रूयतेऽसौ मृत इति तावत्समभोजयेन्मिताम् ।।३९१।।
पश्चात्पञ्चाङ्गधूपेन धूपयेत्तां वरप्रदाम् ।
हासं कृत्वा वरं दत्वा ब्रजेत्सा शक्तिदेहतः ।।३९२।।
श्मशाने वाऽथ सम्पूज्या वड़वाग्निसमप्रभा ।
ससैन्यराज्ञो नाशाय नृमांसैः कुलवस्तुभिः ।।३९३।।
उद्यानेषु वशीकर्तुं उच्चाटे तु नदीतटे ।
नातः परतरा विद्या सद्यः प्रत्ययकारिणी ।।३९४।।
विख्याता उत्तराम्नाये शतधा पूजिता मया ।
गोप्याद्गोप्यतराप्येषा मया तुभ्यं प्रकाशिता ।।३९५।।
अतः परं महादेवि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।

श्रीदेव्युवाच

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि यश्च धूपस्त्वयोदितः ।।३९६।।
दशगन्धप्रियस्तस्यः कानि द्रव्याणि तत्र तु ।

श्री शिव उवाच

काश्मीरस्य त्रयो भागास्त्रयो दद्यात्तथाऽगुरो ।।३९७।।
भागाः पञ्चैव चन्द्रस्य मृगनाभेर्द्वयं तथा ।
कृष्णाचन्दनकाद्यष्टौ श्वेतचन्दनकाश्च षट् ।।३९८।।
महिषाक्षस्य सप्तैव सर्जका द्वादशैव हि ।
मांस्या भागाष्टकं कृत्वाऽज्याद्भागैकं समाहरेत् ।।३९९।।
दशगन्धस्तु धूपोऽयं पञ्चाङ्ग शृणवथ प्रिये !।
मूलं कृष्णागुरोर्भागं पत्रकं च त्वचस्तथा ।
स्वर्णपुष्पं जातिपत्री समभागेन धूपयेत् ।।४००।।

इति श्रीशक्तिसङ्गमहातन्त्रराजोक्त कालीनित्याप्रकरण सम्पूर्णम् ।

श्री जगन्मङ्गलम् काल्याः कवचम्

भैरव्युवाच

कालीपूजा श्रुता नाथ भावाश्च विविधाः प्रभो ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कवचं पूर्वसूचितम् ।।१।।
त्वमेव स्रष्टा पाता च संहर्ता च त्वमेव हि ।
त्वमेव शरणं नाथ त्राहि मां दुःखसंकटात् ।।२।।

भैरव उवाच

रहस्यं श्रृणु वक्ष्यामि भैरवि प्राणवल्लभे ।
श्रीजगन्मङ्गलं नाम कवचं मन्त्रविग्रहम् ।।३।।
पठित्वा धारयित्वा वा त्रैलोक्यं मोहयेत् क्षणात् ।
नारायणोऽपि यद् धृत्वा नारी भूत्वा महेश्वरम् ।।४।।
योगेशं क्षोभमनयद् यद्धृत्वा च रघूद्वहः ।
वरदृप्तान् जघानैव रावणादिनिशाचरान् ।।५।।
यस्य प्रसादादीशोऽहं त्रैलोक्यविजयी प्रभुः ।
धनाधिपः कुबेरोऽपि सुरेशोऽभूच्छपीपतिः ।।६।।
एवं हि सकला देवाः सर्वसिद्धीश्वराः प्रिये !
श्रीजगन्मङ्गलस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः ।।७।।
छन्दोऽनुष्टुब् देवता च कालिका दक्षिणेरिता ।
जगतां मोहने दुष्टनिग्रहे भुक्तिमुक्तिषु ।।८।।
योषिदाकर्षणे चैव विनियोगः प्रकीर्तितः ।
शिरो मे कालिका पातु क्रींकारैकाक्षरी परा ।।९।।
क्रीं क्रीं क्रीं मे ललाटं च कालिका खड्गधारिणी ।
हूं हूं पातु नेत्रयुग्मं ह्रीं ह्रीं पातु श्रुतिद्वयम् ।।१०।।
दक्षिणे कालिके पातु घ्राणयुग्मं महेश्वरि !।
क्रीं क्रीं क्रीं रसनां पातु हूँ हूँ पातु कपोलकम् ।।११।।
वदनं सकलं पातु ह्रीं ह्रीं स्वाहारूपिणी ।
द्वाविंशत्यक्षरी स्कन्धौ महाविद्याऽखिलप्रदा ।।१२।।
खड्गमुण्डधरा काली सर्वाङ्गमभितोऽवत् ।
क्रीं हूँ ह्रीं त्र्यक्षरी पातु, चामुण्डाहृदयं मम ।।१३।।

ऐं हूँ ॐ ऐं स्तनद्वन्द्वं ह्रीं फट् स्वाहा ककुत्स्थलम् ।
अष्टाक्षरी महाविद्या भुजौ पातु स कर्तृका ।।१४।।
क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं पातु करौ षडक्षरी मम ।
क्रीं नाभिं मध्यदेशं च दक्षिणे कालिकेऽवतु ।।१५।।
क्रीं स्वाहा पातु पृष्ठं च कालिका सा दशाक्षरी ।
क्रीं मे गुह्यं सदा पातु, कालिकायै नमस्ततः ।।१६।।
सप्ताक्षरी महाविद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।
ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके हूँ हूँ पातु कटिद्वयम् ।।१७।।
काली दशाक्षरी विद्या स्वाहान्ता चोरुयुग्मकम् ।
ॐ ह्रीं क्रीं स्वाहा मे पातु जानुनी कालिका सदा ।।१८।।
काली हृदयविद्येयं चतुर्वर्गफलप्रदा ।
क्रौं हूँ ह्रीं पातु सा गुल्फं दक्षिणे कालिकेऽवतु ।।१९।।
क्रौं हूँ ह्रीं स्वाहा में पातु चतुर्दशाक्षरी मम ।
खड्गमुण्डधरा काली वरदाभयधारिणी ।।२०।।
विद्याभिः सकलाभिः सा सर्वाङ्गमभितोऽवतु ।
काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ।।२१।।
विप्रचित्ता तथोग्रोग्रप्रभा दीप्तां धनत्विषः ।
नीला घना बलाका च मात्रा मुद्रा मिता च माम् ।।२२।।
एताः सर्वाः खड्गधरा मुण्डमाला विभूषणाः ।
रक्षन्तु मां दिग्विदिक्षु ब्राह्मी नारायणी तथा ।।२३।।
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता ।
वाराही नारसिंही च सर्वाश्चामितभूषणाः ।।२४।।
रक्षन्तु स्वायुधैर्दिक्षु, विदिक्षु मां यथातथा ।
शुभं ते कथितं दिव्यं कवचं परमाद्भुतम् ।।२५।।
श्रीजगन्मङ्गलं नाम महाविद्यौघविग्रहम् ।
त्रैलोक्याकर्षणं ब्रह्मकवचं परमाद्भुतम् ।।२६।।
गुरुपूजां विधायाथ विधिवत् प्रपठेत् ततः ।
कवचं त्रिःसकृद् वापि यावज्ज्ञानं च वा पुनः ।।२७।।
एतच्छतार्धमावर्त्य त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
त्रैलोक्यं क्षोभयत्येव कवचस्य प्रसादतः ।।२८।।
महाकविर्भवेन्मासात् सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
पुष्पाञ्जलिं कालिकायै मूलेनैवार्पयेत सकृत् ।।२९।।

शतवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ।
भूर्जे विलिखितं चैतत् स्वर्णस्थं धारयेद् यदि ।।३०।।
शिखायां दक्षिणे बाहौ कण्ठे वा धारणाद् बुधः ।
त्रैलोक्यं मोहयेत् क्रोधात् त्रैलोक्यं चूर्णयेत् क्षणात् ।।३१।।
पुत्रवान् धनवान् श्रीमान् नानाविद्यानिधिर्भवेत् ।
ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि तद्गात्रस्पर्शनात् ततः ।।३२।।
नाशमायान्ति सर्वत्र कवचस्यास्य कीर्तनात् ।
मृतवत्सा च या नारी वन्ध्या मृतपुत्रिणी ।।३३।।
कण्ठे वा वामबाहौ वा कवचस्यास्य धारणात् ।
बह्वपत्या जीववत्सा भवत्येव न संशयः ।।३४।।
न देयं परशिष्येभ्यो ह्यभक्तेभ्यो विशेषतः ।
स्पर्धामुद्धूय कमला वाग्देवी मन्दिरे मुखे ।।३५।।
पौत्रान्तं स्थैर्यमास्थाय निवसत्येव निश्चितम् ।
इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेद् दक्षकालिकान् ।।३६।।
शतलक्षं प्रजप्त्वाऽपि तस्या विद्या न सिद्ध्यति ।
सहस्रघातमाप्नोति सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ।।३७।।
जपेदादौ जपेदन्ते सप्तवाराण्यनु क्रमात् ।
नोद्धृत्य यत्रकुत्रापि गोपनीयं प्रयत्नतः ।।३८।।
लिखित्वा स्वर्णपात्रे वै पूजाकाले तु साधकः ।
मूर्ध्नि धार्य प्रयत्नेन विद्यारत्नं प्रपूजयेत् ।।३९।।

इति श्री भैरवतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे श्रीजगन्मङ्गलं नाम काल्याः कवचं सम्पूर्णम् ।

पद्मा—भैरवी ने कहा–हे नाथ ! कालीपूजा और विभिन्न भावों को मैने सुना ! अब पहले कहे गये कवच को सुनना चाहती हूँ। तुम्ही सृष्टि करने वाले तथा संहार करने वाले हो। हे प्रभो ! तुम ही शरण हो, दुःख के संकट से मेरी रक्षा करो। पवित्र कवच समस्त दुःखों को शान्त करने वाला, सब पापों को नाश करने वाली, सभी सिद्धियाँ देने वाला अत्यन्त ही अद्भुत है। अतः मैं सुनता चाहती हूँ। हे दयानिधि ! इसको मुझसे कहिए।

श्री भैरव ने कहा–हे प्राणप्रिये ! भैरवि ! मन्त्रस्वरूप रहस्यपूर्ण श्री जगन्मंगल नामक कवच को सुनो। साधक इस कवच का पाठ करके और धारण करके तीनों लोकों को शीघ्र ही मोहित कर लेता है। भगवान् नारायण ने भी इस कवच को धारण कर मोहिनी रूप से भगवान् शिव को क्षुब्ध किया था। इस कवच को धारण कर रघुवंशी राम ने रावण का वध किया था। इस कवच के प्रभाव से मै तीनों लोकों का विजेता ईश्वर हूँ। इस कवच

के प्रभाव से कुबेर धन के स्वामी, इन्द्र शची के पति हुए हैं। हे प्रिये ! इस प्रकार सभी देवता इसके प्रभाव से सिद्धियों के स्वामी हुये हैं।

इस जगन्मंगल नामक कवच के ऋषि शिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता दक्षिणा कालिका और लोकों को मोहने में, दुष्टों पर विजय पाने मे, भोग व मोक्ष में तथा स्त्रियों के आकर्षण में विनियोग है।

मेरे शिर की एकाक्षरी परा कालिका रक्षा करे। मेरे ललाट की खड्ग धारिणी कालिका क्रीं क्रीं क्रीं रक्षा करे। दोनों नेत्रों की हूं हूं, दोनों कानों की ह्रीं ह्रीं रक्षा करे। हे महेश्वरि ! दक्षिणे कालिके मेरी नासिका की और क्रीं क्रीं क्रीं जीभ की, हूं हूं गाल की रक्षा करे। ह्रीं ह्रीं स्वाहा स्वरूपिणी समस्त मुख मण्डल की रक्षा करे। दोनों कन्धों की बाइस अक्षरी सुखदायिनी महाविद्या रक्षा करे। खड्गमुण्डधारिणी काली सारे शरीर की चारों ओर से रक्षा करे। क्रीं हूं ह्रीं यह त्र्यक्षरी चामुण्डा मेरे हृदय की रक्षा करे। ऐं हूँ ॐ ऐं दोनों स्तनों की, ह्रीं फट् स्वाहा ककुद् स्थान की, अष्टाक्षरी महाविद्या, जो कैंची से युक्त हैं दोनों भुजाओं की रक्षा करे। क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं यह षडक्षरी मेरे हाथों की रक्षा करे। क्रीं नाभि की तथा दक्षिणे कालिके मध्य शरीर की रक्षा करे। क्रीं स्वाहा सहित दशाक्षरी कालिका पीठ की रक्षा करे। क्रीं कालिकायै नम: मेरे गुह्य की रक्षा करे। सप्ताक्षरी महाविद्या सभी तन्त्रों में गुप्त है। ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके हूं हूं यह दशाक्षरी कालीविद्या दोनों कटि की रक्षा करे। स्वाहा मेरे दोनो उरूओं की रक्षा करे। ॐ क्रीं क्रीं स्वाहा कालिका मेरे दोनों घुटनों की सदा रक्षा करे। यह कालीहृदय नामक विद्या धर्म, अथ, काम व मोक्ष को प्रदान करने वाली है। क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके गुल्फ की रक्षा करे और क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा सहित चतुर्दशाक्षरी खड्गमुण्डवर एवं अभय धारण करने वाली काली मेरे पैरों की रक्षा करे। समस्त विद्याओं के सहित वह सभी अंगों की चारों ओर से रक्षा करे। काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, विप्रचित्ता, उग्रा, उग्रप्रभा, दीप्ता, धनत्विषा, नीला, घना, बलाका, मात्रा मुद्रा तथा मिता मेरी रक्षा करें। यह सभी खड्गधारिणी और मुण्डमाला से विभूषित हैं। दिशा विदिशाओं में ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, वाराही नारसिंही मेरी रक्षा करें। ये सभी बहुत से आभूषणों से विभूषित हैं। अपने अस्त्रों के द्वारा ये दिशा-विदिशाओं में सब प्रकार से मेरी रक्षा करें।

यह शुभ एवं अति विलक्षण कवच तुमसे कहा। इसका नाम श्री जगन्मङ्गल है, महाविद्याओं के समूह के स्वरूप वाला है। तीनो लोकों का आकर्षक यह ब्रह्म कवच मेरे मुख से निकला है। गुरु की पूजा कर विधिवत पाठ करें। तीन बार या एक बार ज्ञान सहित पाठ करे अथवा ५१ बार पाठ करे तो तीनों लोकों पर विजय प्राप्त होती है। कवच के प्रसाद से तीनों लोक क्षुब्ध होते हैं। एक महीने मे पाठ करने वाला समस्त सिद्धियों

का स्वामी होता है। मूल मन्त्र के द्वारा भगवती काली को एक बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करने से सैकड़ों हजारों वर्षों की पूजा का फल प्राप्त होता है। भोज पत्र पर लिखकर स्वर्ण की गुटिका में रखकर इसे शिखा में, दाहिनी भुजा में या कण्ठ मे धारण करे तो तीनो लोक को मोहित कर सकता है। यदि धारण करने वाला क्रुद्ध हो जाये तो वह भगवती की कृपा से क्षण मात्र में त्रिलोकी को नष्ट कर सकता है। इस कवच का पाठकर्त्ता पुत्रवान्, धनवान्, श्रीमान् और विविध प्रकार की विद्याओं का ज्ञाता होता है। ब्रह्मास्त्र आदि शस्त्र उसके शरीर को स्पर्श करते ही नष्ट हो जाते हैं। मृतवत्सा अथवा वन्ध्या स्त्री इसे कण्ठ या बायीं भुजा में धारण करे तो निःसन्देह वह अति दीर्घ-जीवी पुत्रों को प्राप्त करती है इसमें सन्देह नहीं है। अन्य के शिष्य को, विशेष कर भक्तिहीन को इसे न बताये। पारस्परिक स्पर्धा को समाप्त कर लक्ष्मी घर मे और सरस्वती मुख मे पौत्रादि तक के पास स्थिर होकर रहती है। बिना इस कवच के जाने जो व्यक्ति भगवती दक्षिण काली का मन्त्र जपता है, वह दस लाख भी मन्त्र का जप कर ले तो भी उसको विद्या नही सिद्ध होती है। उसे हजारों आघात लगते हैं तथा शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। अतः मन्त्र जप के आरम्भ और अन्त में इसे सातों दिन जप् करे। इसे कभी भी प्रकट न करे और प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखे। पूजा काल में स्वर्णपात्र में लिखकर सिर में धारण करे। विद्या रत्न का पूजन करे ॥१-३९॥

*जगन्मंगल कवच की अजय कुमार उत्तम कृत **पद्मा** हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥*

❖

श्री श्री कर्पूरादिस्तोत्रम्

कर्पूरं मध्यमान्त्यस्वरपरिरहितं सेन्दुवामाक्षियुक्तं
बीजं ते मातरेतत्त्रिपुरहरवधु त्रिःकृतं ये जपन्ति ।
तेषां गद्यानि पद्यानि च मुखकुहरादुल्लसन्त्येव वाचः
स्वच्छन्दं ध्वान्तधाराधररुचिरुचिरे सर्वसिद्धिं गतानाम् ।।१।।

टीका

ॐ विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे ।
श्रेयः प्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्धधारिणे । श्रीश्री चण्डी ।
प्रणमामि महादेवीं तुरीयां ब्रह्मरूपिणीम् ।
यस्याः स्मरणमात्रेण भवाब्धौ न निमज्जति ।। गन्धर्वतन्त्रम् ।
कालीं कालहरां देवीं क्रीङ्कारबीजरूपिणीम् ।
कामरूपां कलातीतां कालिकां दक्षिणां भजे ।। कालीहृदयम् ।

कपूर्रमिति । कर्पूरमित्यादिपञ्चभिः श्लोकैर्महादेव्याः सूक्ष्मरूपात्मकविद्याराज्ञीनाम द्वाविंशत्यक्षरं मन्त्रम् उद्धृतम् तथा तस्याः साधनप्रकारं माहात्म्यञ्च क्रमेणोक्तम् । षष्ठश्लोके तस्या विविधमन्त्रोद्धारश्च कथितः । उक्तञ्च **कालिकाश्रुतौ**–"अथ हैनां ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मस्वरूपिणीमाप्नोति सुभगां कामरेफेन्दिरासमष्टिरूपिणीम् । एतत्त्रिगुणितमादौ तदनु कूर्च्चद्वयम्, कूर्च्चबीजं तद्व्योम षष्ठस्वरबिन्दुमेलनरूपम् । तदेव द्विरुच्चार्य तदनु भुवनाद्वयम्, भुवना तु व्योमज्वलनेन्दिराशून्यमेलनरूपा । तदेव द्विरुच्चार्य दक्षिणे कालिके चेत्यभिमुखं गता, तदनुबीजसप्तकमुच्चार्या बृहद्भानुजायामुच्चरेत् । अयं सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः" । तथा च **निरुत्तरतन्त्रे** *–

अथ वक्ष्ये महेशानि ! दक्षिणाकालिकामनुम् ।
येन विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्ताः प्रजायते ।
ब्रह्मानलयुतं देवि ! नादबिन्दुसमन्वितम् ।
वामनेत्रेण संयुक्तं चित्स्वरूपं परात्परम् ।।

---

* इस स्तोत्र का हिन्दी अनुवाद भारतीय विद्या संस्थान वाराणसी से प्रकाशित है । सम्पादक एवं व्याख्याकार हैं–**अजय कुमार उत्तम**

१. यह ग्रन्थ भारतीय विद्या संस्थान वाराणसी से प्रकाशित है व्याख्याकार हैं–अजय कुमार उत्तम

एकाक्षरी सिद्धविद्या मन्त्रराज्ञी कुलेश्वरि !।
त्रिगुणा च कूर्च्चयुग्मं लज्जायुग्मं ततः परम् ।।
दक्षिणे कालिके चेति सप्तबीजानि योजयेत् ।
अन्ते वह्निवधूं दद्याद् विद्याराज्ञी प्रकीर्त्तिता ।
सर्वमन्त्रमयी विद्या सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।

अपरञ्च प्रथम श्लोके श्रीमत्कालिकाया एकाक्षरी मन्त्रराज्ञी क्रींबीजमुद्धृतम्, द्वितीय श्लोके श्रीमतत्ताराया एकाक्षरमन्त्रं हूँ बीजमुद्धृतम्। तृतीयश्लोके श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्या एकाक्षरमन्त्रं ह्रींबीजमुद्धृतम्, तथा कालीतारासुन्दरीणां रहस्यसाधनप्रकरणञ्च वर्णितम्, तेन एतत्स्वरूपाख्यस्तोत्रं ककारकूटस्तोत्रवत् त्रिशक्तिविषये पाठयम् इति क्रमदीक्षितसाधकेन्द्राणां मतम्। उक्तञ्च–

ताराहस्यतन्त्रे

यथा काली तथा तारा तथा नीलसरस्वती ।
सर्वाभीष्टफलप्रदा तथा त्रिपुरसुन्दरी ।।
अीदमतमास्थाय यः कश्चित् साधयेन्नरः ।
त्रिलोके स तु पूज्यः स्यात्तारासुतश्च एव सः ।।
भेदं कृत्वा यदा मन्त्री साधयेदत्र साधनम् ।
न तस्य निष्कृतिर्देवि निरये पच्यते हि सः ।।

उक्तञ्च ताराध्याने कवचे च–'हूङ्कारबीजोद्भवा' 'हूँ घाटां में सदा पातु बीजैकाक्षररूपिणी' ।। तथा श्रीसुन्दर्य्याः स्तोत्रे च–

ह्रीङ्कारमेव तव नाम गृणन्ति ये वा
मातस्त्रिकोणनिलये त्रिपुरे त्रिनेत्रे ।
ह्रीं ह्रीमिति प्रतिदिनं जपतां तवाख्यां
किन्नाम दुर्लभमिह त्रिपुराभिधाने ।।

तथा च **महाकालसंहितायाम्–**

श्रीविद्या कालिका तारा त्रिशक्ति विषये पठेत् ।

वस्तुतस्तु यद्वद्विभिन्नजातीयबीजेभ्य एकविधा लता कदापि न उत्पद्यते, तद्वत्, क्रीङ्कार-हूङ्कार-ह्रीङ्कारादिभ्यो विभिन्न-बीजमन्त्रेभ्य एकरूपा मूर्त्तिर्न सम्भवति, अतः पूर्वोक्तैस्त्रिभिर्बीजैर्ब्रह्मविद्याश्रीमद्दक्षिणकालिकैव सर्वरूपिणीति सूचिता ।

हे मातः ! ध्वान्तधाराधर रूचि-रुचिरे नीलमेघकान्तिरिव मनोज्ञे नवीन जलधरो यथा अमृतवारिवर्षणेन आतपतप्तपृथ्वी शीतलां करोति, तद्वत्त्वमपि कृपामृतवर्षणेन

त्रितापतप्तसाधकाय अमृत्वं ददासीति भावः। त्रिपुरहरवधु स्वर्गमर्त्यपातालस्थैस्त्रिपुरैः सह त्रिपुराख्यासुरनाशकमहेशशक्ते। कर्पूरं मध्यमान्त्यस्वरपरिरहितं कर्पूरशब्दस्य मध्यमो रेफयुक्तः पकारः, अन्त्यम् अनुस्वारः, स्वरा अकारोकारान्तिमरेफस्थाकारास्तैः सर्वतोभावेन वर्जितम्, तेन 'क्र' इति स्थितम्। सेन्दु बिन्दुयुक्तार्द्धचन्द्रेण सह वर्तमानम्। वामाक्षियुक्तम् ईकारेण युक्तम्, तथा च 'क्रौं' इति। ते तव बीजं मन्त्रात्मकशरीरस्य कारणम्। त्रिःकृतं त्रिगुणीकृतं ये जनाः जपन्ति मन्त्रार्थगतमानसाः सन्तो मनसा उच्चारयन्ति। सर्वसिद्धिं गतानां शिवस्य अणिमाद्यष्टसिद्धिं प्राप्तानां साधकानां मुखकुहराद् अस्यबिबरात्। गद्यानि पद्यानि च वाचः गद्यपद्यमयानि वाक्यानि स्वच्छन्दम् अप्रयत्नसुलभमुल्लसन्ति प्रस्फुरन्ति इत्यर्थः। अपि च श्रूयते यत् श्रीमत्कालिकाया इदं **क्रीं** बीजम् इस्लामधर्मावलम्बिनः साधका मोक्षलाभकामनया आरबीयभावया रूपान्तरितं 'करीम्' इति मन्त्रं जपन्ति, तथा खृष्टानधर्म्मावलम्बिनः साधका अपि 'क्राइस्ट' इति मन्त्रं मुक्तिकामनया सदैव जपन्ति ॥१॥

अथास्य स्वरूपव्याख्या।।१।।

नत्वा श्रीपादुकां भक्त्या रामानन्दस्य योगिनः।
कृता स्वरूपव्याख्येयं विमलानन्ददायिनी।।

हे मातः (माति परिमितं ददातीति माता–मा+तृच्) सकामनिष्कामभेदेन भोगमोक्षदात्रि। ध्वान्तधाराधररुचिरुचिरे शुद्धसत्त्वगुणात्मकघनीभूततेजोमयत्वात् तथा चिदाकाशत्वाच्च नीलवर्णचिन्तनीये। त्रिपुरहरवधु स्थूलसूक्ष्मकारणदेहान् हरतीति विदेहमुक्तिदायकत्रिपुरहरस्तस्य विदेहमुक्तिदातुर्या शक्तिः सा त्वमेव विदेहकैवल्यदात्रीति भावः। मध्यमान्त्यस्वरपरिरहितं सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिकाया मूलप्रकृतेर्मध्यम उकारात्मको रजोगुणः, अन्त्यं मकरात्मकस्तमोगुणः, ताभ्यां रहितं शुद्धसत्त्वगुणात्मकम्। सेन्दुवामाक्षियुक्तं निर्वाणमोक्षदायिनी शक्तिस्तथा साधकाभीष्टायिका शुद्धसत्त्वप्रधाना मायाशक्तिस्ताभ्यां युक्तम्। कर्पूरं कल्पयति जगत्प्रपञ्चं यत् तत् सगुणब्रह्म इत्यर्थः। ते तव बीजं जगत्कारणभावं सच्चिदानन्दरूपिणी त्वं निर्गुणापि जीवकर्मकाल विशिष्ट्या मायया युक्ता सती तत्तीज्जीवतत्तत्कर्मफलभोगसमये प्राप्ते जगत्सर्जने बीजात्मतां गतासीति भावः। एतत् क्री वाच्यं तव शुद्धसत्त्वांत्मकं सच्चिदानन्दरूपम्। ये साधकास्त्रिः कृतं त्रिगुणीकृतं, सात्त्विकराजसिकतामसिकभेदेन तथा स्थूल-सूक्ष्म-कारणभेदेन त्रिविधं त्रिशक्तिरूपञ्च। जपन्ति स्वात्माभेदेन चिन्तयंति ते अनिच्छन्तोऽपि धर्मार्थकाममोक्षरूपचतुर्वर्गं लभन्त इति भावः। उक्तञ्च **विश्वसारतन्त्रे दक्षिणकालिकायाः क्रमस्तोत्रे—**

त्वदीयबीजत्रयमेतदम्ब जपन्ति सिद्धास्तु विमुक्तिहेतोः।
तदेव मातस्तव पादपद्मगा भवन्ति सिद्धाश्च दिनत्रयेऽपि।।१।।

ईशानः सेन्दुवामश्रवणपरिगतो बीजमन्यन्महेशि
द्वन्द्वन्ते मन्दचेता यदि जपति जनो वारमेकं कदाचित्।
जित्वा वाचामधीशं धनदमपि चिरं मोहयन्नम्बुजाक्षी-
वृन्दं चन्द्रयदर्धचूडे प्रभवति स महाघोरबालावतंसे ।।२।।

टीका

हे महेशि ! ब्रह्मविष्णुरुद्राणामपि ईशो महेशस्तस्य शक्ते। हे चन्द्रार्द्धचूडे चन्द्रार्द्धाङ्कितमस्तके ! हे महाघोरबालावतंसे अतिभयानकशवबालकृतकर्णालङ्कारे। मन्दचेता जनो मूढबुद्धिर्जनः। ते तव सेन्दुवामश्रवणपरिगतः चन्द्रबिन्दुसहितो यो दीर्घ ऊकारस्तेन युक्तः। ईशानो हकारः। एतेन 'हूँ' इति तव द्वितीयमूर्त्तेस्ताराया एकाक्षरबीजमन्त्रञ्च उद्धृतम्। द्वन्द्वमेतद् युग्मं कृत्वा। यदि कदाचिद् एकवारमपि जपति तदा स चिरं यावज्जीवं वाचामधीशं बृहस्पतिं धनदमपि कुबेरञ्च जित्वा पराभूय अम्बुजाक्षीवृन्दं सुन्दरीसमूहं मोहयन् प्रभवति मोह यितुं समर्थो भवति, स साधकोऽतीव विद्वान धनवान् रूपवांश्च भवतीत्यर्थः। तथा **च तारारहस्ये-**

'तारकत्वात् सदा तारा या काली सैव निश्चितां।

क्रमस्तोत्र च-

त्वदीयकूर्च्चद्वयजापकत्वात् सुरासरेभ्योऽपि भवेच्च पूज्यः।
धनित्वं पाण्डित्यं लभन्ति सर्वे किं वापरं देवि परापराख्ये ।।२।।

स्वरूपव्याख्या ।।२।।

हे महेशि ! सृष्टि-स्थिति विनाशात्मकमहैश्वर्य्यवति। चन्द्रार्द्धचूडे निर्वाण-मोक्षदायिनी। हे महाघोरबालावतंसे महेश्वरसदृशानिर्विकारबालकवन्निष्कामसाधकाभ्यां कृते अतिप्रिये कर्णभूषणे यया तत्सम्बोधने। बालकवन्निर्विकारतत्त्वश्च साधको ब्रह्मरूपिण्या अतीव प्रिय इत्यर्थः। सेन्दुवामश्रवणपरिगत इन्दुः अमृतत्वं वाग्दातृत्वं रूपकर्षिणीत्वञ्च तैर्युक्तः। ईशानः ईश्वरः। इति ते अन्यद्बीजं हूँ बीजात्मककारणभावम्। द्वन्द्वं शिवशक्त्यात्मकं स्वरूपम्। यदि कदाचिद् एकवारमपि जपति मानसजपेन चिन्तयति। तर्हि स साधकः ज्ञानविज्ञानवान् धनवांश्च भूत्वा सर्वं जगद् मोहयितुं शक्नोतीति भावः ॥२॥

ईशो वैश्वानरस्थः शशधरविलसद् वामनेत्रेण युक्तो
बीजन्ते द्वन्द्वमन्यद् विगलितचिकुरे कालिके ये जपन्ति।
द्वेष्टारं घ्नन्ति ते च त्रिभुवनमपि ते वश्यभावं नयन्ति
सृक्कद्वन्द्वास्रधाराद्वयधरवदने दक्षिणे त्र्यक्षरेति ।।३।।

टीका

हे विगलितचिकुरे मुक्तकेशि ! हे कालिके ब्रह्मरूपिणि । हे सृक्कद्वन्द्वास्रधाराद्वयधरवदने ओष्ठप्रान्तद्वयगलितरुधिरधाराशोभिताननने । वैश्वानरस्थो रकारयुक्तः शशधरविलसत् चन्द्रबिन्दुयुक्तः । वामनेत्रेण युक्त ईकारेण युक्तः । ईशो हकारः । अन्यत् "ह्रीँ" इति त्रिपुरसुन्दरीबीजम् । द्वन्द्वम् उक्तबीजं द्विगुणीकृतम् । तथा 'दक्षिणे' इति नामात्मकत्र्यक्षरमन्त्रञ्च ये जनाः जपति ते द्वेष्टारं शत्रुं घ्नन्ति नाशयन्ति त्रिभुवनमपि स्वर्ग-मर्त्य-पातालस्थं देवनरनागादिकञ्च बश्यभावं नयन्ति अधीनत्वं प्रापयन्ति इत्यर्थः ॥३॥

स्वरूपव्याख्या ।।३।।

हे विगलितचिकुरे केशविन्यासादिविलास विकाररहिते निर्विकारे इत्यर्थः । कालिके क ब्रह्म, आ अनन्त, ल विश्वात्मा, इ सूक्ष्मा, क ब्रह्म, आ अनन्त इति कालिका, एतेन महादेव्या आद्यन्तरहितत्वम्, अनन्त त्वम्, सूक्ष्मत्वं विश्वात्मकत्वञ्च सूचितम्, हे अनाद्यनन्त ब्रह्मरूपिणी इत्यर्थः । उक्तञ्च अद्भुतरामायणे श्रीरामकृतासितास्तोत्रे–

आद्यन्तहीनं जगदात्मरूपं विभिन्नसंस्थं प्रकृतेः परस्तात् ।
कूटस्थमव्यक्तवपुस्तवैव नमामि रूपं पुरुषाभिधानम् ।।

सृक्कद्वन्द्वास्रधाराद्वयधरवदने सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननने, अत्र रक्तधारया रजोगुणाः सूचितः तस्माद् महादेवी रजोरहिता शुद्धसत्त्वात्मिका विरजा इति निरूपिता । त्रिपुरसुन्दरीपक्षे तु रजोगुणेन महादेव्याः रक्तवर्णा मूर्त्तिः सूचिता । वैश्वानरस्थस्तेजोमयः शशधरविलसद् अमृतदातृशक्त्या सह वामनेत्रेण युक्तः शुद्धसत्त्वगुणात्मिकया मायया युक्तः । ईशः ईश्वरात्मकसूक्ष्मबीजात्मभावः इति, ते तव अन्यद् अपरं द्वन्द्वं हल्लेखावाच्यशिव शक्त्यात्मकं बीजात्मरूपम् । तथा दक्षिणे इति सम्बोधननामात्मकत्र्यक्षरं मन्त्रवाच्यं कैवल्यदायकसच्चिदानन्द रूपं ये साधकाः जपन्ति ध्यायन्ति, ते द्वेष्टारं साधनविघ्न करकामक्रोधादिकं घ्नन्ति नाशयन्ति, त्रिभुवनमपि वश्यभावं नयन्ति वश्यतां प्रापयन्ति । श्री सुन्दरीपक्षे तु हे कालिके रक्तकालिके तृतीयमहाविद्याश्रीमत्त्रिपुरसुन्दरि इत्यर्थः । उक्तञ्च **बृहन्नीलतन्त्रे–**

इयं नारायणी काली तारा स्यात् शून्यवाहिनी ।
सुन्दरी रक्तकालीय भैरवी नादिनी तथा ।।

तथा च तन्त्रान्तरे—

कालिका द्विविधा प्रोक्ता कृष्णारक्ताप्रभेदतः ।
कृष्णा तु दक्षिणा प्रोक्ता रक्ता तु सुन्दरी मता ।।

दक्षिणे दक्षिणामूर्तिभैरवाराधिते इत्यर्थः । त्र्यक्षरे ऐं क्लीँ ह्रीँ मन्त्रवाच्ये इत्यर्थः । तथा च **क्रमस्तोत्रे–**

त्वदीयलज्जाद्वयजापकत्वाद् भवेन्महेशानि चतुर्थसिद्धिः ।
दयासमुद्रस्य वरप्रसादाद् भवाधिपत्यं लभते नरेशः ।।३।।

ऊर्ध्वे वामे कृपाणं करकमलतले छिन्नमुण्डं तथाधः
सव्ये चाभीर्वरञ्च त्रिजगदघहरे दक्षिणे कालिके चे ।
जप्त्वैतन्नाम ये वा तव मनुविभवं भावयन्त्येतदम्ब
तेषामष्टौ करस्थाः प्रकटितरदने सिद्धयस्त्र्यम्बकस्य ।।४।।

टीका

हे त्रिजगदघहरे त्रिजगतां जनानां पापनाशिनि । हे प्रकटितरदने प्रकाशितदशने । हे अम्ब मातः । दक्षिणे निर्वाणदात्रि ये साधकास्तव मनुविभवं पूर्वोक्तां कालीबीजत्रयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं 'दक्षिणे' इति त्र्यक्षररूपं दशाक्षर मन्त्रसम्पत्तिं तथा 'कालिके' इति नामात्मकं त्र्यक्षरमन्त्रञ्च जप्त्वा वामे ऊर्ध्वे करकमलतले कृपाणं खड्गं तथा अधः निम्ने छिन्नमुण्डं छिन्नमस्तकम् । सव्ये दक्षिणे ऊर्ध्वे । करकमलतले अभीः अभयमुद्राम् । वरञ्च दक्षिणे अधः करकमलतले वरमुद्राञ्च । एतद् ईदृशम् ऊर्ध्वे वामे कृपाणम् इत्यादिप्रकाररूपं भावयन्ति चिन्तयन्ति । त्र्यम्बकस्य शिवस्य । अष्टौ सिद्धयः आणिमादयः अष्टप्रकाराः सिद्धयस्तेषां साधकानां करस्थाः अनायासलब्धा भवन्तीत्यर्थः ।।४।।

स्वरूपव्याख्या ।।४।।

हे त्रिजगदघहरे त्रिलोकीनां कायिकवाचिकमानसिकत्रिविधपापनाशिनि । हे प्रकटितरदने स्वप्रकाशसत्त्वगुणसूचकशुभ्रदशनपङ्क्त्या रजोगुणसूचकरक्तवर्णा लोलरसनां दशति सत्त्वगुणेन रजस्तमश्च नाशयति या तस्याः सम्बोधने । हे अम्ब मातः । दक्षिणे निर्वाणदात्रि । ते तव मनुविभवं निजबीजत्रयात्मकचिद्घनमूर्त्तिं कूर्च्चबीजद्वयात्मकसत्त्वात्मकमूर्त्तिं तथा मायाबीजद्वयात्मकरजः प्रधानसत्त्वमूर्त्तिञ्च । तथा कालिके कालिके इति नामवाच्यम् आद्यन्तरहितं सच्चिदानन्दमूर्तिञ्च जप्त्वा चिन्तयित्वा। स्त्रीमूर्त्तिधारिणी त्वं स्वीयवामोर्ध्वहस्तेन ज्ञानखड्गेन निष्कामसाधकानां मोहपाशं छित्त्वा तदधोहस्तेन विगतरजं तत्त्वज्ञानाधारं मस्तकं दधासि तथा दक्षिणोर्ध्वहस्तेन समकामसाधकेभ्योऽभयं तथा तदधोहस्तेन चाभीष्टवरञ्च दधासीति। एवम्भूतां त्वां ये साधका ध्यायन्ति, तेषामणिमाद्यष्टसिद्धयोऽनायासलब्धा भवन्तीति भावः ।।४।।

वर्गाद्यं वह्निसंस्थं विधुरतिललितं तत्त्रयं कूर्च्चयुग्मं
लज्जाद्वन्द्वञ्च पश्चात् स्मितमुखि तदधष्ठद्वयं योजयित्वा ।
मातर्ये ये जपन्ति स्मरहरमहिले भावयन्तः स्वरूपं
ते लक्ष्मीलास्यलीलाकमलदलदृशः कामरूपा भवन्ति ।।५।।

टीका

हे स्मितमुखि ईषद्धास्यवदने । हे स्मरहरमहिले मदनान्तकमोहिनि । हे मातः ! ये ये जनाः वह्निसस्थं रकारोपरिस्थितम् । विधुरतिललित्त विधुश्चन्द्रबिन्दुः, रतिर्दीर्घ ईकारस्ताभ्यां युक्तम् वर्गाद्यं पञ्चवर्गाणामादिभूतं 'क' वर्णम् 'क्रीँ' इति बीजं तत्त्रयं तस्य त्रितयम् । पश्चात् तदनन्तरं कूर्च्चयुगमं हूँ बीजद्वयम् । लज्जाद्वन्द्वञ्च ह्रीँ बीजद्वयञ्च तदधः तत्पश्चात् । द्वद्वयं द्विठं 'स्वाहा' शब्दम् । योजयित्वा संयोज्य । स्वरूपं ध्वान्तधाराधररुचिरे इत्यादि त्वदीय द्वाविंशत्यक्षरमन्त्रघटितं रूपम् । भावयन्तः ध्यायन्तः जपन्ति क्रीँ क्रीँ क्रीँ इत्यादि स्वाहान्तं द्वाविंशत्यक्षरीं विद्याराज्ञी पुनः पुनः उच्चारयन्ति, ते साधकाः लक्ष्मीलास्यलीलाकमलदलदृशः लक्ष्म्याः या नृत्यक्रीडा, सा यत्र कमले पद्मे, तद्दलमिव पत्रमिव दृशो चक्षूंषि येषां तथाविधाः । कामरूपाः कामदेवसदृशकमनीयरूपा भवन्ति ॥५॥

स्वरूपव्याख्या ॥५॥

हे स्मितमुखि नित्यानन्दरूपिणि । स्मरहरमहिले स्मरहरः कामनाशकः हरस्तस्य महिला शक्तिः स्वीयसाधकानां कामक्रोधादिनाशिनीति भावः । हे मातः ये ये ये केचित् साधका नराधमा अपि यदि तव वह्निसंस्थं तेजोमयम् । विधुरतिललितं शैत्यसौन्दर्ययुक्तम् । वर्गाद्यं सृष्टेः आदिभूतं चिन्मयरूपं । तत्त्रयम् सत्त्वरजस्तमोभेदेन त्रिविधरूपम् । पश्चात् तथा कूर्च्चयुग्मं शब्द ब्रह्मरूपम् । लज्जाद्वन्द्वञ्च मायाशबलब्रह्मरूपञ्च । तदधः ठद्वयं योजयित्वा स्वाहा वह्नेः प्रकाश शक्तिस्तया सह ते स्वप्रकाशरूपं स्वरूपं स्वस्य आत्मनः रूपम्, जीवात्मना सह अभेदम् । भावयन्तो जपन्ति अनुध्यायन्ति, ते साधकाः लक्ष्मीलास्यलीला लक्ष्म्याः, श्रियः, लास्यं नृत्यम् लीला क्रीड़ा रमणञ्च इत्यर्थः लक्ष्म्या नृत्यादिविहार इति भावः । तस्या आधार भूतो यः कमलदृक् विष्णुस्तत्सदृशाः । उक्तञ्च **देवीमाहात्म्ये–**

श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा ।

कामरूपाः स्वेच्छानुसारेण शरीरग्रहणसमर्था भवन्ति । यथा पुण्डरीकाक्षो विष्णुः स्वेच्छया मत्स्यकूर्म्मवराहादिदशविधमूर्त्तीन् तथा मोहिनीमूर्त्तिश्च दधार, तद्वत् कालीसाधकाः स्वेच्छानुसारेण मूर्त्ति परिग्रहीतुं शक्नुवन्तीति भावः । उक्तञ्च **क्रमस्तोत्रे–**

ततः स्वमाम्नः शृणु मातरेतत् फलं चतुर्वर्गं मनन्ति सन्तः ।
बीजत्रयं वै पुनरव्युपास्य सुराधिपत्यं लभते मुनीन्द्रः ॥
पुनस्तथा कूर्च्चयुगं जपन्ति भवन्ति सिद्धा नरसिंहरूपाः ।
ततोऽपि लज्जाद्वयजापकत्वाद् लभन्ति सिद्धिं मनसा जनास्ते
अन्ते पदं क्षिप्यं विभा विभावस्तोस्तन्मन्त्रमुद्धारमिदं वदन्ति ॥५॥

प्रत्येकं वा द्वयं वा त्रयमपि च परं बीजमत्यन्तगुह्यं
त्वन्नाम्ना योजयित्वा सकलमपि सदा भावयन्तो जपन्ति ।

तेषां नेत्रारविन्दे विहरति कमला वक्त्रशुभ्रांशुबिम्बे
वाग्देवी देवि मुण्डस्त्रगतिशयलसत्कण्ठिपीनस्तनाढये ।।६।।

टीका

हे देवि ! द्योतनशोले हे मुण्डस्त्रगतिशयलसत्कण्ठि मुण्डमालिनि । हे पीनस्तनाढ्ये पीवरस्तनि । अत्यन्तगुह्यं साधकेतराणां समीपे अतीवगोपनीयम् । प्रत्येकं वा पूर्वोक्तानां बीजानामेकैकम् । द्वयं वा द्व्यक्षरं वा त्र्यमपि त्र्यक्षरमपि । त्वन्नाम्ना सम्बोधनान्तेन दक्षिणकालिकेति नाम्ना । योजयित्वा एकाक्षरं द्व्यक्षरं त्र्यक्षरं पुटितं कृत्वा । सकलमपि द्वाविंशत्यक्षरात्मकविद्याराज्ञीं वा । भावयन्तः तत्तन्मन्त्रार्थवाच्यं त्वद्ध्यानोक्तं तव नवघननील-दिगम्बरी-पीनस्तनी-मुण्डमालिनी-मुक्तकेशीरूपम् । ध्यायन्तः पूर्वोक्तमन्त्राणां मन्त्रमेकं जपन्ति च, तेषां साधकानाम् । नेत्रारविन्दे नयनपद्मे । कमला लक्ष्मीः । विहरति सदैव तिष्ठति । तथा तेषां वक्त्रशुभ्रांशुबिम्बे मुखचन्द्रे । वाग्देवी सरस्वती च विहरति विहारं करोति । ते धनवन्तो विद्यावन्तश्च भवन्ति इति भावः । श्रीसुन्दरीपक्षे तु-हे देवि त्रिपुरसुन्दरि साधकाः 'सकलं' इति त्र्यक्षरबीजं तव ह्रींकार इति नाम्ना योजयित्वा प्रत्येकं केवलं 'सकलह्रीं' इति शक्तिकूटाख्यमन्त्रम् अथवा कामराजकूटसहितं कूटद्वयं किं वा वाग्भवकामराजशक्त्याख्यकूटत्रयात्मकं पञ्चदशाक्षरमन्त्रराजम् । त्वां ध्यायन् जपन्ति तेषां नेत्रारविन्दे इत्यादि सर्वं पूर्ववत् ।।६।।

स्वरूपव्याख्या ।।६।।

हे देवि स्वप्रकाशरूपिणि । हे मुण्डस्त्र गतिशयलसत्कण्ठि हे पञ्चासद्वर्णमयि शब्दब्रह्मरूपिणि । हे पीनस्तनाढ्ये स्तन्यरूपाहार्यादिदानेन त्रिजगतां पालयित्रि तथा स्तन्यामृतदानेन साधकानां मोक्षदात्रि च । मातस्तव प्रत्येकं वा द्वयं वा त्रयमपि च परम् अत्यन्तगुह्यं सकलं सगुणम् । बीजं तव प्राज्ञतैजसविश्वाख्य-व्यष्टिरूपं तथा ईश-सूत्र-विराटाख्य-समष्टिभूतमूर्तीश्च भावयन्तः जपन्तिः श्रवण-मनन-निदिध्यासनात् सदा चिन्तयन्ति । तेषां ज्ञानयोगिनां नेत्रारविन्दे कमला बिहरति तेषां कृपादृष्टिपातेन अन्येषामपि धनैश्वर्यं भवति का कथा आत्मनाम् इति भावः । वक्त्रशुभ्रांशुबिम्बे वाग्देवी विहरति तेषां गद्यपद्यमयीवाणी भवतीति भावः । अथवा हे मातः ! ये जनास्तव सकलं सगुणं शब्दब्रह्मयरूपं स्वात्माभेदेन चिन्तयन्त इमान् मन्त्रान् जपन्ति तेषां साधकानां नेत्रारविन्दे इत्यादि ।।६।।

गतासूनां बाहुप्रकरकृतकाञ्चपरिलस
न्नितम्बां दिग्वस्त्रां त्रिभुवनविधात्रीं त्रिनयनाम् ।
श्मशानेस्थे तल्वे शवहृदि महाकालसुरत-
प्रयुक्तां त्वां ध्यायन् जननि जडचेता अपि कविः ।।७।।

टीका

हे जननि त्रिजगतां सृष्टिकर्त्रि। गतासूनां मृतानाम्। बाहुप्रकरकृतकाञ्चीपरिलसन्नितम्बां करसमूहरचितकटिभूषणशोभमाननितम्बाम्। दिग्वस्त्रां दिगम्बरीं त्रिभुवनविधात्रीं त्रिजगतां भोगमोक्षविधानकर्त्रीम्। त्रिनयनां शशि सूर्याग्निनेत्राम्। श्मशानस्थे शवहृदि तल्पे श्मशानस्थशवरूपसदाशिवशय्याम्। महाकालसुरतप्रयुक्तां परमशिवेन सह रतिक्रीड़ाभिः निविष्टाम्। त्वां ध्यायन् चिन्तयन् जनः। जडचेता मन्दबुद्धिः सन्नपि कविः काव्यरचनाकुशलो भवति ॥७॥

स्वरूपव्याख्या ॥७॥

हे जननि चराचराणां उत्पादयित्रि। गतासूनां मृतानां बाहुप्रकरकृतकाञ्चीपरिलसन्नितम्बां सर्वे जीवाः कल्पावसाने स्थूलदेहान् त्यक्त्वा स्वस्वकर्म्मभिः सह लिङ्गदेहमाश्रित्य सगुणब्रह्मरूपिण्यः कारणदेहस्य अविद्यामयांशे पुनः कल्पारम्भपर्यन्तम् आमोक्षं अवतिष्ठन्ते, अत एवात्र मृतजीवानां प्रधानकर्म्मसाधनभूतैः करसमूहैः विराट्रूपिण्या महादेव्याः गर्भधारणयोग्यनिम्नोदरस्य तथा योनेश्च ऊर्ध्वस्थितकटिप्रदेशे काञ्ची कल्पिता इति भावः। दिग्वस्त्रां वस्त्रं मायावरणम्, तेन शून्यां मायातीतामित्यर्थः। त्रिभुवनविधात्रीं पुनः कल्पारम्भे जीवानां स्वस्वसञ्चितकर्म्मानुसारेण पुनर्ज्जन्मनां भोगानाञ्च विधानकर्त्रीम्। त्रिनयनां त्रिकालज्ञाम्। श्मशानस्थे महाप्रलये सर्वभूतानि शवरूपैः शेरते लीयन्ते यस्मिन्, तत् स्थानं तस्मिन् महाकाशे। शवहृदि तल्पे शवः निर्गुणब्रह्म, तल्पे आधारे निर्गुणब्रह्मरूपाधारे निर्गुणब्रह्मरूपस्वीयपदे अवस्थिता सतीत्यर्थः। महाकालसुरतप्रयुक्तां कल्पावसाने सृष्ट्यादिकार्य्याभावात्, निष्क्रियत्वाच्च परमशिवेन सह अभिन्नतया अखण्डानन्दमनुभवन्तीम्। एवं ध्यायन् सच्चिदानन्दरूपिणीं त्वां चिन्तनेन प्रत्यक्षीकुर्वन्। जडचेता विषयरागोपहतचित्तो जनोऽपि। कविः महाज्ञानी भवतीति भावः ॥७॥

शिवाभिर्घोराभिः शवनिवहमुण्डास्थिनिकरैः
परं सङ्कीर्णायां प्रकटित-चितायां हरवधूम्।
प्रविष्टां सन्तुष्टामुपरि सुरतेनातियुवतीं
सदा त्वां ध्यायन्ति क्वचिदपि न तेषां परिभवः ॥८॥

टीका

घोराभिः भीमाभिः। शिवाभिः शृगालैः। शवनिवहमुण्डास्थिनिकरैः शवसमूहानां कपालैः कङ्कालैश्च। परम् अत्यन्तम्। सङ्कीर्णायां सङ्कुलायाम्। प्रकटितचितायां प्रविष्टां कृतप्रवेशाम्, श्मशानवह्निमध्यस्थामित्यर्थः। उपरिसुरतेन सन्तुष्टां महाकालेन सह विपरीतविहारेण आनन्दिताम्। अतियुवती बाल्यवार्द्धक्याद्यसंस्पृष्टाम्। हरवधूं

कालमोहिनीम्। त्वां सदा ध्यायन्ति अविश्रामं चिन्तयन्ति। तेषां त्वत्साधकानाम्। क्वचिदपि इहामुत्र वा। परिभवः अनादरो न स्यादित्यर्थः ॥८॥

स्वरूपव्याख्या ॥८॥

घोराभिः भयङ्कराभिः अतीवदुर्द्धषिभिः। शिवाभिः शिवप्रकृतिभिः अपञ्चीकृतमहाभूतैरित्यर्थः। शवनिवहमुण्डास्थिनिकरैः अत्र अस्थिकङ्कालानां श्वेतवर्णत्वेन सत्त्वगुणं सूचितम्, अत एव महाप्रलये मृतानां जीवानां सत्त्वादिगुणसमूहैः। परं सङ्कीर्णायाम् अत्यन्तसङ्कुलायाम्, युक्तातायाम्। प्रकटितचितायां स्वप्रकाशरूपायां चिच्छक्तौ। प्रविष्टाम् अधिष्ठिताम्। उपरि सुरतेन सन्तुष्टां परमशिवमभिभूय स्वेच्छया सृष्टि-स्थिति-लयादि-कार्य्येषु रममाणम् अति युवतीं सदैव एकभावापन्नाम् अव्ययामित्यर्थः। हरवधूं तत्त्वज्ञानप्रदानेन जीवानां त्रितापं हरतीतिहरस्तस्य वधूः शक्तिस्तां जीवानां मुक्तिदात्रीमित्यर्थः। एवम्भूतां चिदानन्दमयीं त्वां ये साधकाः सदा ध्यायन्ति, अहरहः निश्चलचेतसा प्रत्यक्षीकुर्वन्ति। तेषां क्वचिदपि कस्यामपि योनौ। परिभव इत्थम्भूतं जन्म पुनर्ज्जन्म न भवति ते निर्वाणमोक्षं लभन्त इत्यर्थः ॥८॥

वदामस्ते किं वा जननि वयमुच्चैर्ज्जडधियो
न धाता नापीशो हरिरपि न ते वेत्ति परमम्।
तथापि त्वद्भक्तिः मुखरयति चास्माकममिते
तदेतत् क्षन्तव्यं न खलु पशुरोषः समुचितः ॥९॥

टीका

हे अमिते इयत्तारहिते। हे जननि त्रिजगताम् उत्पादमित्रि। ते तव परमं यथार्थतत्त्वम्। धाता ब्रह्मा न वेत्ति, न जानाति, ईशो रुद्रः अपि न जानाति, हरिः, विष्णुः अपि न वेत्ति। उच्चैः अत्यन्तं जडधियः मन्दबुद्धयो वयं ते तव सम्बन्धे किं वदामः। तथापि अज्ञत्वेऽपि त्वद्भक्तिस्तव स्तवनोद्देश्यकप्रवृत्तिः। अस्मान् मुखरयति स्तुतिकवचनेषु प्रेरयति। तत् तस्माद्धेतोः। अस्माकमेतत् तदयोग्यं कर्म्म। क्षन्तव्यं सहनीयम्। खलु निश्चितम्। पशुरोषः अज्ञानेषु कोपः, न समुचितः न योग्यो भवति ॥९॥

स्वरूपव्याख्या ॥९॥

हे अमिते गुणपरिच्छेदरहिते निर्गुणे इत्यर्थः। हे जननि हे ब्रह्मविष्णुरुद्रादीनामस्माकं च उत्पादयित्रि। अत एव ते तव परमं परमतत्त्वं धाता जीवानां कर्म्मानुसारेण जन्मादिविधानकर्त्ता ब्रह्मा न वेत्ति न जानाति। ईशः ऐशीशक्तिसम्पन्नरुद्रोऽपि न वेत्ति। हरिः जीवानां त्रितापहारको विष्णुरपि न वेत्ति। यतस्त्वं तेषामपि जननी। अतएव जगन्मातुस्तव स्वरूपतत्त्वस्य ज्ञानम् एतेषु कथं सम्भवति, स्वस्वजनन्याः जन्मकर्म्मादिवेदनं सन्तानानाम्

अतीव असम्भवमित्यर्थः । उच्चैः जडधियो वयं ते किं वदामः ? यतो ब्रह्मादयो देवेशास्तव स्वरूपं न जानान्ति, किञ्चिल्लौकिकमात्र ज्ञानवन्तो वयं तव स्वरूपकथने कथं समर्था भवाम् इति भावः । तथापि त्वद्भक्तिर्मुखरयति तव गुणकथने अयोग्यांस्तथापि तव विषयिणी भक्तिः किञ्चिद् गुणकथने अस्मान् प्रेरयति । तद् अस्माकमेतत् क्षन्तव्यं पशुरोषो न समुचितः, न योग्यो भवति ॥९॥

समन्तादापीनस्तनजघनधृग् यौवनवती-
रतासक्तः नक्तं यदि जपति भक्तस्तवे मनुम् ।
विवासात्वां ध्यायन् गलितचिकुरस्तस्य वशगाः
समस्ताः सिद्धौघा भुवि चिरतरं जीवति कविः ॥१०॥

टीका

हे मातः भक्तः वीराचाररतः तव साधकः । यदि नक्तं निशीथे । समन्तादापीनस्तन-जघनधृग्यौवनवतीरतासक्तः सर्वतः सम्यक् पीवरस्तनजघनधारिण्या युवत्या सह मैथुनरतः सन् आनन्दमयो भूत्वो । विवासा दिगम्बरः गलितचिकुरः मुक्तकेशः सन् । त्वां महाकालेन सह सदा सुरतानन्दनिरतां ध्यायन् स्वीयहृदि चिन्तयन् प्रत्यक्षीकुर्वन् । तव मनुं तव पूर्वोक्तमन्त्रराजं जपति । समस्ताः सिद्धौघाः सर्वार्थसिद्धयस्तस्य वीरसाधकस्य वशगा वशीभूता भवन्ति । स च कविः सन् भुवि पृथिव्यां चिरतरं सुदीर्घकालं व्याप्य जीवति ॥१०॥

स्वरूपव्याख्या ॥१०॥

अस्मिन् लययोगो वर्ण्यते । हे मातः ! जननि ! भक्तो दिव्याचाररतो योगी साधकः । यदि नक्तं निशायां ब्रह्मविद्यालक्षणायां सर्वभूतनिशायांप्रबुद्धः सन् इत्यर्थः । समन्तादापीन-स्तनजघनधृग्यौवनवतीरतासक्तः सर्वदिग्विदिक्स्थितानां जीवनाम् उत्पादयित्रा पालयित्र्या च नित्ययुवतीरूपया कुलकुण्डलिनीशक्त्या सह जीवात्मानं परमात्मनि लीनं कुर्वन् सन् । अत्र स्तनजघनधृक् इत्यनेन कुलकुण्डलिन्याः जगतां सृष्टिस्थितिकर्तृत्वं सूचितम् । विवासा विगतं वासो मायावरणो यस्य तथाभूतः प्रबुद्ध इत्यर्थः । गलितचिकुरः गलितं नष्टं चिकुरत्वं चापल्यं यस्य स निश्चलचित्तः सन् । त्वां परमशिवेन सह सामरस्यानन्दनिरतां त्वाम् । चिन्तयन् तव मन्त्रराजं मनसा जपति, स तत्त्वज्ञानी भूत्वा दिव्यौघसिद्धौघमान-वौघसदृशचिरजीवी भवतीत्यर्थः । समस्ताः सिद्धौघाः अत्र बहुवचनप्रयोगेन दिव्यसिद्ध-मानवौघानां ग्रहणं बोद्धव्यम् ॥१०॥

समाः सुस्थीभूतो जपति विपरीतां यदि सदा
विचिन्त्य त्वां ध्यायान्नतिशयमहाकालसुरताम् ।

तदा तस्य क्षौणीतलविहरमाणस्य विदुषः
कराम्भोजे वश्या पुरहरवधू सिद्धिनिवहाः ।।११।।

टीका स्वरूपव्याख्या च ।।११।।

हे पुरहरवधू ! हे त्रिपुरहरसुन्दरि ! सुस्थीभूतो निश्चलचित्तो यदि विपरीतां विपरीत-भावापन्नाम् अतिशयमहाकालसुरतां कामेश्वरमहाकालेन सह अत्यर्थं रतानन्दनिरताम्, सृष्ट्युन्मुखां त्वां ध्यायन् सन् तव मन्त्रार्थं चिन्तयन् । समाः संवत्सरं व्याप्य सदा सर्वदा विचिन्त्य त्वां ध्यायन् जपति तव मन्त्रजपं करोति, तदा तर्हि क्षौणीतलविहरमाणस्य भूतले सुखेन निवसतो विदुषः पण्डितस्य तस्य कराम्भोजे करकमलतले सिद्धिनिवहाः श्रीविद्याया इच्छासिद्ध्यादि शक्तिसमूहाः । वश्या वशीभूता भवन्तीत्यर्थः । महासिद्धिनिवहा इति पाठे सालोक्य-सारूप्य-सायुज्य-निर्वाणारूपास्तस्य आयत्ता भवन्तीत्यर्थः ।।११।।

प्रसूते संसारं जननि भवती पालयति च
समस्तं क्षित्यादि प्रलयसमये संहरति च ।
अतस्त्वं धातासि त्रिभुवनपतिः श्रीपतिरपि
महेशोऽपि प्रायः सकलमपि किं स्तौमि भवतीम् ।।१२।।

टीका स्वरूपव्याख्या च

हे जननि ! जगतां उत्पादयित्रि ! संसारं जगत्प्रपञ्चं प्रसूते भवती जनयति । अतस्त्वं धाता ब्रह्मा तस्य सृष्टिशक्तिरित्यर्थः । भवती जगतीं पालयति च बिभर्त्ति च, अतः अस्माद्धेतोस्त्वं त्रिभुवनपतिः श्रीपतिरपि त्रिलोकीश्वरः विष्णुर्भवसि, तस्य जगत्पालनकारिणी वैष्णवी शक्तिस्त्वमसीत्यर्थः। प्रलयसमये जगत्संहारसमये। समस्तं क्षित्यादि पञ्चमहाभूतात्मकं जगत् संहरति स्वीयकारणदेहे लीनं करोति । अतस्त्वं महेशोऽपि रुद्रश्च भवसि त्वं संहारशक्तिरिति भावः । सकलमपि स्थावरजङ्गमात्मकजगतो निमित्तकारणम् उपादानकारणञ्चासीति भावः । अतो भवतीं जगदेककारणभूताम् अद्वितीयां त्वाम् । किं स्तौमि तव स्वरूपाख्यानं किं करोमि। त्वमेव वाचातीता इति भावः। उक्तञ्च **त्रिपुटास्तोत्रे–**

क्षितिस्त्वं विधाता जगत्सृष्टिकर्त्री
त्वमापोऽपि विष्णुः जगत्पलिका च ।
त्वमग्निस्तु रुद्रो जगत्क्षोभकर्त्री
त्वमैश्वर्य्यरूपा वियद्वायुरूपा ।

तथा च स्तोत्रान्तरे–

उत्पत्तिस्थितिसंहृतीर्घटयितुं धत्ते त्रिरूपां तनुम् ।
त्रैगुण्याज्जगतस्त्वदीयविकृतिर्ब्रह्माच्युतः शूलभृत् ।।१२।।

अनेके सेवन्ते भवदधिकगीर्वाणनिवहान्
विमूढास्ते मातः किमपि न हि जानन्ति परमम् ।
समाराध्यामाद्यां हरिहरविरिञ्चादिविबुधैः
प्रपन्नोऽस्मि स्वैरं रतिरसमहानन्दनिरताम् ।।१३।।

टीका स्वरूपव्याख्या च ।।१३।।

हे मातः ! अनेके बहवो जनाः । भवदधिकगीर्वाणनिवहान् त्वदतिरिक्तदेवसमूहान् सेवन्ते आराधयन्ति, विमूढाः विचारशून्यास्ते जनाः किमपि परमं किञ्चिदपि परमतत्त्वं न हि जानन्ति, न विदन्ति हरिहरविरिञ्चादिविबुधैः ब्रह्मविष्णुरुद्रादिसुरेशैः । समाराध्यं सदा उपास्याम्, आद्यां जगतः अदिकारणभूतां रतिरसमहानन्दनिरतां महाकालेन सह रतिर्विपरीतरमणं तथा रसं मद्यपानं ताभ्याम् उत्पन्नं यन्महानन्दं तस्मिन् निरताम् । त्वां ब्रह्माद्यैराराध्यां चिदानन्दरूपिणीं भवतीं स्वैरम् अतिशयेन। प्रपन्नोऽस्मि शरणागतोऽस्मि ॥१३॥

धरित्री कीलालं शुचिरपि समीरोऽपि गगनं
त्वमेका कल्याणी गिरिशरमणी कालि सकलम् ।
स्तुतिः का ते मातर्निजकरूणया मामगतिकं
प्रसन्ना त्वं भूया भवमनु न भूयान्मम जनुः ।।१४।।

टीका स्वरूपव्याख्या च ।।१४।।

हे कालि कालभयनिवारिणि । त्वं धरित्री क्षितिः, कीलालं जलम्, शुचिः अग्निः, अपि समीरः वायुः, अपि गगनम् आकाशम्, एका अद्वितीय कल्याणी निर्वाणमोक्षदानेन जीवानां मङ्गलविधायिनी । गिरिशरमणी शिवानी गिरौ कूटे शेते इति गिरिशः कूटस्थब्रह्म, तस्य रमणी ह्लादिनीशक्तिः। त्वं निर्विकरापि स्वकीयाघटन-घटनपटीयसीमायया क्षित्यादिचतुर्विंशतितत्त्वरूपिणीत्यर्थः । सकलं सर्वं चराचरञ्च सर्वं खल्विदं ब्रह्म इति श्रुतिः 'सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते' इति चण्डी। हे मातः ते तव स्तुतिः का सर्वस्वरूपायास्तव स्तुतिर्न सम्भवतीति भावः । त्वं निजकरुणया स्वीयासाधारणकृपया । अगतिकं साधनहीनत्वादनुपायम् । मां प्रति प्रसन्ना भूयाः प्रसीद भवमनु संसारे इत्यर्थः, मम जनुः जन्म न भूयात् न भवतु मां स्वीयाभयपदे लीनं कुरु इत्यर्थः ॥१४॥

श्मशानस्थः सुस्थो गलितचिकुरो दिक्पटधरः
सहस्रंत्वर्काणां निजगलितवीर्येण कुसुमम् ।
जपंस्त्वत्प्रत्येकं मनुमपि तव ध्याननिरतो
महाकालि स्वैरं स भवति धरित्रीपरिवृढः ।।१५।।

टीका

हे महाकालि महाकालशक्ते, तु पुन:, यो जन: श्मशानस्थ: प्रेतभूमौ अवस्थित: सुस्थ: स्थिरचित: गलितचिकुर: मुक्तकेश: दिक्पटधर: दिगम्बर: सन् तव ध्याननिरत: त्वदीयं 'मेघाङ्गीं विगताम्बराम्' इत्यादि स्थूलरूपं चिन्तयन् त्वत् तव मनुमपि मन्त्रराज्ञीं च जपन् उच्चारयन् निजगलितवीर्येण स्वीयस्खलितशुक्रेण तदनुलिप्तम् इत्यर्थ:। अर्काणां सूर्यपुष्पाणाम् आकन्द इति ख्यातानाम्। सहस्रकुसुमं दशशतसंख्यानि पुष्पाणि प्रत्येकम् एकैकं त्वामुद्दिश्य ददातीति शेष: स साधक: स्वैरम् अनायासेन धरित्रीपरिवृढो भूपतिर्भवति ॥१५॥

स्वरूपव्याख्या ।।१५।।

तु पुन: दिव्यानां पक्षे। हे महाकालि परंब्रह्मरूपिणि यो जन: श्मशानस्थ: महाप्रलयसमये सर्वभूतानि शवरूपेण लीयन्ते यस्मिन् तत श्मशानं परब्रह्म तस्मिन् आसक्ताचित्त: ब्रह्मपरायण इत्यर्थ:। सुस्थ: स्थिरचित्त: दिक्पटधर: मायावरणरहित: निर्विकारचित:। तव ध्याननिरत: त्वदीयसच्चिदानन्दरूपं चिन्तयन् इत्यर्थ:। उक्तञ्च **रुद्रयामले–**

चिद्रूपां ज्ञाननिलयां चैतन्यानन्दविग्रहाम्।
कोटिसौदामिनीभासां सर्वतत्त्वस्वरूपिणीम्।
आश्रित्य प्रजपेम्मन्त्रं कुलमार्गाश्रयो नर: ।।

तव मनुमपि जपन् त्वदीयमन्त्रराजं मनसा उच्चारयन् सन्। निजगलितवीर्येण सहस्रारकमलात् स्वाभाविकक्षरितं यद् अमृतं तेन सह। अर्काणां सहस्रं कुसुमं ब्रह्मरन्ध्रादिवस्थितम्। आदित्यारूपचित्तोद्भवचित्तवृत्तिरूपाणि दयाज्ञानक्षमादिरूपभाव-पुष्पाणि। प्रत्येकम् एकैकं त्वामुद्दिश्य ददाति, मानसोपचारविधिना चिदग्नौ तुभ्यं समर्पयति। स दिव्यसाधक: स्वच्छन्देन धरित्रीपरिवृढ: धरित्र्या: पृथिव्या: पार्थिव देहस्य इन्द्रियादिवृत्तीनाम् अधिपो भूत्वा सहजावस्थां प्राप्नोतीति भाव: ॥१५॥

गृहे सम्मार्ज्जन्या परिगलितवीर्य्यं हि चिकुरं
समूलं मध्याह्ने वितरति चितायां कुजदिने।
समुच्चार्य्य प्रेम्णा मनुमपि सकृत् कालि सततं
गजारूढ़ो याति क्षितिपरिवृढ: सत्कविवर: ।।१६।।

टीका

हे कालि कालनाशिनि। यो जनो वीरसाधक:। गृहे सम्मार्ज्जन्या परिगलितवीर्य्यम् अत्र गृहे मदनागारे सम्मार्ज्जनी लिङ्गम्, स्वशक्त्या रमणजनितनि:सृतं शुक्रम्। तथा समूलं

चिकुरं मूलेन सह उत्पाटितं केशञ्च । कुजदिने मङ्गलवासरे मध्याह्ने दिनमध्यभागे अर्द्धरात्रे वा । प्रेम्णा भक्त्या तव मनु ते मन्त्रं समुच्चार्य चितायां श्मशाने सकृदपि एकवारमपि वितरति, तुभ्यं निवेदयति, हि निश्चितं स जन: सत्कविवर: सत्कविश्रेष्ठ: क्षितिपरिवृढ: भूपतिश्च सन् सततं सर्वदा गजारूढा: हस्त्यारूढ: सन् याति सर्वत्र विचरतीत्यर्थ: ॥१६॥

स्वरूपव्याख्या ।।१६।।

हे कालि कालभयनिवारिणि। यो जन: दिव्याचाररत: साधक:। गृहे सहस्रदलकमलरूपब्रह्मसदने। सम्मार्ज्जन्या परिगलितवीर्य्यं परमशिवेन कुलकुण्डलिन्या रमणोद्भूतं वीर्य्यामृतम्। समूलं चिकुरं चाञ्चल्यादिवृत्तिसहितं मन:। कुजदिने मङ्गलवासरे मध्याह्ने द्विप्रहरे रात्रौ दिवसे वा। प्रेम्णा परया भक्त्या तव मनुं मन्त्रं समुच्चार्य सकृदपि एकवारमपि, चितायां चिद्रूपायां त्वयि वितरति, विलीनं करोति, निर्बीजसमाधिं करोतीति यावत्। स भुक्तिं मुक्तिं च लभत इत्यर्थ: ॥१६॥

स्वपुष्पैराकीर्णं कुसुमधनुषो मन्दिरमहो
पुरो ध्यायन् यदि जपति भक्तस्तव मनुम् ।
स गन्धर्वश्रेणीपतिरपि कवित्वामृतनदी–
नदीन: पर्य्यन्ते परमपदलीन: प्रभवति ।।१७।।

टीका

हे मात:। भक्त: वीरसाधक:। यदि स्वपुष्पैराकीर्णं स्वयम्भुकुसुमै: व्याप्तं कुसुमधनुषो मन्दिर योनिं पुर: अग्रे ध्यायन् पुन: ध्यायन् पुनश्चिन्तयन्। तव मनुं अयुतसंख्यकमन्त्रं जपति, अहो आश्चर्यं स गन्धर्व्वश्रेणीपति: गायकश्रेष्ठ: अपि च कवित्वामृतनदीनदीन: कवित्वामृतस्य नद्यस्तासां नदीन: समुद्र: अशेषकवित्वाधार:, पर्य्यन्ते देहावसाने परमपदलीन: प्रभवति तव उत्कृष्टपदे विलीन: सन् सृष्टियादिकार्य्ये समर्थो भवतीति भाव: ॥१०॥

स्वरूपव्याख्या ।।१७।।

अस्मिन् योनिमुद्रासाधन वर्ण्यते। उक्तञ्च **शाक्तागमे**–

मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति य: ।
लक्षकोटिजपेनापि तस्य विद्या न सिद्ध्यति ।।

हे मात:। भक्त दिव्याचाररत: योगी साधक:। यदि स्वपुष्पैराकीर्णं स्वणम्भूलिङ्गरूपकुसुमेनाधिष्ठितम्। कुसुमधनुषो मन्दिरं मूलाधारस्थितत्रिकोणमण्डलम्, हत्द्मस्थितत्रिकोमण्डलं वा। उक्तञ्च **शिवसंहितायाम्**–

तस्मिन्ना धारपाथोजे कर्णिकायां सुशोभना।
त्रिकोणा वर्त्तते योनिः सर्वतन्त्रेषु गोपिता।।

पुनस्तत्रैव चतुर्थपटले–

ब्रह्मयोनिगतं ध्यात्वा कामं बन्धूकसन्निभम्।
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्।।
तस्योर्ध्वे तु शिखा सूक्ष्मा चिद्रूपा परमा कला।
तया पिहितमात्मानमेकीभूतं विचिन्तयेत्।

तथा च तारा रहस्ये

स्वकीयहृदये ध्यायेद् योगिमण्डलमुत्तमम्।
रजोभिश्च समोपेतं त्रिकोणं सर्ववर्णकम्।।

पुरो निजाग्रे ध्यायन् चिन्तयन् ध्यायन् तव मन्त्रार्थघटितरूपञ्च तस्मिन् भावयन्। उक्तञ्च **भूतशुद्धितन्त्रे–**

यस्य यस्य च मन्त्रस्य उद्दिष्टा या च देवता।
चिन्तयित्वा तदाकारं मनसा जपमाचरेत्।।

कुलार्णवे च–

तन्निष्ठस्तद्गतप्राणः तच्चित्तस्तत्परायणः।
तत्पदार्थानुसन्धानं कुर्व्वन् मन्त्रं जपेत् प्रिये!।।

तव मनुं तव मन्त्रराजं जपति शनैः शनैः मनसा जपति। उक्तञ्च तत्रैव शनैः शनैरविस्पष्टं न द्रुतं न विलम्बितम्। स गन्धर्वश्रेणीपतिः गायकश्रेष्ठः— 'गानात् परतंर न हि' इति दर्शनात् अथवा चित्ररथगन्धर्वराज इव। अपि च कवित्वामृतनदीनदीनः महाकविकालिदास इव भवति, अपि च पर्य्यन्ते देहावसाने। परमपदलीनः प्रभवति सच्चिदानन्दरूपायां त्वयि विलीनः सन् निर्वाणपदं लभत इति भावः। योनिमुद्रासाधन फलं **शिवसंहितायाम्–**

अभ्यासाज्जायते सिद्धिरभ्यासान्मोक्षमाप्नुयात् इति ॥१०॥

त्रिपञ्चारे पीठे शवशिवहृदि स्मरेवदनां
महाकालेनोच्चैर्म्मदनरसलावण्यनिरताम्।
समासक्तो नक्तं स्वयमपि रतनानन्दनिरतो
जनो यो ध्यायेत्त्वामयि जननि स स्यात् स्मरहरः।।१८।।

टीका

अयि जननि हे मातः। यो जनः साधकः नक्तं रात्रौ समासक्तः त्वयि आसक्तचित्तः स्वयम् आत्मना अपि रतानन्दनिरतः सुरतानन्दयुक्तः सन्। त्रिपञ्चारे पीठे पञ्चदशकोणयुक्ते यन्त्रे शवशिवहृदि शवरूपसदाशिव हृदये। स्मेरवदनां स्मितमुखीं महाकालेन परमशिवेन सह। उच्चैः अत्यन्तं मदनरसलावण्यनिरतां विपरीत रितिमाधुर्य्यासक्ताम्। त्वां ध्यायेत् चिन्तयेत्, स साधकः स्मरहरः स्यात्, साक्ष्ज्ञात् शिवो भवेदित्यर्थः ॥१८॥

स्वरूपव्याख्या ॥१८॥

अयि जननि अस्माकम् उत्पादपित्रि। यो जनः नक्तम् अर्द्धरात्रौ। उक्तञ्च–

महानिशायां ब्राह्मे वा मुहूर्त्ते ध्यानतत्परः।
तद्रूपं परमानन्दं तदा पश्यति निश्चितम्॥

समासक्तः त्वयि एकाग्रचित्तः स्वयम् आत्मना अपि रतानन्दनिरतः योनिमुद्राम् अवलम्ब्य स्वयं शक्तिमयो भूत्वा परात्मना सह लयरूपरतानन्दासक्तः सन् इत्यर्थः। त्रिपञ्चारे पीठे अविद्यारूपवृत्तवेष्टिते, क्षित्याद्यष्टप्रकृतिरूपाष्टदलयुक्ते, पञ्चज्ञानेन्द्रिय-पञ्चकर्मेन्द्रिय-पञ्चप्राणरूपत्रिकोणविशिष्टे शुद्धसत्त्वात्मिकामायाप्रतिबिम्बितचैतन्यरूपन्द्वात्मक-बीजभूषिते, क्षित्यादिपञ्चभूतात्मकभूपुरान्विते स्वदेहयन्त्रे इत्यर्थः। शवशिवहृदि शववद्निष्क्रियस्य शिवस्य हृदये स्वकीयनिर्गुण ब्रह्मपदे स्थिता सतीइच्छाक्रियाज्ञानयुक्तया मायया शिवशक्तिविभागेन चणकाकारवद् द्विधा भूत्वा इत्यर्थः। महाकालेनोच्चैर्म्मदन-रसलावण्यनिरतां सगुणब्रह्मपरमशिवेन सह विपरीतभावेन नियतयुक्ताम्। स्मेरवदनां सदानन्दमयीं त्वां ब्रह्मरूपिणीं यो ध्यायेत्, स्वीयदेहयन्त्रे चिदाभासरूपेण स्थितत्वात् स्वात्माभेदेन त्वां चिन्तयेत्।

उक्तञ्च **देवीमाहात्म्ये–**

या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता।

गन्धर्वतन्त्रे च—

निर्लेप निर्गुणं शुद्धं स्वात्मानं त्रिपुरामयम्।
आत्माभेदेन सञ्चिन्त्य याति तन्मयतां नरः॥

स स्मरहरः स्याद् अद्वैतभावसम्पन्नः साधकः परमात्मनि त्वयि लीनो भूत्वा कैवल्यपदं लभेदित्यर्थः ॥१८॥

सलोमास्थि स्वैरं पललमपि मार्ज्जारमसिते
परञ्चोष्ट्रं मैषं नरमहिषयोश्छागमपि वा।

बलिं ते पूजायामयि वितरतां मर्त्त्यवसतां
सतां सिद्धिः सर्वा प्रतिपदमपूर्वा प्रभवति ।।१९।।

टीका

अयि असिते ! हे कालिके। ते तव पूजायां नैमित्तिकार्च्चनायाम्। मार्ज्जारं मार्ज्जारसम्बन्धि औष्ट्रम उष्ट्रसम्बन्धि मैषं मेषसम्बन्धि नरमहिषयोः नरमहिषसम्बन्धि अपि वा अथवा छागं छागसम्बन्धि सलोमास्थि लोमास्थिसहितं परम् उत्कृष्टं पललं मासं बलिं पूजोपहारं स्वैरं स्वच्छन्दं वितरतां ददतां साधकानां प्रतिपदं पदे पदे अपूर्वा आश्चर्य्या सर्वा सर्वविधा सिद्धिः कर्मसफलता प्रभवति प्रकर्षेण सम्पद्यते ॥१९॥

स्वरूपव्याख्या ।।१९।।

अयि असिते न सिता बद्धा असिता, नित्यमुक्तस्वभावा। ते तव पूजायाम् अन्तर्यागविधो मानसपूजायामित्यर्थः। मार्ज्जारादिसम्बन्धि सलोमास्थि पललं सर्वावयविसमन्वितान् षड्रिपुरूपमार्ज्जारादिपशून् इत्यर्थः। अत्र छागः कामः, महिषः क्रोधः, मार्ज्जारः लोभः, नरः मदः मेषः मोहः, उष्ट्रः मात्सर्य्यम् इति गुणसाम्याद् बोध्यम्। बलिं वितरतां कामादीनां विनाशकामनया चिद्रूपायां त्वयि पूजोपहाररूपेण ददताम्। सतां मर्त्त्यवसतां साधुशीलानां जनानाम्। प्रतिपदं पदे पदे यथाक्रममित्यर्थः। अपूर्वा सर्वोत्कृष्टा सर्वा सिद्धिः पञ्चविधा मुक्तिः प्रभवति प्रकर्षेण सम्पद्यते, एवंविधाः साधकाः सालोक्यादिका मुक्तीः लभन्त इत्यर्थः ॥१९॥

वशी लक्षं मन्त्रं प्रजपति हविष्याशनरतो
दिवा मातर्युष्मच्चरणयुगलध्याननिपुणः।
परं नक्तं नग्नो निधुवनविनोदेन च मनुं
जपेल्लक्षं स स्यात् स्मरहरसमानः क्षितितले ।।२०।।

टीका

हे मातः ! यो जनः वशी जितेन्द्रियः। हविष्याशनरतः जपान्ते हविष्याशी सन्। दिवा दिवसे युष्मच्चरणयुगलध्याननिपुणश्च पादपद्मद्वयचिन्तायाम् एकान्तनिरतः सन् लक्षं लक्षसंख्यकम् प्रजपति परं पुनश्च नक्तं रजन्यां नग्नो विवस्त्रः निधुवनविनोदेन च सुरतप्रमोदेन विशिष्टः सन्। लक्षं मनुं लक्षसंख्यकमन्त्रं जपेत्, स क्षितितले पृथिव्यां स्मरहरसमानः शिवतुल्यः स्याद् भवेत्। 'सम्यक्' इति पाठे तु यथोक्तविधानेन सेतुमहासेतुकुल्लुकादिकं जप्त्वा इत्यर्थः ॥२०॥

स्वरूपव्याख्या ।।२०।।

यो जितेन्द्रियः हविष्याशी साधकः दिवसे पश्चाचारेण तव पादपद्मचिन्तायाम्

एकान्तासक्ता सन् लक्षसंख्यकं तव मन्त्रं प्रजपति पुनः रजन्यां कुलाचारेण नग्नः मायावरणरहितः निर्विकारः सन्नित्यर्थः । निधुवनविनोदेन च विधुवनविनोदः रमणं तेन विशिष्टः सन् परशक्त्यात्ममिथुनसंयोगानन्दरतः सन् इत्यर्थः । तव लक्षसंख्यकं मन्त्रं जपेत्, स पृथिव्यां स्मरहरसमानः शिवसदृशः जीवन्मुक्तो भवेदित्यर्थः ॥२०॥

इदं स्तोत्रं मातस्तव मनुसमुद्धारणजनुः
स्वरूपाख्यं पादाम्बुजयुगलपूजाविधियुतम् ।
निशार्द्धं वा पूजासमयमधि वा यस्तु पठति
प्रलापस्तस्यापि प्रसरति कवित्वामृतरसः ।।२१।।

टीका

हे मातः ! यस्तु यो जनः पुनः । तव मनुसमुद्धारणजनुः तव मनूनां मन्त्राणां समुद्धारणे सम्यगुद्धारणे जनुः उत्पत्तिर्यस्य तत् । पादाम्बुजयुगलपूजाविधियुतं तव श्रीपादपद्मस्य पूजानियमसहितम् । स्वरूपाख्यं तव स्वरूपस्य स्वस्य आत्मनः रूपं तस्य, निजनिगुर्णसगुणभेदेन स्थूलसूक्ष्मकारणतुरीयात्मकध्यानस्य आख्या कथनं यस्मिन् तत् । इदं स्तोत्रं निशार्द्धं मध्यरात्रं पूजासमयं वा अधिकृत्य पठति उच्चैरुदीरयति । तस्य प्रलापः अनर्थकवाक्यमपि । कवित्वामृतरसः कवित्वरूपसुधास्वादपूर्णः प्रसरति निःसरति तस्य गद्यपद्यमयी वाणी भवतीत्यर्थः ॥२१॥

कुरङ्गाक्षीवृन्दं तमनुसरति प्रेमतरलं
वशस्तस्य क्षौणीपतिरपि कुबेरप्रतिनिधिः ।
रिपुः कारागारं कलयति च तं केलिकलया
चिरं जीवन्मुक्तः प्रभवति स भक्तः प्रतिजनुः ।।२२।।

इति श्रीमन्महाकाल विरचितं श्रीमद्दक्षिणाकालिकायाः स्वरूपाख्यं स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

टीका स्वरूपव्याख्या च ।।२२।।

कुरङ्गाक्षीवृन्दं मृगनयनारमणीसमूहः । प्रेमतरलम् अनुरागचञ्चलं तं साधकम् अनुसरति अनुगच्छतिः, क्षौणीपतिः क्षितीश्वरः अपि तस्य वशः तद्वशीभूतः कुबेरप्रतिनिधिः स कुबेरतुल्यः धनवान् भवति । रिपुः तस्य शत्रुः तम् एतत्स्तोत्रपाठकं कारागारं बन्धनागारवद् भीषणम् । कलयति गणयति सः प्रतिजनुः जन्मनि जन्मनि भक्तः त्वयि भक्तिमान् सन् चिरं बहुकालं व्याप्ये केलिकलया क्रीड़ाकौतुकेन चिरं दीर्घकालं व्याप्य जीवन् प्राणान् धारयन् । मुक्तः देहान्ते मुक्तिं प्राप्तः सन् प्रतिजनुः प्रतिनिवृत्तं जनुः जन्म यस्य स पुनर्जन्मरहितो भवति स ब्रह्म निर्वाणं प्राप्नोतीति भावः ॥२२॥

या काली कालकान्ता कलयति कलुषं कीर्त्तिता कालहन्त्री
या ताराताररूपा कमलजमहिता ब्रह्मविद्या परा च ।
श्रीविद्या मोक्षपन्था हरिहरनमिता साधकानां हितार्था
सा देवी सर्वरूपा जनयतु जननी स्तावकानां शुभानि ।।
येनैव स्तवराजेन महाकालेन वर्णितम् ।
कालिकायाः स्वरूपञ्च भक्तानन्दविधायकम् ।।
स्तोत्रं यत् कर्पूराद्यं हि वासनोपरिषेवितम् ।
व्याख्यान्तरेण भणितं सरलार्थविशोभितम् ।।
मुनिनेत्रभूधरेन्दुशाके माने मया कृता ।
साधकानां विबोधाय विमलानन्दस्वामिना ।।
व्याख्येयं स्वरूपार्था च विमलानन्ददायिनी ।
पठतामपि भक्तानां कण्ठे सदा विराजतु ।।
कोटालिपाडनगरे शुनकान्ववाये
गोष्ठीपतिर्हरिहरो महतां गरिष्ठः ।
कालीप्रसाद इति तत्कुलजो महात्मा
तस्यात्मजो रघुमणिर्विहित क्रियावान् ।।
तत्पुत्रो विमलानन्दस्वामी तच्चरणानुगः ।
सतीशचन्द्ररायाख्यः चौधुरीपदभूषितः ।।
कर्पूरादिस्तोत्रटीका तत्कृता कृतिनां मुदे ।
वर्त्ततां कालिकाप्रीत्यै चापि सञ्जायतामियम् ।

इति श्रीमद्दक्षिणकालिकायाः स्वरूपाख्यस्तोत्रस्य टीका विमलानन्ददायिनी स्वरूपव्याख्या च समाप्ता ।।

ॐ तत् सत् ॐ

श्री दक्षिण कालिकायाः त्रैलोक्यमोहन कवचम्

श्रीदेव्युवाच

देवदेव ! महादेव ! संसारप्रीतिकारक !।
सर्वविद्येश्वरी विद्याकवचं कथय ध्रुवम् ।।१।।

श्री शिव उवाच

शृणु देवि ! महाविद्यां सर्वविद्योत्तमोत्तमाम् ।
सर्वेश्वरीं महाविद्यां सर्वदेवप्रपूजिताम् ।।२।।
यस्याः कटाक्षमात्रेण त्रैलोक्यविजयी हरः ।
बभूव कमलानाथो विष्णुर्ब्रह्मा प्रजापतिः ।।३।।
शची स्वामी देवनाथो यमोऽपि यमनायकः ।
त्रैलोक्यपाविनी गङ्गा कमला श्रीहरिप्रिया ।।४।।
दिनस्वामी रविश्चन्द्रो निशापतिग्रहेश्वरः ।
जलाधिपश्च वरुणो कुबेरोऽपि धनेश्वरः ।।५।।
अव्याहतगतिर्वायुर्गजास्यो विघ्ननाशकः ।
वागीश्वरः सुराचार्यो दैत्याचार्यो महाकविः ।।६।।
एवं हि सर्वदेवाऽपि सर्वसिद्धीश्वरो हरः ।
तस्यास्तु कवचं पुण्यं मन्त्ररूपं विबोधय ।।७।।

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीत्रैलोक्यमोहनं नामश्रीदक्षिणाकालिकाकवचस्य श्रीमहाकालभैरवः ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः, श्रीदक्षिणकालिकादेवता, धर्मार्थकाममोक्षार्थे पाठे विनियोगः ।

ऋष्यादि न्यास

श्रीमहाकाल भैरवाय नमः शिरसि ।
अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे ।
श्रीदक्षिणाकालिकादेवतायै नमः हृदि ।
धर्मार्थकाममोक्षार्थे पाठे विनियोगाय नमः अञ्जलौ ।
ललाटं मम पातु क्रीं हरेणाराधिता सदा ।
नेत्रं मे रक्षतु क्रीं क्रीं विष्णुना सेविता पुरा ।।८।।

क्रीं हूँ ह्रीं नासिकां पातु ब्रह्मणा सेविता पुरा।
क्रीं क्रीं क्रीं वदनं पातु शक्रेणाराधिता सदा।।९।।
क्रीं स्वाहा श्रवणं पातु यमेनैव प्रपूजिता।
ह्रीं हूं क्रीं स्वाहा रसनां, गङ्गया सेविताऽवतु।।१०।।
दन्तपंक्तिं सदा पातु ॐ ह्रीं हूं ह्रीं स्वाहा मम।
भुक्तिमुक्तिप्रदा देवी श्रिया नित्यं सुसेविता।।११।।
ओष्ठाधरं सदा पातु क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं मम।
सूर्येणाराधिता विद्या सर्वसिद्धिप्रदायिनी।।१२।।
कण्ठं पातु महाकाली ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा।
चन्द्रेणाराधिता विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा।।१३।।
हस्तयुग्मं सदा पातु क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।
सौख्यदा मोक्षदा काली वरूणेनैव सेविता।।१४।।
क्रीं क्रीं हूं ह्रीं फट् स्वाहा च, हृदयं पातु सर्वदा।
सर्वसम्पत्प्रदा, काली कुबेरेणोपसेविता।।१५।।
ऐं ह्रीं ॐ हूं हूं फट् स्वाहा स्तनद्वन्द्वं सदाऽवतु।
वायुनोपासिता काली यशोबलसुखप्रदा।।१।।
क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं फट् च, स्वाहा पातु जठरं मे।
सर्वसिद्धिप्रदा काली, गणनाथेन सेविता।।१७।।
क्रीं दक्षिणे कालिके ह्रीं स्वाहा नाभिं ममाऽवतु।
शुद्धिबुद्धिप्रदा काली गुरुणा सेविता ध्रुवम्।।१८।।
लिङ्गं पातु सदा हूँ हूँ दक्षिणे कालिके ह्रीं ह्रीं।
शुक्रेणाराधिता काली, त्रैलोक्यजयदायिनी।।१९।।
पात्वण्डकोशं फट् क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा।
धर्मेण सेविता विद्या, सर्वरत्नप्रदायिनी।।२०।।
पातु गुदं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके ह्रीं ह्रीं स्वाहा।
द्वादशी च महाविद्या, राघवेणार्चिता सदा।।२१।।
जानुनी पातु क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके ह्रीं स्वाहा।
एकादशी महाविद्या, मेघनादेन सेविता।।२२।।
क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके हूं ह्रीं स्वाहा जङ्घेऽवतु।
द्वादशी च महाविद्या प्रह्लादेनोपसेविता।।२३।।
क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूं ह्रीं स्वाहाऽवतु।
चतुर्दशी पादयुग्म गुरुदेवेन सेविता।।२४।।

क्रीं हूँ ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूँ ह्रीं तथांगुलीः ।
पातु मे द्वादशी काली, क्षेत्रपालेन सेविता ।।२५।।
ॐ क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा च ।
नखान् सर्वान् सदा पातु पञ्चदशी ग्रहेश्वरि ।।२६।।
क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं ।
मम पृष्ठं सदा पातु षोडशी भैरवेश्वरी ।।२७।।
क्रीं क्रीं क्रीं पातु रोमाणि हूँ हूँ रक्ष चर्म मम ।
मांसं पातु सदा ह्रीं ह्रीं रक्तं दक्षिणे कालिके ।।२८।।
क्रीं क्रीं क्रीं पातु मे अस्थिं मज्जां हूँ हूँ सदाऽवतु ।
ह्रीं ह्रीं शुक्रं सदा पातु रन्ध्रं स्वाहा सदाऽवतु ।।२९।।
द्वाविंशत्यक्षरी विद्या सर्वलोकेषु दुर्लभा ।
महाविद्येश्वरी विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।।३०।।
सूर्यचन्द्रेण सौम्येन रामेण जमदग्निना ।
जयन्तेन सुनन्देन बलिना नारदेन च ।।३१।।
विभीषणेन वाणेन भृगुणा कश्यपेन च ।
कपीन्द्रेण वशिष्ठेन धौम्येन त्रिपुरेण च ।।३२।।
सर्वैराधिता विद्या तु जरामृत्युविनाशिनी ।
पूर्णविद्या महाकाली विद्याराज्ञी प्रकीर्तिताः ।।३३।।
काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ।
विप्रचित्ता तथोग्रोग्र प्रभा दीप्ता घनत्विषा ।।३४।।
नीला घना बलाका च मात्रा मुद्रा मिताऽपि च ।
हूँ हूँङ्कारट्टहासेन सर्वत्र पातु मां सदा ।।३५।।
ब्राह्मी पातु मां पूर्वे आग्नेय्यां नारायणी तथा ।
माहेश्वरी पातु याम्ये चामुण्डा नैर्ऋते सदा ।।३६।।
कौमारी वारुणे पातु वायव्ये चापराजिता ।
वाराही चोत्तरे पातु ईशान्यां नारसिंहिका ।।३७।।
अधः ऊर्ध्वं पातु काली, पार्श्वे पृष्ठे च कालिका ।
जले स्थले च पाताले शयने भोजने गृहे ।।३८।।
राजस्थाने कानने च विवादे अरण्ये रणे ।
पर्वते प्रान्तरे शून्ये, पातु मां कालिका सदा ।।३९।।
शवासने श्मशाने च शून्यागारे चतुष्पथे ।
यत्र यत्र भये प्राप्त सर्वत्र पातु कालिका ।।४०।।

नक्षत्रतिथिवारेषु योगे करणयोरपि ।
मासे पक्षे वत्सरे च दण्डे यामे निमेषके ।।४१।।
दिवारात्रौ सदा पातु सन्ध्ययोः पातु कालिका ।
सर्वत्र कालिका पातु, कालिका पातु सर्वदा ।।४२।।
सर्वकामप्रदं दिव्यं कवचं सर्वसिद्धिदम्
मन्त्रज्ञानप्रदं दिव्यं कवचं शिवनिर्मितम् ।।४३।।
त्रैलोक्यमोहनं दिव्यं देवानामपि दुर्लभम् ।
यः पठेत् साधकः श्रेष्ठः सर्वकर्म जयान्वितः ।।४४।।
सर्वपापं परित्यज्य स गच्छेच्छिवमालयम् ।
सर्वधर्मे भवेद्धर्मी सर्वविद्येश्वरेश्वरः ।।४५।।
कुबेर इव वित्ताढ्यो सुवाणी कोकिलस्वरः ।
कवित्वे व्याससदृशो गणेश्वरः श्रुतिधरः ।।४६।।
कामदेवसमो रूपी वायुतुल्यपराक्रमः ।
महेश इव योगीन्द्रः ऐश्वर्य्ये सुरनायकः ।।४७।।
बृहस्पतिसमो धीमान् जरामृत्युविवर्जितः ।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च स्त्रियाणां सकलप्रियः ।।४८।।
अव्याहतगतिः शान्तो भार्यापुत्रसमन्वितः ।
यद्‌गेहे भजते नित्यं कवचं देवदुर्लभम् ।।४९।।
न शोको न भयं क्लेशो न रोगो न पराजयः ।
न हानिर्न विषादोऽपि परव्याधिर्भवेन्नहि ।।५०।।
संग्रामेषु संग्रामेषु जपेच्छत्रून्, यथा वह्निर्दहेद् वनम् ।
ब्रह्मास्त्रास्त्रान्यशस्त्राणि पशुभिः कण्टकानि च ।।५१।।
तस्य देहे न भिदन्ति वज्राधिकं भवेद् वपुः ।
देहे न च दहेदग्निर्न तापयति भास्करः ।।५२।।
न शोषयति वातोऽपि न क्लेदः क्रियते जुशः ।
पुत्रवत् पाल्यते काली न हिमं कुरुते शशी ।।५३।।
जलसूर्येन्दुवाताश्च रक्षणे नास्ति संशये ।
बहु किं कथयिष्यामि सर्वसिद्धिमुपालभेत् ।।५४।।
नाना-भोग-सुखं लब्ध्वा स्वेच्छयाऽपि शिवो भवेत् ।
लिखित्वा भूर्जपत्रे वा, धारयेदङ्ग-सङ्गतिम् ।।५५।।
मोहनं स्तम्भ्नाकर्ष-मारणोच्चाटनं भवेत् ।
काकवन्ध्या च नारी या वन्ध्या वा मृतपुत्रिका ।।५६।।

स्वामित्वं लभते सोऽपि धनधान्यसमन्वितः ।
इदं कवचमज्ञात्वा यः जपेद् कालिकां मनुः ।।५८।।
ध्यानेन कोटिजाप्येन तस्य विद्या न सिद्ध्यति ।
पदे पदे भवेद् दुःखं लोकस्तं निन्द्यते ध्रुवम् ।।५९।।
इहलोके महद् दुःखं परे च नरकं व्रजेत् ।
गुरुमन्त्रसमं ज्ञात्वा यः पठेत् कवचोत्तमम् ।।६०।।
तस्य विद्या भवेत् सिद्धा सत्यं सत्यं वरानने !।
इदं कवचं दिव्यं प्रकाशयेत् सिद्धिदा भवेत् ।
भक्ताय श्रेष्ठपुत्राय साधकाय प्रकाशयेत् ।।६१।।

इति श्रीरुद्रयामले उमाशङ्करसम्वादे त्रैलोक्यमोहनं नाम श्रीदक्षिणाकालिकाकवचम् ।।

पद्मा—श्री देवी ने कहा–हे देवों के देव, हे महादेव, आप संसार से प्रीति रखने वाले हैं । समस्त विद्याओं की ईश्वरी विद्या का कवच कहिये ।

श्री शिव ने कहा–हे देवि ! सुनो ! यह सभी विद्याओं में श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ, सब की ईश्वरी, समस्त देवगणों द्वारा आराधित है । इस विद्या के कटाक्ष मात्र से शिव त्रैलोक्य विजयी, विष्णु लक्ष्मीपति, ब्रह्मा प्रजापति, इन्द्र देवताओं के राजा, यम मृत्यु के देवता, गंगा तीनो लोकों को पवित्र करने वाली, कमला विष्णु की पत्नी, सूर्य दिन के स्वामी ग्रहों के ईश्वर चन्द्रमा रात्रि के स्वामी, वरुण जल के अधिपति, कुबेर धन के स्वामी, वायु न रोकी जा सके-ऐसी गति वाले, गजमुख गणेश विघ्ननाश करने वाले, देवगुरु बृहस्पति वाणी के स्वामी, दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य महाकवि तथा समस्त देवता शिव के समान सब सिद्धियों के स्वामी होते हैं । इस महाविद्या के पवित्र कवच को मन्त्र स्वरूप समझना चाहिये ।

श्रीदक्षिणाकाली के इस त्रैलोक्यमोहन नामक कवच के ऋषि श्रीमहाकालभैरव, छन्द अनुष्टुप्, देवता श्रीदक्षिणाकालिका और धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिये इसके पाठ का विनियोग है ।

शिर में श्रीमहाकाल भैरव को नमस्कार, मुख मे अनुष्टुप् छन्द को नमस्कार, हृदय में श्रीदक्षिणा कालिका देवता को नमस्कार, अञ्जलि मे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के लिये विनियोग को नमस्कार ।

शिव से उपासिता 'क्रीं' सदैव मेरे ललाट की रक्षा करे । विष्णु द्वारा प्राचीन काल में आराधिता 'क्रीं क्रीं' मेरे नेत्र की रक्षा करे । ब्रह्मा से उपासिता 'क्रीं हूं ह्रीं' नासिका की,

इन्द्र द्वारा अराधिता 'क्रीं क्रीं क्रीं' मेरे मुख की सदैव रक्षा करे। यमराज द्वारा पूजिता 'क्रीं स्वाहा' कानों की तथा गंगा से सेविता 'ह्रीं हूं क्रीं स्वाहा' जिह्वा की रक्षा करे। भोग एवं मोक्ष देने वाली श्रीदेवी से उपासिता 'ॐ ह्रीं हूं ह्रीं' स्वाहा सदा मेरी दन्तपंक्ति की रक्षा करे। सूर्य द्वारा आराधिता, समस्त सिद्धियाँ प्रदान करने वाली विद्या क्री क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं 'सदा मेरे होंठ और अधर की रक्षा करे। चन्द्र से आराधिता, चतुर्वर्ग प्रदान करने वाली विद्या महाकाली 'ॐ ह्रीं क्रीं में स्वाहा' सदैव मेरे कण्ठ की रक्षा करे। वरुण से उपासिता, सुख एवं मोक्ष प्रदान करने वाली काली 'क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा' सदैव मेरे दोनों हाथों की रक्षा करें। कुबेर से उपासिता, सर्वसम्पत्ति दायिका काली क्रीं क्रीं ह्रीं फट् स्वाहा सदैव मेरे हृदय की रक्षा करे। वायु द्वारा उपासिता, यश, बल और सुख देने वाली ऐं ह्रीं ॐ हूं हूं फट् स्वाहा सदा दोनों स्तनो की रक्षा करें। गणनाथ से उपासिता समस्त सिद्धियों को देने वाली काली 'क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा' मेरे पेट की रक्षा करे। बृहस्पति से उपासिता शुद्ध बुद्धि देने वाली काली 'क्रीं दक्षिणे कालिके ह्रीं स्वाहा' मेरे नाभि की रक्षा करे। शुक्र से आराधिता, त्रैलोक्य की विजय देने वाली 'हूं हूं दक्षिणे कालिके ह्रीं ह्रीं' सदा लिङ्ग की रक्षा करे। धर्मराज द्वारा उपासिता सभी रत्न प्रदान करने वाली विद्या 'क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा' अण्डकोष की रक्षा करे। रामचन्द्र द्वारा पूजिता, द्वादशाक्षरी महाविद्या 'क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके ह्रीं ह्रीं स्वाहा सदैव गुदा की रक्षा करे। मेघनाद द्वारा उपासिता एकादशाक्षरी महाविद्या 'क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके ह्रीं स्वाहा' घुटनों की रक्षा करे। प्रह्लाद द्वारा उपासिता द्वादशाक्षरी महाविद्या 'क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके हूं ह्रीं स्वाहा' जांघों की रक्षा करे। गुरुदेव से उपासिता, चतुर्दशाक्षरी विद्या 'क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा' दोनों पैरों की रक्षा करे। क्षेत्रपाल द्वारा उपासिता द्वादशाक्षरी काली विद्या क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूं ह्रीं अंगुलियों की रक्षा करे। ग्रहेश्वरी पञ्चदशाक्षरी विद्या 'ॐ क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा सदा मेरे सभी नाखूनों की रक्षा करे। भैरवेश्वरी विद्या 'क्री क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं' सदा मेरी पीठ की रक्षा करे। क्रीं क्रीं क्रीं रोमों की, हूं हूं त्वचा की, ह्रीं ह्रीं मांस की, दक्षिणे कालिके रक्त की, क्रीं क्रीं क्रीं अस्थियों की, हूं हूं मज्जा की, ह्रीं ह्रीं वीर्य की और 'स्वाहा' सदैव छिद्रों की रक्षा करे। बाइस अक्षरों की यह विद्या समस्त लोकों में भी दुर्लभ है। महाविद्याओं की ईश्वरी विद्याराज्ञी सभी तन्त्रों में गुप्त है। सूर्य, चन्द्र, राम, जमदग्नि, जयन्त, सुनन्द, बलि, नारद, विभीषण, बाण, भृगु, कश्यप कपीन्द्र वशिष्ठ, धौम्य और त्रिपुर इन सभी के द्वारा उपासिता मृत्यु का नाश करने वाली महाकाली दक्षिणा काली की पूर्ण विद्या विद्याराज्ञी कही जाती है, काली, कपालिनी, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, विप्रचित्ता,

उग्रा, उग्रप्रभा, दीप्ता, नीला, घना, बलाका, मात्रा, मुद्रा और मिता यह सभी हूं, हूंकार से युक्त अट्टाहास द्वारा सभी स्थान में मेरी रक्षा करें। ब्राह्मी पूर्व मे, नारायणी आग्नेय मे, माहेश्वरी दक्षिण में, चामुण्डा नैर्ऋत्य मे, कौमारी पश्चिम मे, अपराजिता वायव्य दिशा में, वाराही उत्तर दिशा में और नारसिंही ईशान दिशा में मेरी रक्षा करे। ऊपर तथा नीचे काली, पार्श्व (बगल) में और पीछे कालिका मेरी रक्षा करे। जल, स्थल और पाताल में, सोते समय, खाते समय, आवास (घर) में, शासकीय स्थान मे, उपवन में, विवाद में, वन में, युद्ध में, पर्वत पर, एकान्त एवं निर्जन स्थान पर कालिका सदैव मेरी रक्षा करे। शवासन मे, श्मशान में, शून्य (मनुष्यरहित) घर में और चतुष्पथ (चौराहे) में जहां जहां भय हो सभी स्थान में कालिका रक्षा करे। नक्षत्र, तिथि, वार, योग, करण, मास, पक्ष, दण्ड, याम और निमेष मे, दिन, रात एवं सन्ध्या में और सभी स्थान पर सदैव कालिका रक्षा करे।

भगवान् श्रीशिव द्वारा निर्मित यह दिव्य कवच समस्त मन्त्रों, सभी इच्छाओं और सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाला है। त्रैलोक्य मोहन नामक यह दिव्य कवच देवताओं को भी दुर्लभ है। जो श्रेष्ठ साधक इसका पाठ करता है वह सभी कार्यों में सफल होता है तथा समस्त पापों से मुक्त होकर शिवलोक को जाता है। वह सभी धर्मों का ज्ञाता और सभी विद्याओं का स्वामी होता है। वह कुबेर के समान धनवान्, व्यास के समान कवि, गणेश के समान श्रुतिधर, सुन्दर वाणी एवं कोकिल स्वर वाला होता है। वह कामदेव के समान रूपवान, वायु के समान पराक्रमी, महेश के समान योगी तथा इन्द्र के समान वैभवशाली हो जाता है। बृहस्पति के समान बुद्धिमान, बुढ़ापा एवं मृत्यु से रहित, सर्वज्ञ सर्वदर्शी एवं समस्त स्त्रियों का प्रिय होता है। वह निर्बाध गति से युक्त, शान्त स्वभाव वाला तथा पत्नी पुत्रादि से युक्त होता है। देवताओं को भी दुर्लभ इस कवच का जिस घर में भी पाठ होता है उसे किसी भी प्रकार का शोक, भय, क्लेश, रोग, पराजय, हानि, विषाद आदि व्याधियाँ नही होती है। वह संग्राम मे शत्रुओं का उसी प्रकार नाश करता हुआ विजयी होता है जैसे अग्नि वन को जला देती है। ब्रह्मास्त्र आदि अस्त्र-शस्त्र पशुओं के सींगादि तथा कांटे उसके शरीर में नही घुस पाते हैं क्योंकि उसका शरीर वज्र से भी अधिक दृढ़ एवं अभेद्य हो जाता है। उसके शरीर को अग्नि जला नही सकती, सूर्य तपा नही सकता, वायु सुखा नही सकती न ही उसे कोई क्लेश ही पहुंचा सकता है, न ही चन्द्रमा उसे हिम के समान ठण्डा कर सकता है। भगवती काली उसे पुत्र के समान पालती है। जल, सूर्य, चन्द्रमा, और वायु आदि सभी से रक्षा होती है। अधिक क्या कहा जाये, साधक को सभी सिद्धियाँ प्राप्त हाती है। वह इच्छा मात्र से ही विविध प्रकार के सुखों और भोगों को भोगता हुआ शिव के समान हो जाता है। भोजपत्र पर लिखकर धारण करने

से मोहन, स्तम्भन, आकर्षण, मारण और उच्चाटन होता है। जो स्त्री काक वन्ध्या, बन्ध्या, मृतवत्सा हो वह यदि कवच को लिखकर कण्ठ अथवा बायीं भुजा में धारण करे तो वह अवश्य ही दीर्घायु, विद्वान् और सात्त्विक पुत्र को प्राप्त करती है। इसको धारण करने वाला धन धान्य से युक्त स्वामित्व पाता है। जो मनुष्य इस कवच को जाने बिना भगवती श्री काली के मन्त्र को जप करता है उसे ध्यान सहित करोड़ों जप करने पर भी विद्या सिद्ध नही होती है और पग पग पर दुःख पाता है और संसार में निन्दित होता है। इस लोक में घोर कष्ट पाकर अन्त में नरक को जाता है। हे सुमुखि ! गुरु मन्त्र के समान जानकर जो इस उत्तम कवच का पाठ करता है उसकी विद्या सिद्ध होती है, यह सत्य है। इस दिव्य कवच को दूसरों को न बतायें अन्यथा सिद्धि की हानि होती है। श्रेष्ठ भक्त, पुत्र तथा योग्य साधक को ही इसे बताना चाहिये ॥१-६२॥

विशेष

काकवन्ध्या—ऐसी स्त्री जिसे एक बार सन्तान होकर पुनः सन्तान नही होती है उसे काकवन्ध्या कहते हैं।

बन्ध्या—जो जन्म से अथवा किसी कारण वश सन्तान उत्पन्न करने के योग्य न हो।

मृत (वत्सा) पुत्रिका—जो स्त्री मरी हुई सन्तान को जन्म दे अथवा सन्तान उत्पन्न होने के पश्चात् शीघ्र ही मर जाये।

इस प्रकार श्रीरुद्रयामल के उमा-शंकर संवाद में त्रैलोक्य मोहन नामक श्रीदक्षिणा कालिका कवच की अजय कुमार उत्तम द्वारा रचित 'पद्मा' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

महाकौतूहल हृदय स्तोत्र

श्री महाकालोवाच

महाकौतूहलस्तोत्रं हृदयाख्यं महोत्तमम्।
शृणु प्रिये! महागोप्यं दक्षिणायाः सुगोपितम्।।१।।
अवाच्यमपि वक्ष्यामि तव प्रीत्या प्रकाशितम्।
अन्येभ्यः कुरु गोप्यं च, सत्यं सत्यं च शैलजे!।।२।।
कस्मिन् युगे समुत्पन्नं केन स्तोत्रं कृतं पुरा?
तत्सर्वं कथ्यतां शम्भो, दयानिधे! महेश्वर!।।३।।
पुरा प्रजापतेः शीर्षच्छेदनं कृतवानहम्।
ब्रह्महत्याकृतै पापैर्भैरवत्वं ममागतम्।।४।।
ब्रह्महत्याविनाशाय कृतं स्तोत्रं मया प्रिये!।
कृत्याविनाशकं स्तोत्रं ब्रह्महत्याऽपहारकम्।।५।।

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीदक्षिणकाल्याहृदयस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीमहाकाल ऋषिः उष्णिक् छन्दः श्रीदक्षिणकालिका देवता, क्रीं बीजं, ह्रीं शक्तिः नमः कीलकं, सर्वत्र सर्वदा जपे (पाठे) विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास

श्रीमहाकालऋषये नमः शिरसि, उष्णिक्-छन्दसे नमः मुखे, श्रीदक्षिणकालिका देवतायै नमः हृदि, क्रीं बीजाय नमः गुह्ये, ह्रीं शक्तये नमः नाभौ, नमःकीलकाय नमः पादयोः, सर्वत्र सर्वदा जपे (पाठे) विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

ध्यानम्

ध्याये कालीं महामायां त्रिनेत्रां बहुरूपिणीम्।
चतुर्भुजां ललज्जिह्वां पूर्णचन्द्रनिभाननाम्।।६।।
नीलोत्पलदलप्रख्यां शत्रुसङ्घविदारिणीम्।
नरमुण्डं तथा खड्गं कमलं वरदं तथा।।७।।
बिभ्राणां रक्तवदनां दंष्ट्राली घोररूपिणीम्।
अट्टाट्टहासनिरतां सर्वदा च दिगम्बराम्।
शवासनस्थितां देवीं मुण्डमालाविभूषिताम्।।८।।

कालिका घोररूपाढ्या सर्वकामफलप्रदा।
सर्वदेवस्तुता देवी शत्रुनाशं करोतु मे ।।९।।
ह्रीं ह्रीं स्वरूपिणी श्रेष्ठा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा।
तव स्नेहान्मया ख्यातं न देयं यस्य कस्यचित् ।।१०।।
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि निशामय परात्मिके!।
यस्य विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भविष्यति ।।११।।
नागयज्ञोपवीतां च चन्द्रार्द्धकृतशेखराम्।
जटाजूटां च सञ्चिन्त्य महाकालसमीपगाम् ।।१२।।
एवं न्यासादयः सर्वे ये प्रकुर्वन्ति मानवाः।
प्राप्नुवन्ति च ते मोक्षं सत्यं सत्यं वरानने!।।१३।।
यन्त्रं शृणु परं देव्याः सर्वार्थसिद्धिदायकम्।
गोप्यं गोप्यतरं गोप्यं गोप्यं गोप्यतरं महत् ।।१४।।
त्रिकोणं पञ्चकं चाष्टकमलं भूपुरान्वितम्।
मुण्डपंक्तिं च ज्वालां च कालीयन्त्रं सुसिद्धिदम् ।।१५।।
मन्त्रं तु पूर्वकथितं धारयस्व सदा प्रिये!।
देव्या दक्षिणकाल्यास्तु नाममालां निशामय ।।१६।।
काली दक्षिणकाली च कृष्णरूपा परात्मिका।
मुण्डमाला विशालाक्षी सृष्टिसंहारकारिका ।।१७।।
स्थितिरूपा महामाया योगनिद्रा भगात्मिका।
भगसर्पिः पानरता, भगोद्योता भगाङ्गजा ।।१८।।
आद्या सदा नवा घोरा महातेजाः करालिका।
प्रेतवाहा सिद्धिलक्ष्मीरनिरुद्धा सरस्वती ।।१९।।
एतानि नाम-माल्यानि ये पठन्ति दिने दिने।
तेषां दासस्य दासोऽहं सत्यं सत्यं महेश्वरि!।।२०।।
कालीं कालहरां देवीं कङ्कालबीजरूपिणीम्।
कालरूपां कलातीतां कालिकां दक्षिणां भजे ।।२१।।
कुण्डगोलप्रियां देवीं स्वयम्भूकुसुमे रताम्।
रतिप्रियां महारौद्रीं कालिकां प्रणमाम्यहम् ।।२२।।
दूतीप्रियां महादूतीं दूतीयोगेश्वरीं पराम्।
दूतीयोगोद्भवरतां दूतीरूपां नमाम्यहम् ।।२३।।
क्रीं मन्त्रेण जलं जप्त्वा सप्तधा सेचनेन तु।
सर्वे रोगा विनश्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ।।२४।।

क्रीं स्वाहान्तैर्महामन्त्रैश्चन्दनं साधयेत् ततः ।
लिकं क्रियते प्राज्ञैर्लोको वश्यो भवेत् सदा ।।२५।।
क्रीं हूं ह्रीं मन्त्रजप्तैश्च ह्यक्षतैः सप्तभिः प्रिये !।
महाभयविनाशश्च जायते नात्र संशयः ।।२६।।
क्रींह्रींहूं स्वाहामन्त्रेण श्मशानाग्निे च मन्त्रयेत् ।
शत्रोर्गृहे प्रति क्षिप्त्वा शत्रोर्मृत्युर्भविष्यति ।।२७।।
हूं ह्रीं क्रीं चैव उच्चाटे पुष्पं संशोध्य सप्तधा ।
रिपूणां चैव चोच्चाटं नयत्येव न संशयः ।।२८।।
आकर्षणे च क्रीं क्रीं क्रीं जप्त्वाऽक्षतान् प्रतिक्षिपेत् ।
सहस्त्रयोजनस्था च शीघ्रमागच्छति प्रिये ।।२९।।
क्रींक्रींक्रींहूंहूंहूंह्रींह्रीं च कज्जलं शोधितं तथा ।
तिलकेन जगन्मोहः सप्तधा मन्त्रमाचरेत् ।।३०।।
हृदयं परमेशानि ! सर्वपापहरं परम् ।
अश्वमेधादियज्ञानां कोटिकोटिगुणोत्तरम् ।।३१।।
कन्यादानादिदानानां कोटिकोटिगुणं फलम् ।
दूतीयागादियागानां कोटिकोटिफलं स्मृतम् ।।३२।।
गङ्गादिसर्वतीर्थानां फलं कोटिगुणं स्मृतम् ।
एकधा पाठमात्रेण सत्यं सत्यं मयोदितम् ।।३३।।
कौमारीस्वेष्टरूपेण पूजां कृत्वा विधानतः ।
पठेत् स्तोत्रं महेशानि ! जीवन्मुक्तः स उच्यते ।।३४।।
रजस्वलाभगं दृष्ट्वा पठेदेकाग्रमानसः ।
लभते परमं स्थानं देवीलोक वरानने ।।३५।।
महादुःखे महारोगे सङ्कटके दिने दिने ।
महाभये महाघोरे पठेत् स्तोत्रं महोत्तमम् ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं गोपयेन्मातृजारवत् ।।३६।।

इति श्रीमहाकौतूहलनाम श्रीदक्षिणकालिकाहृदयस्तोत्रम् ।

पद्मा—श्री महाकाल ने कहा–हे प्रिये ! दक्षिणा काली के ''हृदय'' नामक अत्यन्त ही श्रेष्ठ एवं परम गोपनीय महाकौतूहल स्तोत्र को सुनो। यह स्तोत्र अत्यन्त ही गोपनीय है। यह स्तोत्र किसी को भी बताना नही चाहिये। हे गिरिजे ! तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण ही इस स्तोत्र को कह रहा हूँ। इसे दूसरों से गोपनीय रखना चाहिये।

श्रीदेवी ने कहा–हे शम्भु ! हे दयामय ! हे महेश्वर ! यह स्तोत्र किस युग में उत्पन्न हुआ और किसने सर्वप्रथम इस स्तोत्र की रचना की ? यह सब आप कहिये

ने कहा–प्राचीन काल में मैंने प्रजापति ब्रह्मा जी का सिर काटा था। ब्रह्महत्या करने के पाप से मुझसें भैरवत्व उत्पन्न हो गया। हे प्रिये ! उस ब्रह्म हत्या को नष्ट करने के लिये मैंने इस स्तोत्र की रचना की। यह स्तोत्र कृत्या का नाश करने वाला तथा ब्रह्महत्या को दूर करने वाला है।

श्री दक्षिणाकाली के इस हृदयस्तोत्र मन्त्र के ऋषि श्रीमहाकाल, छन्द उष्णिक्, देवता श्री दक्षिणा कालिका, बीज क्रीं, शक्ति ह्रीं, कीलक: नम: और विनियोग सर्वत्र सर्वदा जप (पाठ) में हैं।

अंगुष्ठ तथा हृदय आदि छ: अङ्गों में न्यास कर ध्यान करे। जो महामाया तीन नेत्रों वाली और अनेकों रूप वाली है। वे चार भुजाओं, लपलपाती जीभ और पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर खिले हुये मुख वाली हैं। नीलकमल की पंखुड़ियों के समान शोभावाली और शत्रुओं के समूह का विनाश करने वाली हैं। वे कपाल, खड्ग, कमल और वरमुद्रा अपने हाथों में धारण करने वाली, लाल मुखमण्डल वाली, ढाढ़ो की पंक्तियों से युक्त तथा भयानक रूप वाली हैं। साधक शव के आसन पर आसीन, मुण्डों की माला से सुशोभिता देवी काली का ध्यान करे।

घोर रूपवाली, समस्त कामनाओं का फल देने वाली, समस्त देवताओं से वन्दिता देवी काली मेरे शत्रुओं का नाश करें। ह्रीं ह्रीं रूपवाली, श्रेष्ठ तथा तीनों लोकों में दुर्लभ है। तुम्हारे कहने से मैने इनका उल्लेख किया है। यह प्रत्येक मनुष्य को न बताये। अब मैं वह ध्यान कहता हूँ जिसके जानने मात्र से जीवन्मुक्ति हो जाती है। हे परात्मिके ! उसको मुझसे सुनो। जो सर्प का यज्ञोपवीत धारण किये हुय हैं जिनके मस्तक पर अर्द्धचन्द्र का मुकुट है, जो जटाजूट धारण किये हुय हैं जौ महाकाल के समीप स्थित हैं, ऐसी काली का ध्यान कर जो मनुष्य न्यासादि कर्मो को इस प्रकार करते हैं वे मोक्ष को प्राप्त करते हैं। हे सुन्दर मुखवाली ! यह सर्वथा सत्य है।

अब देवी के श्रेष्ठ यन्त्र को सुनो, जो सभी कामनाओं की सिद्धि प्रदान करने वाला है। यह गोपनीय है और गोपनीय से भी गोपनीय एवं परम गोपनीय है। पाँच त्रिकोण, अष्टदल कमल और भूपुर से युक्त, मुण्डपंक्ति और ज्वाला से सुशोभित 'कालीयन्त्र' सुसिद्धि को देने वाला है। मन्त्र को पहले ही कहा गया है। हे प्रिये ! इसे सदैव धारण करे।

अब देवी दक्षिणा काली की नाम माला सुनो। काली, दक्षिणा, कृष्णरूपा, परात्मिका, मुण्डमाला, विशालाक्षी, सृष्टिसंहारकारिका, स्थितिरूपा, महामाया, योगनिद्रा, भगात्मिका, भगसर्पि:, पानरता, भगोद्योता, भगाङ्गजा, सदानवा, घोरा, महातेजा, करालिका, प्रेतवाहा, सिद्धिलक्ष्मी, अनिरुद्धा, सरस्वती। हे महेश्वरि ! इस नाम माला का जो प्रतिदिन पाठ करते हैं उनके दास का भी मै दास होता हूँ यह सर्वथा सत्य है।

मैने उन दक्षिणा काली का भजन करता हूँ जों काल का भी नाश करने वाली काली है, कङ्काल बीज के स्वरूप वाली देवी हैं, कालस्वरूपा हैं और कलाओं से परे हैं। मैं देवी कालिका को प्रणाम करता हूँ जिन्हे **कुण्डगोलक** प्रिय हैं, जो **स्वयम्भू कुसुम** मे मग्न हैं, जिन्हे रतिप्रिय हैं, जो महान् **दूती** हैं जो **दूती योग** की श्रेष्ठ ईश्वरी हैं और **दूती योग** से उत्पन्न आनन्द मे मग्न रहती हैं।

क्रीं मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित कर उसके सात बार के सिञ्चन से सभी प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं इसमें किसी प्रकार का सन्देह नही है। **क्रीं स्वाहा** इस महामन्त्र के द्वारा चन्द्रन प्रदान करें। बुद्धिमान मनुष्य इससें तिलक करें तो जगत् वश में होता है। **क्रीं हूं ही स्वाहा** इस मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित सात अक्षतों से बड़ा से बड़ा भय भी विनष्ट हो जाता है, हे प्रिये ! इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह न करे। **क्रीं हीं हूं स्वाहा** इस मन्त्र से श्मशान की अग्नि को अभिमन्त्रित कर शत्रु के घर फेंकने से शत्रु की मृत्यु होती है। **हूं हीं क्रीं** से सात बार पुष्प का संशोधन कर उच्चाटन प्रयोग करे। इससे शत्रुओं का निश्चित रूप से उच्चाटन होता है इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है। **क्रीं क्रीं क्रीं** इस मन्त्र से अभिमन्त्रित अक्षतों का प्रयोग आकर्षण कर्म मे करे तो हजार योजन दूर स्थित व्यक्ति भी शीघ्र आ जाता है। **क्रीं क्रीं क्री हूं हूं हीं हीं** मन्त्र से अभिमन्त्रित का जल तिलक लगाने से संसार का मोहन होता है। काजल को मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित करे।

हे परमेश्वरि ! यह श्रेष्ठ हृदयस्तोत्र समस्त पापों को नाश करने वाला है। अश्वमेधादि यज्ञों से करोड़ो गुणा अधिक फल देने वाला है। कन्या दान आदि दानों से करोड़ो गुणा अधिक फल देने वाला है। दूतीयाग आदि यागों से करोड़ों गुणा अधिक फल देने वाला है। इस स्तोत्र के एक बार के पाठ से ही गंगा आदि समस्त तीर्थों के फल से करोड़ों गुणा अधिक फल देने वाला है। यह मैने सर्वथा सत्य कहा है। हे महेशानि ! कौमारी की अपने इष्ट देवता के रूप में विधानपूर्वक पूजन कर जो इस स्तोत्र का पाठ करता है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है। रजस्वला स्त्री की भग को देखकर जों इस स्तोत्र का पाठ करता है, तो हे वरानने ! वह देवी लोक में श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करता है। अत्यन्त ही दुःख में, भयानक दुःसाध्य रोग मे, बहुत बड़ी विपत्ति के दिन मे, बहुत बड़े भय में, अत्यन्त ही भयानक स्थिति में इस अत्यन्त ही श्रेष्ठ स्तोत्र का पाठ करे। यह अत्यन्त ही सत्य है कि इसे माता के जार के समान गुप्त रखे।

इस प्रकार महाकौतूहल नामक श्री दक्षिणा काली के हृदय स्तोत्र की अजय कुमार उत्तम रचित ''पद्मा'' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

श्री कालीशतनामस्तोत्रम्

श्रीदेवी उवाच

नमस्ते पार्वतीनाथ विश्वनाथ! दयामय।
ज्ञानात् परतरं नास्ति श्रुतं विश्वेश्वर! प्रभो ।।१।।
दीनानाथ दयासिन्धो! श्रुतं विश्वेश्वर! जगत्पते!।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि गोप्यं परमकारणम्।
रहस्यं कालिकायाश्च तारायाश्च सुरोत्तम् ।।२।।

श्रीशिव उवाच

रहस्यं किं वदिष्यामि पञ्चवक्त्रैर्महश्वरि!।
जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि ।।३।।
तथापि तस्य माहात्म्यं न शक्नोमि कथञ्चन।
तस्या रहस्यं गोप्यं च किं न जानामि शाङ्करि!।।४।।
स्वस्यैव चरितं वक्तुं स्वयमेव क्षमो भवेत्।
अन्यथा नैव देवेशि! न जानाति कथञ्चन ।।५।।
कालिकायाः शतं नाम नानातन्त्रे त्वया श्रुतम्।
रहस्यं गोपनीयं च तन्त्रेऽस्मिन् जगदिम्बके!।।६।।
करालवदना काली कामिनी कमला कला।
क्रियावती कोटराक्षी कामाख्या कामसुन्दरी ।।७।।
कपोला च कराला च काशी कात्यायनी कुहूः।
कङ्काला कालदमना करुणा कमलार्चिता ।।८।।
कादम्बरी कालहरा कौतुकी कारणप्रिया।
कृष्णा कृष्णप्रिया कृष्णपूजिता कृष्णवल्लभा ।।९।।
कृष्णापराजिता कृष्णप्रिया च कृष्णरूपिणी।
कालिका कालरात्रिश्च कुलजा कुलपण्डिता ।।१०।।
कुलधर्मप्रिया कामा काम्यकर्मविभूषिता।
कुलप्रिया कुलरता कुलीनपरिपूजिता ।।११।।
कुलज्ञा कमला पूज्या कैलासगणभूषिता।
कुटजा केशिनी कामा कामदा कामपण्डिता ।।१२।।
करालास्या च कन्दर्पा कामिनीरूपशोभिता।
कोलम्बका कोलरता केशिनी केशभूषिता ।।१३।।

केशवस्य प्रिया काशा काश्मीरा केशवार्चिता ।
कामेश्वरी कामरूपा कामदानविभूषिता ।।१४।।
कालहन्त्री कूर्ममांसप्रिया कूर्मादिपूजिता ।
केलिनी करका कारा करकर्मनिषेविणी ।।१५।।
कटकेशवमध्यस्था कटकीटकरार्चिता ।
कटप्रिया कटरता कटकर्मनिषेविणी ।।१६।।
कुमारीपूजनरता कुमारीगणसेविता ।
कुलजा च प्रिया कौलप्रिया कुलनिषेविणी ।।१७।।
कुलीना कुलधर्मज्ञा कुलभीतिविमर्दिनी ।
कामधर्मप्रिया काम्या नित्यकर्मस्वरूपिणी ।।१८।।
कामरूपा कामहरा काममन्दिरपूजिता ।
कामागारस्वरूपा च कालाख्या कालभूषिता ।।१९।।
क्रियाभक्तिरता काल्या काञ्चनी कामदायिनी ।
कोलपुष्पाम्बरा कोला निकोला कोलहन्तका ।।२०।।
कोषिकी केतकी कुम्भी कुन्तलादिविभूषिता ।
इत्येवं शृणु चार्वङ्गि! रहस्यं सर्वमङ्गलम् ।।२१।।
यः पठेत् परया भक्त्या स शिवो नात्र संशयः ।
शतनामप्रसादेन किं न सिध्यति भूतले!।।२२।।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वासवाद्या दिवौकसः ।
रहस्यपठनाद् देवि! सर्वे च विगतज्वराः ।।२३।।
त्रिषु लोकेषु विश्वेशि! सत्यं गोप्यमतः परम् ।
नास्ति नास्ति महामाये! तन्त्रमध्ये कथञ्चन ।।२४।।
क्रियया च विना देवि! विना भक्त्या महेश्वरि!।
प्रसन्नास्या करालास्या स्तवपाठाद् दिगम्बरि!।।२५।।
सत्यं वच्मि महेशानि! अतः परतरं नहि ।
न गोकुले न वैकुण्ठे न च कैलास मन्दिरे ।।२६।।
अतः परतरा विद्या स्तोत्रं कवचमेव च ।
त्रिलोकेषु जगद्धात्रि! नास्ति नास्ति कदाचन् ।।२७।।
रात्रावपि दिवाभागे निशाभागे सुरेश्वरि!।
प्रजपेद् भक्तिभावेन रहस्यं स्तवमुत्तमम् ।।२८।।
शतनामप्रसादेन मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ।
कुजवारे चतुर्दश्यां निशाभागे जपेत् तु यः ।।२९।।
स कृती सर्वशास्त्रज्ञः स कुलीनः सदा शुचिः ।
स कुलज्ञः स कालज्ञः स धर्मज्ञो महीतले ।।३०।।

रहस्यपठनात् कोटिपुरश्चरणजं फलम् ।
प्राप्नोति देवदेवेशि! सत्यं परमसुन्दरि!।।३१।।
स्तवपाठाद् वरारोहे! किं न सिध्यति भूतले ।
अणिमाद्यष्टसिद्धिः स्याद् भवत्येव न संशयः ।।३२।।
रात्रौ बिल्वतलेऽश्वत्थमूलेऽपराजितातले ।
प्रपठेत् कालिकास्तोत्रं यथाशक्ति महेश्वरि!।।३३।।
शतवारप्रपठनान्मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
उपायो नास्ति देवेशि! महामन्त्रस्य साधने ।।३४।।
अतः परतरं देवि! नासि ब्रह्माण्डमण्डले ।
नानातन्त्रं श्रुतं देवि! मम वक्त्रात् सुरेश्वरि ।।३५।।
मुण्डमालामहातन्त्रं महामन्त्रस्य साधनम् ।
भक्त्या भगवतीं दुर्गां दुःखदारिद्र्यनाशिनीम् ।।३६।।
संस्मरेत् प्रजपेद् ध्यायेत् स मुक्तो नात्र संशयः ।
जीवन्मुक्तः स विज्ञेयस्तन्त्रभक्तिपरायणः ।।३७।।
यः साधको महाज्ञनी यश्च दुर्गासदानुगः ।
न च भक्तिर्न वा मुक्तिर्न मुक्तिर्नगनन्दिनि!।।३८।।
विना दुर्गां जगद्धात्रि! निष्फलं जीवनं भवेत् ।
शक्तिमार्गरतो भूयो योऽन्यमार्गे प्रधावति ।।३९।।
न च शाक्तास्तस्य वक्तुं पारं पश्यन्ति सुन्दरि!।
विना दुर्गां जगद्धात्रि! वाग्जाले शास्त्रमोहिताः ।।४०।।
अन्यदेवं भजन्त्येते चान्ये शास्त्रे विघूर्णिताः ।
विना तन्त्राद् विना मन्त्राद् विना यन्त्रान्महेश्वरि ।।४१।।
न च भक्तिश्च मुक्तिश्च जायते वरवर्णिनि ।
तन्त्रवक्ता गुरुः साक्षाद् यथा च ज्ञानदः शिवः ।।४२।।
यथा गुरुर्महेशानि! तथा च परमो गुरुः ।
यथा परापरगुरुः परमेष्ठिर्यथा गुरुः ।।४३।।
तथा चैव हि तन्त्रज्ञस्तन्त्रवक्ता गुरुः स्वयम् ।
तन्त्रं च तन्त्रवक्तारं निन्दन्ति तान्त्रिकीं क्रियाम् ।।४४।।
ये जना भैरवास्तेषां मांसास्थिचर्वणोद्यताः ।
अत एव हि तन्त्रज्ञं न निन्दन्ति कदाचन ।
न हसन्ति न हिंसन्ति न वदन्ति कदाचन ।।४५।।

इति श्रीमुण्डमालातन्त्रे श्रीकालीशतनाम स्तोत्रम् ।

श्रीकाली कवचम्

कैलासशिखरारूढ़ं भैरवं चन्द्रशेखरम् ।
वक्षःस्थले समासीना भैरवी परिपृच्छति ।।१।।

भैरव्युवाच

देवेश ! परमेशान ! लोकानुग्रहकारक !।
कवचं सूचितं पूर्वं किमर्थं न प्रकाशितम् ।।२।।
यदि मे महती प्रीतिस्तवास्ति कुलभैरव !।
कवचं कालिकादेव्याः कथयस्वानुकम्पया ।।३।।

श्री भैरव उवाच

अप्रकाश्यमिदं देवि ! नरलोके विशेषतः ।
लक्षवारं वारितापि स्त्रीस्वभावाद्धि पृच्छसि ।।४।।

श्री देव्युवाच

सेवका बहवो नाथ कुलधर्मपरायणाः ।
यतस्ते त्यक्तजीवाशाः शवोपरि चितोपरि ।।५।।
तेषां प्रयोगसिद्ध्यर्थं स्वरक्षार्थं विशेषतः ।
पृच्छामि बहुशो देव कथयस्व दयानिधे ।।६।।

श्री भैरव उवाच

कथयामि शृणु प्राज्ञे ! कालिकाकवचं परम् ।
गोपनीयं पशोरग्रे स्वयोनिमपरे यथा ।।
सर्वविद्या महाराज्ञी सर्वदेवनमस्कृता ।।७।।

कालिकाकवचस्य भैरव ऋषिरुष्णिक् छन्दः, अद्वैतरूपिणी श्री दक्षिणकालिका देवता, ह्रीं बीजम्, हं शक्तिः, क्रीं कीलकम्, सर्वार्थ साधनपुरः सरमन्त्रसिद्धौ विनियोगः ।

सहस्रारे महापद्मे कर्पूरधवलो गुरुः ।
वामोरुस्थिततच्छक्तिः सदा सर्वत्र रक्षतु ।।८।।
परमेशो गुरुः पातु परापरगुरुस्तथा ।
परमेष्ठी गुरुः पातु दिवासिद्धश्च मानवः ।।९।।

महादेवी सदा पातु महादेवः सदावतु ।
त्रिपुरो भैरवः पातु दिव्यरूपधरः सदा ।।१०।।
ब्रह्मानन्दः सदा पातु पूर्णदेवः सदावतु ।
चलच्चित्तः सदा पातु चेलाञ्चलश्च पातु माम् ।।११।।
कुमारः क्रोधनश्चैव वरदः स्मरदीपनः ।
माया मायावती चैव सिद्धौघाः पान्तु सर्वदा ।।१२।।
विमलः कुशलश्चैव भीमसेनः सुधाकरः ।
मीनो गोरक्षकश्चैव भोजदेवः प्रजापतिः ।।१३।।
कुलदेवो रन्तिदेवो विघ्नेश्वरहुताशनौ ।
सन्तोषः समयानन्दः पातु मां मानवाः सदा ।।१४।।
सर्वेऽप्यानन्दनाथान्ता अम्बान्ता मातरः क्रमात् ।
गणनाथः सदा पातु भैरवः पातु मां सदा ।।१५।।
वटुकेशः सदा पातु दुर्गा मां परिरक्षतु ।
शिरसः पादपर्यन्तं पातु मां घोरदक्षिणा ।।१६।।
तथा शिरसि मां काली हृदि मूले च रक्षतु ।
सम्पूर्णविद्यया देवि! सदा सर्वत्र रक्षतु ।।१७।।
क्रीं क्रीं क्रीं वदनं पातु हृदि हुं हुं सदावतु ।
ह्रीं ह्रीं पातु सदाधारे दक्षिणे कालिके हृदि ।।१८।।
क्रीं क्रीं क्रीं पातु मे पूर्वे हुं हुं दक्षे सदावतु ।
ह्रीं ह्रीं मां पश्चिमे पातु हुं हुं पातु सदोत्तरे ।।१९।।
पृष्ठे पातु सदा स्वाहा मूला सर्वत्र रक्षतु ।
षडङ्गे युवती पातु षडङ्गेषु सदैव माम् ।।२०।।
मन्त्रराजः सदा पातु ऊर्ध्वाधो दिग्विदिक्स्थितः ।
चक्रराजः स्थिताश्चापि देवताः परिपान्तु माम् ।।२१।।
उग्रा उग्रप्रभा दीप्ता पातु पूर्वे त्रिकोणके ।
नीला घना वलाका च तथा परत्रिकोणके ।।२२।।
मात्रा मुद्रा मिता चैव तथा मध्यत्रिकोणके ।
काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ।।२३।।
बहिः षट्कोणगाः पान्तु विप्रचित्ता तथा प्रिये ।
सर्वाः श्यामाः खड्गधरा वामहस्ते च तर्जनाः ।।२४।।
ब्राह्मी पूर्वदले पातु नारायणी तथाग्निके ।
माहेश्वरी दक्षदले चामुण्डा राक्षसेऽवतु ।।२५।।

कौमारी पश्चिमे पातु वायव्ये चापराजिता।
वाराही चोत्तरे पातु नारसिंही शिवेऽवतु ।।२६।।
ऐं ह्रीं असिताङ्गः पूर्वे भैरवः परिरक्षतु।
ऐं ह्रीं रुरुश्चाग्निकोणे ऐं ह्रीं चण्डस्तु दक्षिणे ।।२७।।
ऐं ह्रीं क्रोधो नैर्ऋतेऽव्याद् ऐं ह्रीं उन्मत्तकस्तथा।
पश्चिमे ऐं ह्रीं मां कपाली वायुकोणके ।।२८।।
ऐं ह्रीं भीषणास्यश्च उत्तरेऽवतु भैरवः।
ऐं ह्रीं संहार ऐशान्यां मातॄणामङ्कगाः शिवाः ।।२९।।
ऐं हेतुको बटुकः पूर्वदले पातु सदैव माम्।
ऐं त्रिपुरान्तको वटुक आग्नेय्यां सर्वदाऽवतु ।।३०।।
ऐं वह्निवेतालो वटुको दक्षिणे मां सदाऽवतु।
ऐं अग्निजिह्ववटुकोऽव्याद नैर्ऋत्यां पश्चिमे तथा ।।३१।।
ऐं कालवटुकः पातु ऐं करालवटुकस्तथा।
वायव्यां ऐं एकपाद उत्तरे वटुकोऽवतु ।।३२।।
ऐं भीमवटुकः पातु ऐशान्यां दिशि मां सदा।
ऐं ह्रीं ह्रीं हुं फट् स्वाहान्ताश्चतुःषष्टिमातरः ।।३३।।
ऊर्ध्वाधो दक्षवामाग्रे पृष्ठदेशे तु पान्तु माम्।
ऐं हुं सिंहव्याघ्रमुखी पूर्वे मां परिरक्षतु ।।३४।।
ऐं कां कीं सर्पसुमुखी अग्निकोणे सदाऽवतु।
ऐं मां मां मृगमेषमुखी दक्षिणे मां सदाऽवतु ।।३५।।
ऐं चौं चौं गजराजमुखी नैर्ऋत्यां मां सदाऽवतु।
ऐं में में विडालमुखी पश्चिमे पातु मां सदा ।।३६।।
ऐं खौं खौं क्रोष्टुमुखी वायुकोणे सदाऽवतु।
ऐं हां हां ह्रस्वदीर्घमुखी लम्बोदरमहोदरी ।।३७।।
पातु मामुत्तरे कोणे ऐं ह्रीं ह्रीं शिवकोणके।
ह्रस्वजङ्घ-तालजङ्घ-प्रलम्बौष्ठी सदाऽवतु ।।३८।।
एताः श्मशानवासिन्यो भीषणा विकृताननाः।
पान्तु मां सर्वदा देव्यः साधकाभीष्टपूरिकाः ।।३९।।
इन्द्रो मां पूर्वतो रक्षेदाग्नेय्यामग्निदेवता।
दक्षे यमः सदा पातु नैर्ऋत्यां निर्ऋतिश्च माम् ।।४०।।
वरुणोऽवतु मां पश्चात् वायुर्मा वायव्येऽवतु।
कुबेरश्चोत्तरे पायाद् ऐशान्यां तु सदाशिवः ।।४१।।

ऊर्ध्वं ब्रह्मा सदा पातु अधश्चानन्तदेवता ।
पूर्वादिदिक्स्थिताः पान्तु वज्राद्याश्चायुधाश्च माम् ।।४२।।
कालिका पातु शिरसि हृदये कालिकाऽवतु ।
दिक्षु मां कालिका पातु विदिक्षु कालिकाऽवतु ।।४३।।
ऊर्ध्वं मे कालिका पातु अधश्च कालिकाऽवतु ।
चर्मासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि मेऽवतु ।।४४।।
इन्द्रियाणि मनश्चैव देहं सिद्धिं च मेऽवतु ।
आकेशात् पादपर्यन्तं कालिका मे सदाऽवतु ।।४५।।
वियति कालिका पातु पथि मां कालिकाऽवतु ।
शयने कालिका पातु सर्वकार्येषु कालिका ।।४६।।
पुत्रान् मे कालिका पातु धनं मे पातु कालिका ।
यत्र मे संशयाविष्टास्तान् नाशयतु कालिका ।।४७।।
इतीदं कवचं देवि ब्रह्मलोकेऽपि दुर्लभम् ।
तव प्रीत्या मया ख्यातं गोपनीयं स्वयोनिवत् ।।४८।।
तव नाम्नि स्मृते देवि! सर्वयज्ञफलं लभेत् ।
सर्वपापः क्षयं यति वाञ्छा सर्वत्र सिध्यति ।।४९।।
नाम्नः शतगुणं स्तोत्रं ध्यानं तस्मात् शताधिकम् ।
तस्मात् शताधिको मन्त्रः कवचं तच्छताधिकम् ।।५०।।
शुचिः समाहितो भूत्वा भक्तिश्रद्धासमन्वितः ।
संस्थाप्य वामभागे तु शक्तिं स्वामिपरायणाम् ।।५१।।
रक्तवस्त्रपरीधानां शिवमन्त्रधरां शुभाम् ।
या शक्तिः सा महादेवी हररूपश्च साधकः ।।५२।।
अन्योन्यचिन्तनाद् देवि देवत्वमुपजायते ।
शक्तियुक्तो यजेद्देवीं चक्रे वा मनसापि वा ।।५३।।
भोगैश्च मधुपर्काद्यैस्ताम्बूलैश्च सुवासितैः ।
ततश्च कवचं दिव्यं पठेदेकमनाः प्रिये!।।५४।।
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ।
इदं रहस्यं परमं परं स्वस्त्ययनं महत् ।।५५।।
यः सकृत्तु पठेद्देवि शृणुयाद् वा समाहितः ।
स सर्वान् लभते कामान् परे देवीपुरं व्रजेत् ।।५६।।
सकृद् यस्तु पठेद्देवि कवचं देवदुर्लभम् ।
सर्वयज्ञफलं तस्य भवेदेन न संशयः ।।५७।।

संग्रामे च जयेत् शत्रून् मातङ्गानिव केसरी।
नास्त्राणि तस्य शस्त्राणि शरीर प्रभवन्ति च।।५८।।
तस्य व्याधिः कदाचिन्न दुःखं नास्ति कदाचन।
गतिस्तस्यैव सर्वत्र वायुतुल्यः सदा भवेत्।।५९।।
दीर्घायुः कामभोगीशो गुरुभक्तः सदा भवेत्।
अहो कवचमाहात्म्यं पठमानस्य नित्यशः।।६०।।
विनाऽपि लययोगेन योगीशसमतां व्रजेत्।
भूर्जत्वचि समालिख्य चक्रं तन्त्रविनिर्मितम्।।६१।।
मध्यत्रिकोणे संलिख्य साध्यसाधकयोर्लिपिम्।
उद्धरेन्मूलमन्त्रञ्च मातृकार्णेन वेष्टयेत्।।६२।।
लघुमिश्रेण चन्द्रेण चन्दनाभ्यां सुरेश्वरि!।
एतन्मन्त्रं महेशनि! सुरासुरसुदुर्लभम्।।६३।।
गोरोचनाकुङ्कुमाभ्यां तद्बाह्ये कवचं लिखेत्।
श्वेतसूत्रेण संवेष्ट्य लाक्षया परिमण्डयेत्।।६४।।
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः स्नापयित्वा शुभेऽहनि।
सम्पूज्य देवतारूपं गुटिकां सर्वकामदाम्।।६५।।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणं तत्र नियोजयेत्।
अन्तर्योनिं ततो ध्यात्वा तत्र संस्थापयेद् बुधः।।६६।।
एषा तु गुटिका देवि! कण्ठलग्नाखिलप्रदा।
शीर्षे वश्यकरी देवी नाभौ स्तम्भनकारिणी।।६७।।
बद्ध्वा वामभुजे एषा वैरिपक्षक्षयङ्करी।
जठरे रोगदमनी पुत्रदा हृदि संस्थिता।।६८।।
विद्याकरी ललाटस्था शिखायां तु यशःप्रदा।
सर्वकामप्रदा देवी सर्वरोगक्षयङ्करी।।६९।।
दक्षिणे बाहुमूले वै यदि तिष्ठति सर्वदा।
तदा सर्वार्थसिद्धिः स्याद् यद् यन्मनसि वर्तते।।७०।।
त्र्यहात्तु कवचस्यास्य पठनात् कारणात् प्रिये!।
सर्वान् कामानवाप्नोति तव स्नेहात् प्रकाशितम्।।७१।।
गुरोः पादप्रसादेन सद्विद्या यदि लभ्यते।
तथैव कवचं देवि! त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।।७२।।
स च देवो हरः साक्षात् तत्पत्नी परमेश्वरी।
यस्य भक्तिर्गुरौ नित्यं वर्तते देववत् प्रिये!।।७३।।

तदा यन्त्रस्य मन्त्रस्य सिद्धिर्भवति नान्यथा ।
कवचस्य तथा सिद्धिर्गुटिकायाश्च सुन्दरि ! ।।७४।।
अज्ञात्वा कवचं देवि ! न चेष्ट्वा गुरुपादुकाम् ।
तत्फलं न समाप्नोति परे च नरकं व्रजेत् ।।७५।।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं पुनः पुनः ।
न शक्नोमि प्रभावं तु कवचस्यास्य वर्णितुम् ।।७६।।
यस्मै कस्मै न दातव्यं कवचञ्च सुदुर्लभम् ।
न देयं परशिष्येभ्यः कृपणेभ्यः सुरेश्वरि ।।७७।।
शिष्याय भक्तियुक्ताय सेवकाय तथैव च ।
गुरुभक्तिविहीनाय परदाररताय च ।।७८।।
निन्दकायाकुलीनाय दाम्भिकाय च सुन्दरि !।
यो ददाति निषिद्धेभ्यः कवचं मन्मुखोद्गतम् ।।७९।।
तस्य नश्यन्ति देवेशि ! आयुः कीर्तिर्यशः श्रियः ।
न हिंसन्ति सदा देवि ! योगिन्यो मातृमण्डलात् ।।८०।।
परे नरकमाप्नोति जन्मकोटिशतानि च ।
देयं शिष्याय शान्ताय गुरुभक्तिपराय च ।
सर्वलक्षणयुक्ताय तत्तन्मन्त्रयुताय च ।।८१।।

इत्युत्तरतन्त्रे कालीप्रस्तारे कालीभैरवसंवादेश्रीमद्दक्षिणाकालिकावचं सम्पूर्णम् ।

❖

श्री दक्षिणकाल्याः क्रमस्तवः

क्रमस्तवं पठेन्नित्यं विधिनानेन देशिकः ।
ओं नमो गुरुभ्यो देवेभ्यस्तथा परतराय च ।।१।।
परापरेभ्यस्तद्वच्च तथा परात्परया च ।
क्षेत्रफलं नमस्कृत्य द्वारदेवान् विधानतः ।।२।।
लक्ष्मीं सरस्वतीं दुर्गां गङ्गां गोदावरीं तथा ।
भोगवतीं नमस्कृत्य वास्तुदेवान् नमेत्तथा ।।३।।
विघ्नराजं च वास्त्वीशं क्षेत्रेशं प्रणमाम्यहम् ।
नैर्ऋतश्चैव ब्रह्माणं ब्रह्मकर्मात्मकं प्रिये !।।४।।
विघ्नान् प्रणम्य विधिना तान् देवांश्च नमेत्ततः ।
आधारशक्तिं तां नत्वा पङ्कजद्वयधारिणीम् ।।५।।
नीलवर्णां महामायां द्वादशाक्षररूपिणीम् ।
ततो धर्मगणैः सेव्यां तां देवीं शक्तिरूपिणीम् ।।६।।
नीलवर्णं महाकायं कूर्मं हिमाद्रिसंस्थितम् ।
सर्वशक्तितनुं विष्णु कूर्माकारं नमाम्यहम् ।।७।।
तस्य पृष्ठे स्थितं देवमनन्तं तं नमाम्यहम् ।
सहस्त्रफणसंयुक्तं सर्पाकारं हरिं नमः ।।८।।
हिमाद्रिसृदशं विष्णुमेकदन्तधरं विभुम् ।
फणासहस्त्रैर्मणिभिर्भूषितं तं नमाम्यहम् ।।९।।
तस्य कक्षगतं ध्यायेल्लाङ्गूलं चाशुभापहम् ।
मुद्गरं वामभागे च तत्रैकादशसंयुतम् ।।१०।।
तस्य मूर्ध्नि स्थितं ध्यायेद् वराहं विष्णुमव्ययम् ।
एकदन्तं महाकायं कालमेघसमप्रभम् ।।११।।
तस्य दन्ते सदा ध्यायेत् पृथिवीं पद्मपायिनीम् ।
नीलवर्णां महादेवीं शालिशुकविभूषिताम् ।।१२।।
अणिमादिगुणेषूक्तां सर्वतत्त्वविभूषिताम् ।
तस्या मूर्ध्नि सदा ध्यायेत् समुद्रान रत्नसंयुतान् ।।१३।।
नानापर्वतसंयुक्तां पृथिवीं चिन्तयेद् धिया ।
पर्वतांश्चिन्तयेत्तस्यां सर्वत्र कुलभूषितान् ।।१४।।

दिग्गजेभ्यो नमस्कृत्य योगेभ्यः प्रणमेत् सदा।
मुनीन्द्रेभ्य ऋषिभ्यश्च योगशास्त्रधराय च॥१५॥
शाक्तेभ्यो वैष्णवेभ्यश्च शैवेभ्यः प्रणमेत् सदा।
यन्त्रेभ्यो मन्त्रवेदेभ्यः सर्वशास्त्रपराय च॥१६॥
चन्द्राय चन्द्रवंशेभ्यः सूर्यवंशेभ्य एव च।
मनुवंश-मनुष्येभ्यः पञ्चभूतेभ्य एव च॥१७॥
महाभूतेभ्यो भूतेभ्यः कलाभ्यः प्रणमेत् सदा।
रसेभ्योऽपि नमस्कृत्य गन्धेभ्यः प्रणमेत् सदा॥१८॥
पुष्पेभ्यः पुष्पहासेभ्यो गन्धर्वेभ्यो नमो नमः।
यक्षेभ्यो भूतवर्गेभ्यो प्रेतेभ्यः सर्वकर्मसु॥१९॥
शब्दब्रह्मस्वरूपेभ्यः प्रणमामि सदा प्रिये।
रुद्रेभ्यो रुद्रवंशेभ्यो भैरवेभ्यो नमो नमः॥२०॥
लिङ्गेभ्यो लिङ्गदेवेभ्यो वेदशास्त्रेभ्य एव च।
वेदेभ्योऽपि च शास्त्रेभ्यस्तेभ्यो नित्यं नमो नमः॥२१॥
स्थविरेभ्यो नमस्कृत्य ऋषिभ्यः प्रणमेत् सदा।
प्रणमामि सदाऽर्थेभ्यो वेशेभ्योऽपि नमो नमः॥२२॥
मन्त्रेभ्योऽपि नमस्कृत्य मन्त्रार्थेभ्यो नमो नमः।
पूजोपकरणेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यो नमो नमः॥२३॥
योगिनीभ्यो नमस्कृत्य शक्तिभ्योऽपि नमो नमः।
रत्नेभ्योऽपि नमस्कृत्य नदीभ्यः प्रणमेत् सदा॥२४॥
पीठेभ्योऽपि नमस्कृत्य मातृभ्यः प्रणमेत् सदा।
अन्नेभ्योऽपि नमस्कृत्य इन्द्रेभ्योऽपि नमो नमः॥२५॥
क्षेत्रेभ्योऽपि नमस्कृत्य क्षेत्रपालेभ्य एव च।
कुलाचलेभ्यो नत्वा तु प्रादुर्भावेभ्य एव च॥२६॥
उक्तानुक्तञ्च यत् किञ्चित् तेभ्यो नित्यं नमो नमः।
ओं नमामि कालिकां देवीं कलिकल्मषनाशिनीम्॥२७॥
नमामि शम्भुपत्नीं च नमामि भवसुन्दरीम्।
आद्यां देवीं नमस्कृत्य नमस्त्रैलोक्यमोहिनीम्॥२८॥
नमामि सत्यसङ्कल्पां सर्वपर्वतवासिनीम्।
पार्वतीं च नमस्कृत्य नमो नित्यं नगात्मजे॥२९॥

मातस्त्वदीयचरणं शरणं सुराणां
ध्यानास्पदं दिशति वाञ्छितवाञ्छनीयम्।
येषां हृदि स्फुरति तच्चरणारविन्दं
धन्यास्त एव नियतं सुरलोकपूज्याः ।।३०।।
गन्धैः शुभैः कुङ्कुमपङ्कलेपै-
र्मातस्त्वदीयं चरणं हि भक्ताः।
स्मरन्ति शृण्वन्ति लुठन्ति धीरा-
स्तेषां जरा नैव भवेद् भवानि ।।३१।।
तवाङ्घ्रिपद्मं शरणं सुराणां
परापरा त्वं परमा प्रकृष्टिः।
दिने दिने देवि! भवेत् करस्थः।
किमन्यमुच्चैः कथयन्ति सन्तः ।।३२।।
कवीन्द्राणां दर्प करकमलशोभापरिचितं
विधुन्वञ्जङ्घान्ये सकलगणमेतद् गिरिसुते।
अतस्त्वत्पादाब्जं जननिं सततं चेतसि मम।
हितं नारीभूतं प्रणिहितपदं शाङ्करमपि ।।३३।।
ये ते दरिद्राः सततं हि मातस्त्व-
दीयपादं मनसा नमन्ति।
देवासुराः सिद्धवराश्च सर्वे तव
प्रसादात् सततं लुठन्ति ।।३४।।
हरिस्त्वत्पादाब्जं निखिलजगतां भूतिरभवत्।
शिवो ध्यात्वा ध्यात्वा किमपि परमं तत्परतरम् ।।३५।।
प्रजानां नाथोऽयं तदनु जगतां सृष्टिविहितम्।
किमन्यं ते मातस्तव चरणयुग्मस्य फलता ।।३६।।
इन्द्रः सुराणां शरणं शरण्यो
प्रजापतिः काश्यप एव नान्यः।
वरांपतिर्विष्णुभवः परेशि
त्वदीयपादाब्जफलं समस्तम् ।।३७।।
त्वदीयनाभीनवल्लभेवा नवाङ्कु-
रैर्लाभवरैः प्रफुल्लम्।

सदा वरेण्यो शरणं विधेहि किं
वा परं चित्तवयैर्विभाव्यम् ।।३८।।
त्वदीयपादार्चितवस्तुसम्भवः सुरासुरैः पूज्यमवाप शम्भुः ।
त्वदीयपादार्चनतत्परो हरिः सुदर्शनाधीश्वरतामुपालभेत् ।।३९।।
धरित्री गन्धरूपेण रसेन च जलं धृतम् ।
नेतो वह्निस्वरूपेण प्रणवे ब्रह्मरूपधृक् ।।४०।।
मुखं चन्द्राकारं त्रिभुवनपदे यामसहितं
त्रिनेत्रं मे मातः परिहरति यः स्यात् स तु पशुः ।
न सिद्धिस्तस्य स्यात् सुरतसततं विश्वमखिलं
कटाक्षैस्ते मातः सफलपदपद्मं स लभते ।।४१।।
क्रतुस्त्वं हविष्ट्वं स्वधा त्वं मुरारेः ।
पुरा त्वं परा त्वं सदाशीर्मुरारेः ।
हरस्त्वं हरिस्त्वं शिवस्त्वं शिवानि
गतिस्त्वं गतिस्त्वं गतिस्त्वं भवानि ।।४२।।
न वाऽहं न वा त्वं न वा वा क्रियाया
वरस्त्वं वरुस्त्वं शरण्यं धरायाः ।
नदस्त्वं नदी त्वं गतिस्त्वं निधीनां
सुतस्त्वं सुता त्वं पिता त्वं गृहीणाम् ।।४३।।
त्वदीयमुण्डाख्ये भवानि मालां
विधाय चित्ते भवपद्मजादयः ।
सुराधिपत्वं लभते मुनीन्द्रः
शरण्यमेतत् किमपीह चान्यत् ।।४४।।
नरस्य मुण्डञ्च तथा हि खड्गं
भुजद्वये ये मनसा जपन्ति ।
सव्योत्तरे देवि वराभयञ्च भवन्ति
ते सिद्धजना मुनीन्द्राः ।।४५।।
शिवोपरि त्वां हृदये निधाय जपन्ति विद्यां हृदये कदाचित् ।
सदा भवेत् काव्यरसस्य वेत्ता अन्ते पदद्वन्द्वमुपाश्रयेत् ।।४६।।
दिगम्बरीं त्वां मनसा विचिन्त्य
जपेत् पराख्यां जगतां जनीति ।

जपेत् पराख्यां जगतां मतिश्च
किं वा पराख्यां शरणं भजामः ।।४७।।
शिवाविरावैः परिवेष्टितां त्वां
निधाय चित्ते सततं जपन्ति ।
भवेय देवेशि परापरादि निरीशतां
देवि ! परा वदन्ति ।।४८।।
त्वदीयशृङ्गाररसं निधाय जपति
मन्त्रं यदि वेदमुख्याः ।
भवन्ति ते देवि ! जनापवादं
कविः कवीनामपि चाग्रजन्मा ।।४९।।
विकीणकेशां मनसा निधाय
जपन्ति विद्या चकितं कदाचित् ।
सुराधिपत्यं लभते नरः स
किमस्ति भूम्यां शृणु कालकालि ।।५०।।
त्वदीयबीजत्रय मातरेतज्जपन्ति सिद्धास्तु विमुक्तिहेतोः ।
तदेव मातस्तव पादपद्मगा भवन्ति सिद्धिश्च दिनत्रयेऽपि ।।५१।।
त्वदीयकूर्चद्वयजापकत्वात् सुरासुरेभ्योऽपि भवेच्च वर्णः
धनित्व-पण्डित्य लभन्ति सर्वे किं
वा परा देवि ! परापराख्या ।
त्वदीयलज्जाद्वयजापकत्वाद् भवेन्महेशानि चतुर्थसिद्धिः
त्वदीयसंसिद्धिबरप्रसादात्तवाधिपत्यं लभते नरेशः ।।५२।।
ततः स्वनाम्नः शृणु मातरेतत् फलं चतुर्वर्ग वदन्ति सन्तः ।
बीजत्रयं वै पुनरप्युपास्य सुराधिपत्यं लभते मुनीन्द्रः ।।५३।।
पुनस्तथा कूर्चयुगं जपन्ति
नमन्ति सिद्धा नरसिंहरूपाः ।
ततोऽपि लज्जाद्वयजापकत्वा-
ल्लभन्ति सिद्धिं मनसो जनास्ते ।
अन्ते पदं क्षिप्य विभा विभाव-
सोस्त्वन्मन्त्रमुद्धारमिमं वदन्ति ।।५४।।
त्रिपक्षारे चक्रे जननि सततं सिद्धिसहितां
विचिन्वन् संचिन्वन् परममृतं दक्षिणपदम् ।

सदा कालीं ध्यात्वा विधिविहितपूजापरिकरां।
विशेषाख्यानं ते न खलु भवभङ्गाभयपदः।।५५।।
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी काली त्वं ह्रीस्त्वञ्च करालिका।
लज्जा लक्ष्मीः सती गौरी नित्या चिन्ता चितिः क्रिया।
परा आद्या पराख्या च परमापरमा वसुः।।५६।।
अकुल्याद्यैश्चित्तै प्रचयपदपत्यैः पदयुतैः
सदा जप्त्वा स्तुत्वा जपति हृदि मन्त्रं मनुविदा।
न तेषां संसारे विभवपरिभवप्रमथने
क्षणं चित्तं देवि! प्रभवति विरुद्धे परिकरन्।।५७।।
त्रयस्त्रिंशैः श्लोकैर्यदि जपति मन्त्रं स्तवति च।
नमेच्चैतानेतान् परममृतकल्पं सुरवरम्।
भवेत् सिद्धिः शुद्धौ जगति शिरसा त्वत्पदयुगं
प्रणम्य प्राकाम्यं परसुरजनैः पूज्यविततिम्।।५८।।

इति विश्वसारतन्त्रे दक्षिणकालिकाक्रमस्तोत्रम् सम्पूर्णम्।

❖

श्री कालिकास्तवेन्द्रम्

नमामि ते कालि पदारविन्दं त्वामाश्रयामि प्रणमामि नित्यम्।
ध्यायामि गायामि वदामि नित्यमेवं कुरु त्वं मम चित्तवृत्तिम्॥१॥
सीमन्तिनीसुन्दरि! कान्तिकम्रा कादम्बरी घूर्णितनेत्रपद्मा।
कदम्बमालाञ्चितकेशपाशा कलावती कौलिकचक्रमध्ये॥२॥
कन्दर्पदर्पादरदीर्घनेत्रा कुमुद्वती बान्धवचारुनेत्रा।
कलाकलापा कलहंसनादा कलावती कामकलाविलासा॥३॥
यत्रैव सङ्गः कुलसुन्दरीणां तत्रैव गङ्गा यमुनाच तत्र।
वाराणसी मोक्षकरी च तत्र तत्रैव गङ्गाम्बुधिसङ्गमश्च॥४॥
पादारविन्दं कुलसुन्दरीणां देशान्तरे भावितसिद्धमार्गे।
विहारलोकस्तरुणानुभावं गृहान्धकूपे विमलं विभाति॥५॥
कुरङ्गनेत्रातिकुरङ्गनेत्रा शिवा भवानीति शिवा भवानिः।
मृगेन्द्रमध्यातिमृगेन्द्रमध्या गौरीति गौरीति वचस्तु भूयात्॥६॥
त्वं तारिणी नारकहारिणी त्वं त्वं कालिका तारणकारिका त्वम्।
वैरोचिनी दुःखविमोचिनी त्वं त्वं भैरवी त्वं भुवनेश्वरी त्वम्॥७॥
दिगम्बरी पीनपयोधरा सा स्मराभिलाषा परिमुक्तकेशा।
सदा शिवाङ्कस्थितिरर्चिता सा श्यामाभिरामा परिपूर्णकामा॥८॥
श्रीसुन्दरीणां चरणारविन्दं विना न मन्ये न च पूजयामि।
न च जल्पयामो न च कल्पयामो न चाश्रयामो न च देवमन्यम्॥९॥
जपावली यावकजालवर्णा सौदामिनी दाड़िमबीजवर्णा।
सुवर्णकाञ्ची परिबद्धमध्या सिद्धार्चिता सिद्धमयी विभाति॥१०॥
कादम्बरीपानपरायणानां कुलाङ्गनानां वदनारविन्दम्।
ध्यानं ममैतत् स सदैव भूयात् तद्भावनाभावितभूरिभक्तिः॥११॥
त्वमेव बुद्धिश्च त्वमेव वृद्धिस्त्वमेव सिद्धिश्च त्वमेव ऋद्धिः।
प्रमात्मिका त्वं परमात्मिका त्वं प्रमाणमाता परमेश्वरी त्वम्॥१२॥
त्वं कार्तिकी कौतुकमूर्तिराद्या मयूरपृष्ठार्पितपादपद्मा।
चन्द्रानना चारुचकोरनेत्रा किं स्तौमि मातस्तव पादपद्मे॥१३॥

अत्युग्रदन्ताग्रधृता च नित्यं घोरानना घोरगभीरनादा।
संहारनिस्तारविधानकर्त्री वाराहि मातः स्तव एव सर्वम्।।१४।।
कालस्त्वमेव त्वमपीह काष्ठा त्वमेव चात्मा च मनस्त्वमेव।
श्रीब्रह्मशक्तिः खलु सत्यरूपा ज्योतिःस्वरूपा जगतः करोषि।।१५।।
त्वं वैष्णवी विष्णुस्वरूपिणी त्वं त्रैलोक्यरक्षाकरणैकदक्षा।
खगेन्द्ररूढा घननीलवर्णा विश्वेशरक्षानिलया त्वमेव।।१६।।
नानाकलाकेलिकुलालसङ्गी पीनस्तनी चन्द्रमुखी कदाचित्।
न विस्मरामो न च विस्मरामो न विस्मरामः कलहंसनादाम्।।१७।।
गतिस्त्वमेवासि गतिस्त्वमेव मतिस्त्वमेवासि मतिस्त्वमेव।
धृतिस्त्वमेवासि धृतिस्त्वमेव श्रुतिस्त्वमेवासि श्रुतिस्त्वमेव।।१८।।
तमाललीलाञ्चितमुण्डमाला काली करालाननलोलजिह्वा।
विमर्दयन्ती जगदादिमाता प्रचण्डचण्डासुरमुण्डखण्डान्।।१९।।
चतुर्भुजाप्यष्टभुजा त्वमेव षड्बाहुका षोडशहस्तयुक्ता
सहस्रहस्ता शतपाणिवल्ली त्वं कालिकं त्वं दशहस्तकासि।।२०।।
युगोऽपि वर्षः कल्पो मासो नक्तं दिवा त्वं प्रलयो मुहूर्त्तम्।
त्वं कालरात्री विरला त्वमेव राकार्णवी कालमयी च काली।।२१।।
वर्णेश्वरी त्वं पुरवासिनी त्वं पुरान्तका त्वं परिपूर्णता त्वम्।
त्वमुग्रतारैकजटा त्वमेव सुसम्मुखी नीलसरस्वती च।।२२।।
सर्पासना सर्वविभूषणैका धूमावती त्वं भवसीति मातः।
मातङ्गिनी त्वं वगला च माता त्वमेव काली करवालिनी च।।२३।।
आधारलग्नं खलु मेरुदण्डं तद्धामयुक्तापि च पिङ्गला च।
इडा च दक्षेषु निरन्तरेषु सुषुम्नमध्या ग्रथितार्चकस्य।।२४।।
चित्रान्तरस्था खलु वज्रनाड़ी मृणालातन्त्वर्धसुशूकसूक्ष्मा।
तन्मध्यगा येन विसूक्ष्मरूपा सा ब्रह्मनाड़ी तदनन्तरेऽपि।।२५।।
सहस्रपत्राम्बुजमेयगात्रा सुधासुरापानरतिप्रयुक्ता।
त्वं सर्वजीवा जननीस्वरूपा ब्रह्मस्वरूपा भवदेहमध्या।।२६।।
त्वं कुण्डलिन्यर्ककोटीन्दुदीप्ता कोटीन्दुकान्तिर्भुजगप्रमाणा।
आधारयुक्ता कुलकुण्डसुप्ताप्यर्धस्वयम्भूवदन प्रकाशी।।२७।।
कात्यायनी कामकला जयन्ती सवित्रि पूर्णा मधुमांसलुब्धा।
त्वमेव पूर्णा वनदुर्गका च कामात्मिका कामवती त्वमेव।।२८।।

गणेश्वरः षड्वदनः कुबेरो धनेशपुत्रो रविजो जयन्तः ।
त्वं चित्रगुप्तश्च सुकर्मकर्ता यतीश्वरी देवमयी त्वमेव ।।२९।।
त्वमेव सर्वासि वदामि तत्त्वं त्वमेव सर्वस्तवकस्त्वमेव ।
लिङ्गोऽप्यलिङ्गो यत एव सर्वे यतस्ततः सर्वमयी त्वमेव ।।३०।।
इदं स्तवेन्द्रं नियतं च देव्या भक्त्यैकचिह्नं सततं पठेद् यः ।
पिकस्वरः सर्वजनानुरागी दाता पुनीतो गुरुदेवभक्तः ।।३१।।
विघ्ने गणेशो भयदुर्गनाशो भोगी सुखी पूरितलोकभर्ता ।
सदामुदः सर्वगणेश्वरोऽपि दयाचितो रत्नयुतश्चिरायुः ।।३२।।
शतावधानो रणकालरुद्रो लोकाभिरामो भुवि सर्वदा सः ।
जित्वाग्रवाणीं युवतीं सृजन्तीं सुशीलयन्तीं परलोकविद्यः ।।३३।।

इति श्रीरुद्रयामले कालिकास्त्वेन्द्रं सम्पूर्णम्।।

❖

श्रीविद्यार्णवतन्त्रोक्त
काली प्रकरणं

तत्र भैरवतन्त्रे—

अथ वक्ष्ये महाविद्याः कालिकायाः सुदुर्लभाः।
यासां विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।।१।।

नात्र चित्तादिशुद्धिः स्यान्नारिमित्रादिलक्षणम्।
न वा प्रयासबाहुल्यं समयासमयादिकम्।।२।।
न वित्तव्ययबाहुल्यं कायक्लेशकरं न च।
य एनां चिन्तयेन्मन्त्री सर्वकार्यसमृद्धिदाम्।।३।।

तस्य हस्ते सदैवास्ति सर्वसिद्धिर्न संशयः।
गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते।।४।।

तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभां गताः।
राजानोऽपि च दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः।।५।।

दिवारात्रिव्यत्ययं च वशीकर्तुं क्षमो भवेत्।
अन्ते च भजते देव्या गणत्वं दुर्लभं नरः।।६।।

इति।

अथ श्यामामन्त्रः। तत्र कालीतन्त्रे—

कामत्रयं वह्निसंस्थं रतिबिन्दुसमन्वितम्।
कूर्चयुग्मं तथा लज्जायुगलं तदनन्तरम्।।१।।

दक्षिणे कालिके चेति पूर्वबीजानि चोच्चरेत्।
अन्ते वह्निवधूं दद्याद् विद्याराज्ञी प्रकीर्तिता।।२।।

मन्वर्थमाह रुद्रयामले—

ककाराज्जलरूपत्वात् केवलं मोक्षदायिनी।
ज्वलनार्थसमायोगात् सर्वतेजोमयी शुभा।।१।।

मायाबीजत्रयेणैव सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
बिन्दूनां निष्कलत्वाच्च कैवल्यफलदायिनी।।२।।

बीजत्रयाणां युक्त्या सा केवलं ज्ञानचित्फला।
शब्दबीजद्वयेनैव शब्दराशिप्रबोधिनी ।।३।।

लज्जाबीजद्वयेनैव सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
सम्बोधनपदेनैव सदा सन्निधिकारिणी ।।४।।

स्वाहया जगतां माता सर्वपापप्रदाहिनी।

इति। एवं वीरतन्त्रे-

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दक्षिणां कालिकां शुभाम्।
कामाक्षरं वह्निसंस्थं वामनेत्रविभूषितम् ।।१।।

बिन्दुनादसमायुक्तं बीजमेतत्त्रयं लिखेत्।
कूर्चयुग्मं ततो देवि! लज्जायुग्ममनन्तरम् ।।२।।

दक्षिणे कालिके चेति सम्बोधनपदान्वितम्।
सप्तबीजं पुनः प्रोच्य स्वाहान्तं मनुमुद्धरेत् ।।३।।

अथास्य पूजाप्रयोगः—तत्राचमनं भैरवतन्त्रे—

कालिकाभिस्त्रिभिः पीत्वा काल्यादिभिरुपस्पृशेत्।
द्वाभ्यामोष्ठौ द्विरुन्मृज्य चैकेन क्षालयेत्करौ।।१।।
मुखघोणेक्षणश्रोत्रनाभ्युरः कं भुजो क्रमात्।
आचम्यैवं भवेत् काली वत्सराणां (त्तां) प्रपश्यति।।२।।

आद्यबीजत्रयेण द्विराचमेत्। ॐ काल्यैनमः, ॐ कपालिन्यै नमः, इति ओष्ठौ द्विरुन्मृजेत्। ॐ कुल्लायै नमः, इति करं क्षालयेत्। ॐ कुरुकुल्लायै नमः, इति मुखे। ॐ विरोधिन्यै नमः इति दक्षिणनासायां। ॐ विप्रचित्तायै नमः, इति वामनासायां। ॐ उग्रायै नमः, ॐ उग्रप्रभायै नमः, इति नेत्रयोः। ॐ दीप्तायै नमः, ॐ नीलायै नमः इति श्रोत्रयोः। ॐ घनायै नमः नाभौ। ॐ वलाकायै नमः इति वक्षसि। मात्रायै नमः शिरसि। मुद्रायै नमः, मितायै नमः इत्यंसयोः इति मन्त्राचमनम्। ततः प्रातः-कृत्यादियोगपीठन्यासान्ते भूतशुद्ध्यन्तं कर्म विधाय, मायाबीजेन यथाविधि प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। तद्यथा—अस्य मन्त्रस्य भैरवऋषिः उष्णिक् छन्दः, दक्षिणकालिका देवता, ह्रीं बीजं, हूं शक्तिः, क्रीं कीलकं पुरुषार्थसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। शिरसि भैरवऋषये नमः। मुखे उष्णिक्छन्दसे नमः। हृदि दक्षिणकालिकादेवतायै नमः। गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः हूं शक्तये नमः। सर्वाङ्गे क्रीं कीलकाय नमः। तथा च

कालीतन्त्रे—

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तः उष्णिक् छन्द उदाहृतम् ।
देवता कालिका प्रोक्ता लज्जावीजं तु कीलकम् ।।१।।

शक्तिस्तु कूर्चबीजं स्यादनिरुद्धसरस्वती ।
कवित्वार्थे विनियोगः स्यादेवं ऋषिकल्पना ।।२।।

इति। कालीक्रमे–

कीलकं चाद्यवर्णं स्याच्चतुर्वर्गार्थसिद्धये ।
कवित्वार्थ इत्युपलक्षणं तन्त्रान्तरे फलान्तरश्रवणाच्च ।

कुलचूड़ामणौ—

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक् छन्द उदाहृतम् ।
दक्षिणा कालिका देवी चतुर्वर्गफलप्रदा ।।१।।

इति। अथ कराङ्गन्यासौ। यथा **कालीतन्त्रे—**

अङ्गन्यासकरन्यासौ यथावदभिधीयते ।
षड्दीर्घभाजा बीजेन प्रणवाद्ये कल्पयेत् ।।१।।

इति। **वीरतन्त्रे**ऽपि—"दीर्घषट्कयुताद्येन प्रणवाद्येन कल्पयेत्।" तद्यथा—ॐ ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि। एवं ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि ॐ क्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः, इत्यादिना वा। ततो वर्णन्यासः—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं नमः इति हृदये। एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमः इति दक्ष बाहौ, ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः इति वामबाहौ। णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमः इति दक्षपादे। मंयंरंलंवंशंषंसंहंळं क्षं नमः इतिवामपादे। **बिरुपाक्षमते** तु सबिन्दुरेष न्यासः, तन्त्रे पुनर्निबिन्दुः। यथ **वीरतन्त्रे**-अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं वै हृदये न्यसेत्" इत्यादि।। **कालीतन्त्रे**ऽपि—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ वै हृदये न्यसेत् इत्यादि। अथ षोढान्यासं तदुक्तं **वीरतन्त्रे—**

केवलां मातृकां कृत्वा मातृकां तारसम्पुटाम् ।
मातृकापुटितं तारं न्यसेत् साधकसत्तमः।।१।।

श्रीबीजपुटितां तां तु मातृकापुटितं तु तत् ।
कामेन पुटितां देवीं तत्पुटं काममेव च ।।२।।

शक्त्या च पुटितां देवीं शक्तिं च तत्पुटां न्यसेत् ।
ह्रींद्वन्द्वं च पुनर्न्यस्य ऋॠऌॡ च पूर्ववत् ।।३।।

मूलेन पुटितां देवीं तत्पुटं मन्त्रमेव च ।
अनुलोमविलोमेन न्यस्य मन्त्रं यथाविधि ।।४।।

मूलेनाष्टशतं कुर्याद् व्यापकं तदनन्तरम् ।

तथा—ॐ अं ॐ, अं ॐ अं, श्रीं अं श्रीं, अं श्रीं अं, एवं तथैव मातृकापुटितम्। एवं कामपुटितां तां तत्पुटितं कामम्। एवं शक्तिपुटितां तां तत्पुटितां शक्तिं न्यसेत्। तथा ह्रींद्वन्द्वपुटितां तां तु मातृकापुटितं द्वयम्। तथा ऋं ॠं ऌं ॡं च पूर्ववत्। एवं मन्त्रपुटितां मातृकां मातृकापुटितं मनुं, पुनरनुलोमविलोमेन मन्त्रं मातृकास्थाने न्यस्य मूलेनाष्टोत्तरशतेन व्यापकं कुर्यात्। एतन्न्यासस्ताराया अपि बोद्धव्यः। ''इति गुप्तेन दुर्गाया अङ्गषोढा प्रकीर्तिता । तारायाः कालिकायाश्च तन्मुख्याश्च तथापरा। कृतेऽस्मिन् न्यासवर्ये च सर्वपापं प्रणश्यति। ततस्तत्वन्यासः—मनुं त्रिखण्डं विधाय प्रथमखण्डान्ते ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा पादादिनाभिपर्यन्तम्। द्वितीयान्ते ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा नाभ्यादिहृदयान्तम्। तृतीयखण्डान्ते ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा, हृदयादिशिरःपर्यन्तम्।

तदुक्तं **स्वतन्त्रे**—

मूलविद्यात्रिखण्डान्ते प्रणवाद्यैर्यथात्रिधि ।
आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैर्न्यासं तत्र समाचरेत् ।।१।।

इति। अथ बीजन्यासः। तदुक्तं **कुमारीकल्पे**—

ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये ललाटे नाभिदेशके ।
गुह्ये वक्त्रे च सर्वाङ्गे सप्तबीजं क्रमान्न्यसेत् ।

तद्यथा—आद्यबीजं ब्रह्मरन्ध्रे। द्वितीयं बीजं भ्रूमध्ये। तृतीयं बीजं ललाटे। चतुर्थं बीजं नाभौ। पञ्चमं बीजं गुह्ये। षष्ठबीजं वक्त्रे। सप्तबीजं सर्वाङ्गे। एतत् त्रयं काम्यम्। मूलेन सप्तधा व्यापकं कृत्वा यक्षविधि मुद्रां प्रदर्शयेत्। तदुक्तं **भैरवीतन्त्रे**-पञ्चधा नवधा वापि मूलेन सप्तधा तथा।'' **स्वतन्त्रेऽपि**—''मूलेन व्यापकं न्यासं नवधा कारयेद् बुधः। ततो देवीं ध्यायेत्। तद्यथा **कालीतन्त्रे**—

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम् ।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम् ।।१।।

सद्यश्छिन्नशिरःखड्गवामाधोर्ध्वकराम्बुजाम् ।
अभयं वरदं चैव दक्षिणाधोर्ध्वपाणिकाम् ।।२।।

महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बराम् ।
कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम् ।।३।।

कर्णावतंसतानीतशवयुग्मभयानकाम् ।
घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम् ।।४।।

शवानां करसङ्घातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम् ।
सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम् ।।५।।

घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम् ।
बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम् ।।६।।

दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम् ।
शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम् ।।७।।

शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम् ।
महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम् ।।८।।

सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम् ।
एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं श्मशानालयवासिनीम् ।।९।।

शिवयुग्मेति घोरकर्णावतंसेति प्रेतकर्णपूरेति च ''शकुन्तपक्षसंयुक्तबाणकर्णविभूषणाम्'' इति। विगतासुकिशोराभ्यां कृतकर्णावतंसिनीमिति पठनादुभयमेव पाठः। ध्यानान्तरं **स्वतन्त्रे**—

अञ्जनाद्रिप्रभां देवीं करालवदनां शिवाम् ।
मुण्डमालावलीकीर्णां मुक्तकेशीं स्मिताननाम् ।।१।।

महाकालहृदम्भोज स्थितां पीनपयोधराम् ।
विपरीतरतासक्तां घोरदंष्ट्रां शवैः सह ।।२।।

नागयज्ञोपवीताढयां चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।
सर्वालङ्कारसंयुक्तां मुण्डमालाविभूषिताम् ।।३।।

मृतहस्तसहस्रैस्तु बद्धकाञ्चीं दिगंशुकाम् ।
शिवाकोटिसहस्रैस्तु योगिनीभिर्विराजिताम् ।।४।।

रक्तपूर्णमुखाम्भोजां मद्यपानप्रसक्तिकाम् ।
वह्न्यर्कशशिनेत्रां तु रक्तविस्फुरिताननाम् ।।५।।

विगतासुकिशोराभ्यां कृतकर्णावतंसिनीम् ।
कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम् ।।६।।

श्मशानवह्निमध्यस्थां ब्रह्मकेशववन्दिताम् ।
सद्यश्छिन्नशिरः खड्गवराभीतिकराम्बुजाम् ।।७।।

इति ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य अर्घ्यस्थापनं कुर्यात्। यथा—स्ववामे भूमौ "हुमिति" अर्घ्यस्थपनीय गर्भं त्रिकोणं विलिख्य तत्रार्घ्यपात्रं संस्थाप्य मूलेन शुद्धजलादिनां शङ्खादिपात्रमापूर्य 'ॐ ह्रां हृदयाय नमः" इत्यादिषडङ्गमन्त्रैरग्नीशासुरवायुषु, अग्रे ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। चतुर्दिक्षु ह्रः अस्त्राय फट् इत्यभ्यर्च्य, तदुपरि मत्स्यमुद्रयाच्छाद्य, तदुपरि मूलमन्त्रं दशधा जप्त्वा धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य, अस्त्रेण संरक्ष्य भूतिनीयोनिमुद्रे प्रदर्श्य, तज्जलं प्रोक्षणीपात्रे किञ्चिक्षिप्य तेनोदकेनात्मानं स्वपूजोपकरणं चाभ्युक्ष्य पीठपूजामारभेत्। अस्याः पूजायन्त्रम्—आदौ बिन्दुं स्वबीजं भुवनेश्वरीं च विलिख्य, ततस्त्रिकोणं तद्बाह्ये त्रिकोणचतुष्टयं वृत्तमष्टदलं पद्मं पुनर्वृत्तं चतुर्द्वारात्मकं भूगृहं यन्त्रमारभेत्। ततः पीठपूजा, **कुमारीकल्पे**—

पीठपूजां ततः पश्चादाधार शक्तिपूर्वकम्।
प्रकृति कमठं चैव शेषं पृथ्वीं तथैव च।।१।।

सुधाम्बुधिं मणिद्वीपं चिन्तामणिगृहं तथा।
श्मशानं पारिजातं च तन्मूले रत्नवेदिकाम्।।२।।

तस्योपरि मणेः पीठं न्यसेत् साधकसत्तमः।
चतुर्दिक्षु मुनीन् देवान् शिवाश्च शवमुण्डकान्।।३।।

"धर्माधर्मदींश्चे" त्यादि। ततः पीठन्यासोक्ताधारशक्त्यादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः इत्यन्तं सम्पूज्य केसरेषु पूर्वादितः "इच्छाज्ञानक्रियाश्चैव कामिनी कामदायिनी। रती रतिप्रियानन्दा मध्ये चैव मनोन्मनी।।" सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्। तदुपरि "ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः" पीठस्योत्तरे गुरुपूजा। पुनर्ध्यात्वा पुष्पाञ्जलावानीय मूलमन्त्रकल्पितमूर्तौ आवाहयेत्।

देवेशि! भक्तिसुलभे! परिवारसमन्विते!।
यावत्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव।।

ततो मूलमुच्चार्य "अमुके देवि इहावह इहावह इह तिष्ठ तिष्ठ इह सन्निधेहि सन्निधेहि इह सन्निरुध्यस्व सन्निरुध्यस्व।" ततो हुमित्यवगुण्ठ्य अङ्गमन्त्रैः सकलीकृत्य, धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य, परमीकरणमुद्रया परमीकृत्य भूतिनीयोनिमुद्रे प्रदर्श्य प्राणप्रतिष्ठां विधाय मेलेन पाद्यादिभिः पूजयेत्। मूलमुच्चार्य अमुकदेवतायै एतत्पाद्य नमः। इदमर्घ्यं स्वाहा। इदमाचमनीयं स्वधा। स्नानीयं निवेदयामि। पुनराचमनीयं स्वधा। एष गन्धो नमः। एतानि पुष्पाणि वौषट्। ततो मूलेन पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा मूलमुच्चार्य एष दीपो नमः। ततो घण्टां सम्पूजयेत्—ॐ जगद्ध्वनि मन्त्रमातः स्वाहा इति घण्टां सम्पूज्य वादयन् धूपं दत्त्वा दीपं दृष्टिपर्यन्तं दद्यात्। ततो मूलेन पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा यथोपपन्नं नैवेद्यं दद्यात्।

ततः आवरणपूजामरभेत्। ततः "अमुके देवि आवरणं ते पूजयामि" इत्याज्ञां

गृहीत्वा केसरेषु अग्निकोणे ॐ ह्रां हृदयाय नमः। ईशाने ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। नैर्ऋत्ये ॐ ह्रूं शिखायै वषट्। वायौ ॐ ह्रैं कवचाय हुं। आग्नेये ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। चतुर्दिक्षु ॐ ह्रः अस्त्राय फट्। ततो बहिः षट्कोणे ॐ काल्यै नमः, एवं कपालिन्यैः०, कुल्लायै०, कुरुकुल्लायै०, विरोधिन्यै०, विप्रचित्तायै०, उग्रायै०, उग्रप्रभायै०, दीप्तायै०, इत्यन्तत्र्यस्त्रे। नीलायै०, घनायै०, बलाकायै०, इति द्वितीयत्र्यस्त्रे। मात्रायै०, मुद्रायै०, मितायै०, इति तृतीयत्र्यस्त्रे।

सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषणाः।
तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यः शुचिस्मिताः।
दिगम्बरा हसन्मुख्यः स्वस्वभर्तृसमन्विताः।।

इति ध्यात्वार्चयेत्।

ततोऽष्टपत्रेषु पूर्वादिक्रमेण ॐ ब्राह्म्यै नमः, एवं नारायण्यै०। माहेश्वर्यै०, चामुण्डायै०, कौमार्यै०, अपराजितायै०, वाराह्यै०। एता गन्धादिभिः सम्पूज्य, पत्राग्रे असिताङ्गादिभैरवान् पूजयेत्। ततोमूलेन पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात्। ततः पाद्यादिना देव्यादक्षिणे भागे महाकालं पूजयेत्। **कुमारीकल्पे**—देव्याश्च दक्षिणे भागे महाकालं प्रपूजयेत्। हुं क्षौं यां रां लां वां हां क्रों महाकालभैरव सर्वविघ्नान नाशय नाशय ह्रीं श्रीं फट्स्वाहा। अनेन पाद्यादिभिराराध्य त्रिस्तर्पयित्वा मूलेन देवीं पञ्चोपचारैः पूजयेत्। तथा च **कालीतन्त्रे**—

महाकालं यजेद्यत्नात् पश्चात् देवीं प्रपूजयेत्।।

ततो देवीं ध्यायेत्। ततो यथाशक्ति जपित्वा गुह्येत्यादिनां जपं देव्या वामहस्ते समर्पयेत्। ततः स्तुत्वा प्रदक्षिणीकृत्याष्टाङ्गं प्रणामं कुर्यात्। श्रीजगन्मङ्गल नाम कवचं पठेत्। ततस्तत्तेजः पुष्पेण सार्धं हृदि आरोपयेत्। ततो निवेद्यं निवेदयित्वा तन्नैवेद्यं किञ्चित् "उच्छिष्टचण्डालिन्यै नमः" इत्यैशान्यां दिशि दत्त्वा शेषं शिष्टेभ्यो दद्यात्। किञ्चित् स्वीकृत्य पादोदकं किञ्चित् पीत्वा निर्माल्यं धृत्वा यथेच्छं विहरेदिति। ततो मूलेनाष्टोत्तरशताभिमन्त्रितं "पुष्पं च चन्दनं धृत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत्। सर्वसिद्धियुतो भूत्वा भैरवो वत्सराद् भवेत्।।" इति। अस्य पुरश्चरणं लक्षद्वयजपः।तत्क्रमस्तु **कालीतन्त्रे**—

लक्षमेकं जपेद्विद्यां हविष्याशी दिवा शुचिः।
रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः।।१।।

इति। व्यवस्थामाह **स्वतन्त्रतन्त्रे**—

दिवा लक्ष शुचिर्भूत्वा हविष्याशी जपेन्नरः।
ततस्तस्य दशांशेन हविषाग्नौ समर्पयेत्।।१।।

इति। अत्राङ्गस्य कालान्तरमाह **नीलसारस्वततन्त्रे**—

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः।

अशुचिश्च तथा रात्रौ लक्षमेकं तथैव च।
दशांशं होमयेन्मन्त्री दशांशमभिषेचयेत्।।

इति साम्प्रदायिकाः। वस्तुतस्तु **कुमारी कल्पे—**

लक्षमेकं जपेन्मन्त्री हविष्याशी दिवा शुचिः।
रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः।।१।।

एवं लक्षद्वयं जप्त्वा तद्दशांशेन मन्त्रवित्।
अयुतं होमयेत् देवि! दिवारात्रिप्रभेदतः।।२।।

इति दर्शनाद् दिवा लक्षं जप्त्वा तद्दशांशहोमं कुर्यात्। रात्रौ लक्षं जपित्वा रात्रावेव तद्दशांशहोमं कुर्यात्, इति रहस्यार्थः। अत्र मन्त्रभेदाः—

वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं रतिबिन्दुसमन्वितम्।
एकाक्षरो महामन्त्रः सर्वकामफलप्रदः।
त्रिगुणस्तु विशेषेण सर्वशास्त्रप्रबोधकः।।

पूजादिकं तु-प्रातः कृत्यादिप्राणायामान्तं कर्म विधाय पूर्वोक्ता ऋषिच्छन्दोदेवता विन्यस्य वर्णन्यासं कृत्वा कराङ्गन्यासं कुर्यात्। तद्यथा ॐ क्रां अंगुष्ठाभ्यामित्यादि। एवं क्रां हृदयेत्यादि कल्पयेत्। एवं—

"षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि देशिकः।"

अन्यत्सर्वं पूर्ववत्। अनयोः पुरश्चरणं लक्षजपः। तथा च **सिद्धेश्वरी तन्त्रे—**

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं लक्षमेकं विधानतः।
तदशांशं विधानेन होमयेत् साधकोत्तमः।।१।।

मायाद्वयं कूर्चयुग्मं ऐन्द्रान्तं मादनत्रयम्।
मायाबिन्द्वीश्वरयुतं दक्षिणे कालिके पदम्।।२।।

संहारक्रमयोगेन बीजसप्तकमुद्धरेत्।
एकविंशाक्षरो मन्त्रस्ताराद्यः कालिकामुनः।।३।।

इन्द्रस्थ समीपे ऐन्द्रं रेफमित्यर्थः। तेन प्रणवं मायाद्वयं कूर्चयुग्मं निजबीजद्वयं दक्षिणेकालिके निजबीजत्रयं कूर्चद्वयं मायाद्वयमित्येकविंशत्यक्षरः। अस्य पूजादिकं दक्षिणावत्। पुरश्चरणं तु लक्षजपः। होमस्तु दशांशतः।

स्वाहान्तश्च त्रयोविंशाक्षरोऽयं मनुराजकः।
स्वाहां विनैकविंशत्यक्षरः कामप्रदो मनुः।।४।।

विंशत्यर्णा महाविद्या स्वाहाप्रणववर्जिता।
ध्यानपूजादिकं सर्वं दक्षिणावदुपाचरेत्।।५।।

इति। **स्वतन्त्रे—**

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हल्लेखाबीजमुद्धरेत् ।
रतिबीजं समुद्धृत्य पपञ्चमं भगान्वितम् ।।१।।

ठद्वयेन समायुक्ता विद्याराज्ञी प्रकीर्तिता ।

रतिबीजं निजबीजं। तथा च **चामुण्डातन्त्रे**—

रत्याद्या कालिका पातु द्वाविंशाक्षररूपिणी ।

इति कवचे प्रतिपादितम्। तेन प्रणवो माया निजबीजं पपञ्चममेकारयुक्तं वह्निवल्लभा।

अस्य पूजा—प्रातः कृत्यादिप्राणायामान्तं विधाय, ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। अस्य मन्त्रस्य भैरव ऋषिः विराट् छन्दः सिद्धिकाली ब्रह्मरूपा त्रिभुवनेश्वरी देवता, निजबीजं बीजं, लज्जा शक्तिः। वर्णन्यासकराङ्गन्यासौ च दक्षिणावत्। ध्यानं तु—

खड्गोद्भिन्नेन्दुबिम्बस्रवदमृतरसाप्लाविताङ्गी त्रिनेत्रा ।
सव्ये पाणौ कपालाद्गलदसृजमथो मुक्तकेशी पिबन्ती ।
दिग्वस्त्रा बद्धकाञ्ची मणिमयमुकुटाद्यैर्युता दीप्तजिह्वा ।
पायान्नीलोत्पलाभा रवि शशि विलसत्कुण्ठलालीढपादा ।।

एवं ध्यात्वा पूजादिकं दक्षिणावत् कुर्यात्। पुरश्चरणं त्वेकविंशति सहस्रजपः। तदुक्तं **कालीतन्त्रे**—

जपेद्विंशतिसाहस्रं सहस्रैकेन संयुतम् ।
होमयेत्तद्दशांशेन मृदुपुष्पेण मन्त्रवित् ।।१।।

इति। प्रकारान्तरं **विश्वसारे**—

मूलबीजं ततो माया लज्जाबीजं ततः परम् ।
महाविद्या महाकाल्या महाकालेन भाषिता ।।१।।

वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं रतिबिन्दुसमन्वितम् ।
एतत्त्रयं क्रमेणैव तदन्ते वह्निवल्लभा ।।२।।

निजबीजत्रयं फट् वह्निवल्लभा (३) निजबीजत्रयं कूर्चबीजं लज्जा पुनस्तान्येव वह्निवल्लभा (४)। वाग्भवं नमः मूलबीजं पुनस्तदेव कालिकायै वह्निवल्लभा (५)।

अस्य पूजा प्रयोगः—प्रातः कृत्यादिप्राणायामान्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। अस्यैकादशाक्षरस्य दक्षिणामूर्तिः ऋषिः, पंक्तिः छन्दः कालिका देवता, शिरोमुखहृदयेषु ऋषिच्छन्दोदेवता विन्यस्य ध्यायेत्। तथा—

चतुर्भुजा कृष्णवर्णा मुण्डमालाविभूषिता ।
खड्गं च दक्षिणे पाणौ बिभ्रतीन्दीवरद्वयम् ।।१।।

कर्त्री च खर्परं चैव क्रमाद्वामे सुबिभ्रती।
द्यां लिखन्तीं जटामेकं बिभ्रती शिरसा द्वयीम्।।२।।

मुण्डमालाधरा शीर्षे ग्रीवायामपि चापराम्।
वक्षसा नागहारं च बिभ्रती रक्तलोचना।।३।।

कृष्णवस्त्रधरा कट्यां व्याघ्राजिनसमन्विता।
वामपादं शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पदम्।।४।।

विलाप्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहाना शवद्वयम्।
साट्टहासा महाघोररावयुक्तां सुभीष्णा।।५।।

इति। एवं ध्यानम्। अन्यत्सर्वं दक्षिणावत्। पूर्वोक्तानां मन्त्रणां च सर्वं दक्षिणावद्बोद्धव्यम्। अस्य पुरश्चरणं लक्षद्वयजपः। अन्यासां मनत्रवर्णसंख्यलक्षजपः। तदुक्तं तत्रैव—

लक्षद्वयं जपेद्विद्यां पुरश्चरणकर्मणि।
अन्यासां वर्णलक्षं तु कथितं पद्मयोनिना।।१।।

इति। भेदास्तु—(१) निजबीजं कूर्चबीजं माया दक्षिणे कालिके वह्निवल्लभा। (२) निजबीजं कूर्चं लज्जा दक्षिणेकालिके फट्। (३) मूलबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जा द्वयं दक्षिणे कालिके पूर्वषड्बीजानि वह्निवल्लभा। (४) निजबीजं वह्निवल्लभा। (५) निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं वह्निवल्लभा। (६) मूलबीजं कूर्च लज्जा वह्निसुन्दरी। (७) मूलबीजं दक्षिणेकालिके वह्निनवल्लभा। (८) निजबीजं कूर्चं माया पुनस्तान्येव वह्निवल्लभा। (९) मूलद्वयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं पुनस्तान्येव वह्निवल्लभा। (१०) मूलत्रयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं पुनस्तान्येव वह्निवल्लभा (११) हृदयं वाग्भवं मूलद्वयं कालिकायै ठद्वयं। (१२) हृदयं पाशद्वयं अंकुशद्वयमस्त्रं वह्निजाया कालि कालिके दीर्घतनुच्छदं भुवनेशी कूर्चमस्त्रम्। (१३) लज्जाबीजं क्रोधमस्त्रं। एतासां पूजादिकं सर्वं दक्षिणावत्।। एषां पूजा-प्रातः कृत्यादिप्राणयामान्तं कर्म विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। एषां दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः पंक्तिश्छन्दः दक्षिणाकाली देवता, अन्यत् सर्व दक्षिणावद्बोद्धव्यम्। अस्यास्तु पुरश्चरणं लक्षजपः। एतासां पूजायन्त्रं कालीतन्त्रे—

आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्बहिर्न्यसेत्।
ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम्।।१।।

ततो वृत्तं समालिख्य लिखेदष्टदलं ततः।
वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेद्भूपुरमेककम्।।२।।

इति। **कुमारी कल्पे**—

मध्ये तु वैन्दवं चक्रं बीजमायाविभूषितम्।

इति। यन्त्रनिर्माणपात्रं **मुण्डमाला तन्त्रे—**

ताम्रपात्रे कपाले वा श्मशानकाष्ठनिर्मिते ।
शनिभौमदिने वापि शरीरे मृतसम्भवे ।।

स्वर्णरूप्येऽथवा लोहे चक्रं कार्यं विधानतः ।
. . . . । ।

इति। एतासां प्रमाणं **विश्वसारतन्त्रे—**

अथ पञ्चाक्षरीं विद्यां शृणुष्व कमलानने ।
प्रजापतिं समुद्धृत्य वह्न्यारूढं प्रजापतिम् ।।१।।

चतुर्थस्वरसंयुक्तं नादबिन्दुविभूषितम् ।
द्विगुणं च ततः कृत्वा ङेन्तं च कालिकापदम् ।।२।।

स्वाहान्ता कथिता विद्या प्रिय एकादशाक्षरी ।
ऋषिः स्याद् दक्षिणामूर्तिः पंक्तिश्छन्द उदाहृतम् ।।३।।

परात्परतरा शक्तिः कालिका देवता स्मृता ।
एकादशाक्षरी विद्या कालिकायाः सुदुर्लभा ।।४।।

लक्षद्वयं जपेद्विद्यां पुरश्चरणकर्मणि ।
अन्यासां वर्णलक्षं स्यात् कथितं पद्मयोनिना ।।५।।

इति। अन्यासां पञ्चाक्षरीप्रभृतिनाम्। अस्या ध्यानम्-''चतुर्भुजा कृष्णवर्णा''त्यादि।

मूलबीजं ततो मायां लज्जाबीजं ततः परम् ।
दक्षिणे कालिके चेति अस्त्रान्ता समुदीरिता ।।६।।

अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां विंशतिवर्णकाम् ।
यस्याः प्रसादमात्रेण भवेद्भूमिपुरन्दरः ।।७।।

मूलबीजद्वयं दद्यात्ततः कूर्चद्वयं वदेत् ।
लज्जायुग्मं समुद्धृत्य सम्बुद्ध्यन्तं पदद्वयम् ।।८।।

पूर्ववत् षट् तथा बीजान्यन्ते च वह्निसुन्दरी ।
ऋषिः स्याद् दक्षिणामूर्तिः पंक्तिश्छन्द उदाहृतम् ।।९।।

देवता कथिता सद्भिः काली दक्षिणपूर्विका ।
अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् ।।१०।।

निजबीजं समुद्धृत्य तदन्ते वह्निसुन्दरीम् ।
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो नानातन्त्रसमन्वितः ।।११।।

अष्टाक्षरी तु या प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु गोपिता।
निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं ततः ।।१२।।

स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वकामफलप्रदा।
निजं कूर्चं तथा लज्जा तदन्ते वह्निसुन्दरी ।।१३।।

पञ्चाक्षरी महाविद्या पञ्चवक्त्रं ऋषिः स्मृतः।
नवाक्षरीं महाविद्यां शृणुष्व कमलानने ।।१४।।

निजबीजत्रयं कूर्चयुग्मं लज्जायुगं ततः।
स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वसम्पत्करी मता ।।१५।।

अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां तां नवाक्षरीम्।
मूलबीजं समुद्धृत्य सम्बुद्ध्यन्तं पदद्वयम् ।।१६।।

स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वशत्रुक्षयङ्करी।
अथवाष्टाक्षरीं विद्या शृणुष्व कमलानने!।।१७।।

निजबीजं ततः कूर्चं ततो माया समुद्धरेत्।
पुनस्तान्येव उच्चार्य स्वाहान्ता मोक्षदायिनी ।।१८।।

अथापरां प्रवक्ष्यामि दशतत्त्वसमन्विताम्।
मूलद्वयं कूर्चयुगं तथा लज्जाद्वयं तथा ।।१९।।

पुनस्तान्येव बीजानि तदन्ते वह्निसुन्दरी।
चतुर्दशाक्षरी विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ।।२०।।

ब्रह्मत्रयं समुद्धृत्य रतिवह्निसमन्वितम्।
नादबिन्दुसमायुक्तं लज्जाकूर्चद्वयं ततः ।।२१।।

पुनः क्रमेण चोद्धृत्य वह्निजायावधिर्मनुः।
षोडशीयं समाख्याता विद्या कल्पद्रुमोपमा ।।२२।।

इति। **मायातन्त्रे**—

हृदयं वाग्भवं देवि निजबीजयुगं ततः।
कालिकायै पदं चोक्त्वा तदन्ते वह्निसुन्दरी ।।१।।

तन्त्रान्तरे—

नमः पाशांकुशौ द्वेधा फट् स्वाहा कालिकालिके।
दीर्घतनुच्छदं कालीमनुः पञ्चदशाक्षरः ।।१।।

अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः। तथा च—

लक्षसंख्यं जपं कुर्यात् पुरश्चरणसिद्धये।
एतासां पूजनं चैव दक्षिणावत् सुरेश्वरिः ।।२।।

मत्स्यसूक्ते—

लज्जाबीजं ततः क्रोधं फडन्ता त्र्यक्षरी भवेत्।

इति काली मन्त्रः।

अथ गुह्यकाली **विश्वसारे**—

अथ वक्ष्ये महेशानि! विद्यां सर्वफलप्रदाम्।
चतुर्वर्गप्रदां साक्षान्महापातकनाशिनीम् ।।१।।

सर्वसिद्धिप्रदां विद्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्।
गुह्यकालीमहाविद्यां त्रैलोक्ये चातिदुर्लभाम् ।।२।।

इन्द्रादिरूढं वर्गाद्यं गतिबिन्दुसमन्वितम्।
त्रिगुणं च ततः कृत्वा ईशानद्वयमुद्धरेत् ।।३।।

षष्ठस्वरसमायुक्तं बिन्दुनादकलान्वितम्।
द्विगुणं च ततः कृत्वा ईशानद्वयमुद्धरेत् ।।४।।

वामाक्षिवह्निसंयुक्तं नादबिन्दुविभूषितम्।
तद् गुह्ये कालिके प्रोक्त्वा अथवा दक्षिणे वदेत् ।।५।।

सप्तबीजं पुनः पूर्वक्रमेण योजयेत्ततः।
वह्निजायाविधिः प्रोक्ता विद्या त्रैलोक्यमोहिनी ।।६।।

अथवेति गुह्येकालिके दक्षिणेकालिके वा मन्त्रः।

कामबीजं तथा कूर्चं तदन्ते भुवनेश्वरी।
गुह्ये च कालिके वापि तथा बीजद्वयं भवेत् ।।७।।

स्वाहान्ता कथिता विद्यां सर्वतन्त्रेषु गोपिता।
एषा तु षोडशी विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ।।८।।

अस्यार्थ—आदौ निजबीजं कूर्चं मायां ततः सम्बोधनपदद्वयं ततो निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं वह्निवल्लभा। "कामबीजद्वयं हित्वा भवेद्विद्या चतुर्दशा।" अस्य मन्त्रस्येति शेषः।

सप्तबीजं पुरा प्रोक्तं गुह्ये च कालिके पुनः।
स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।।९।।

एषापि चतुर्दशाक्षरी। तथा—

दक्षिणे पदमाभाष्य भवेत् पञ्चदशाक्षरी।
कामबीजं समुद्धृत्य सम्बुद्ध्यन्तं पदद्वयम्॥१०॥

पुनः कामं तदन्ते च दद्याद्वह्नेश्च सुन्दरीम्।
एषा नवाक्षरी विद्या गुह्यकाल्याः समीरिता॥११॥

दक्षिणे पदमाभाष्य भवेद्विद्या दशाक्षरी।
कामबीजं परित्यज्य अथवा षोडशाक्षरी॥१२॥

तेन षोडशाक्षरविद्यायाः कामबीजाभावे पञ्चदशी भवति। एतासां पूजनं तु—

पूर्ववन्न्यासवर्गैस्तु पूर्ववत् पूजयेच्छिवाम्।
पूर्ववच्च जपेद्विद्यां सर्वं पूर्ववदेव हि॥१३॥

बलिदानं तथा यन्त्रं पूर्ववत् परिकल्पयेत्।

बलिमन्त्रस्तु—ॐ ह्रीं एह्येहि परमेशानि जगन्मातर्जगतां जननित गृह्णगृह्ण मम बलिं सिद्धि देहि देहि शत्रुक्षयं कुरु कुरु ॐ ह्रूं ह्रीं फट् ॐ कालिकायै नमः फट् स्वाहा॥ यद्वा गुह्यकाल्या अयं बलिमन्त्रः, हूं नमो एहि एहि गुह्यकालिके गृह्ण गृह्ण मम शत्रून् नाशय नाशय खादय खादय तुरु तुरु छिन्दि छिन्दि सिद्धिं देहि देहि हुं हुं स्वाहा॥

तथायमासनमन्त्रः—ॐ हूं सदाशिवमहाप्रेताय गुह्यकाल्यासनाय नमः, गुह्यकाल्यै हूं नमः।

भद्रकाल्यादयो विद्याः कथयते सुरसुन्दररि!।
कामबीजादिकं बीजं सप्त पूर्वापरे यजेत्॥१४॥

भद्रकालीं तथा ङेन्तां बीजमध्ये नियोजयेत्।
स्वाहान्ता कथिता विद्या विंशद्वर्णात्मिका परा॥१५॥

चतुर्वर्गप्रदा विद्या भद्रकाली शुभावहा।
सप्तबीजं समुद्धृत्य श्मशानकालिके तथा॥१६॥

पुनर्बीजं क्रमेणैव स्वाहान्ता सर्वसिद्धिदा।
विंशत्येकाक्षरी विद्या श्मशानकालिका मता॥१७॥

बीजानि चोच्चरेत् पूर्वं महाकालिपदं ततः।
तदन्ते सप्तबीजानि स्वाहान्ता सर्वसिद्धिदा॥१८॥

विंशत्यर्णा महाविद्या महाकाल्याः प्रकीर्तिता।

एतासां जपपूजनं दक्षिणावत्। विशेषस्तु-भूपुरे इन्द्रादिवज्रादीन् पूजयेत्। गृहस्थ पूर्वादिद्वारेषु विष्णुं सूर्यं गणेशं पूजयेत्। तत्रैव—

भूपुरे लोकपालांश्च तदस्त्राणि ततो बहिः ।
भूपुरेषु चतुष्कोणे पूजयेत् क्रमतः सुधीः ।।१९।।
विष्णुं शिव तथा सूर्यं गणेशं पूजयेत्ततः ।

अथास्याः पूजायन्त्रम्—

त्रिकोणं चैव षट्कोणं नवकोणं मनोहरम् ।
त्रिवृत्तं चाष्टपत्रं च सुकिञ्जल्कसमन्वितम् ।।२०।।
भूपुरत्रितयारूढं योनिमण्डलमण्डितम् ।
त्रिपञ्चारमिदं चक्रं सर्वतन्त्रेषु कीर्त्तितम् ।।२१।।

त्रिकोणं त्रिकोणाकारमित्यर्थः। ध्यानं तु—

महामेघप्रभां देवीं कृष्णवस्त्रपिधायिनीम् ।
ललज्जिह्वां घोरदंष्ट्रां घोररावां हसन्मुखीम् ।।२२।।
नागहारलतोपेतां चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।
द्यां लिखन्तीं जटामेकां लेलिहानासवं स्वयम् ।।२३।।
नागयज्ञोपवीताङ्गीं नागशय्यानिषेदुषीम् ।
पञ्चाशन्मुण्डसंयुक्तनरमाला महोदरीम् ।।२४।।
सहस्रफणसंयुक्तमनन्तं शिरसोपरि ।
चतुर्दिक्षु नागफणावेष्टितां गुह्यकालिकाम् ।।२५।।
तक्षकसर्पराजेन वामकङ्कणभूषिताम् ।
अनन्तनागराजेन कृतदक्षिणकङ्कणाम् ।।२६।।
नागेन्द्ररशनाहारकल्पितां रत्ननूपुराम् ।
द्विभुजां चिन्तयेद् देवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ।।२७।।
नरदेहसमारब्धकुण्डलश्रुतिमण्डिताम् ।
प्रसन्नवदनां सौम्यां नवरत्नविभूषिताम् ।।२८।।
नारदाद्यैर्मुनिगणैः सेवितां शिवगे (मो) हिनीम् ।
अट्टहासां महाभीमां साधकामीष्टदायिनीम् ।।२९।।

जटामेकां धारपन्तीमिति शेषः। अनन्तं शिरसोपरि दधतीमिति शेषः। गुह्येत्युपलक्षणम्। पूजादिकं तु दक्षिणावत् कार्यम्। इति कालीमन्त्राः।

❖

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

कादम्बरी–आदितः शुकनासोपदेशान्तो भागः – डॉ० नर्मदेश्वर त्रिपाठी	१७०.००
अभिज्ञानशाकुन्तलम्–संस्कृत, हिन्दी व्याख्या सहित – डॉ० धुरन्धर पाण्डेय	१४०.००
सनत्सुजातीयदर्शनम्–संस्कृत, हिन्दी व्याख्या सहित – डॉ० धुरन्धर पाण्डेय	५०.००
तर्कसंग्रहसर्वस्वम् – कुरंगटि श्रीरामशास्त्री	१५०.००
पारिभाषिक-पदार्थ-संग्रह – कुरगंटि श्रीरामशास्त्री	१००.००
मीमांसा-तत्त्व-विवेक – श्रीश्यामसुन्दर शर्मा	१५०.००
श्रीरामचरितमहाकाव्यम् - डॉ छोटेलाल त्रिपाठी	४००.००
छन्दोलंकारसुधा – डॉ० प्रद्युम्न द्विवेदी	३५.००
पंचलक्षणीसर्वस्वम् – डॉ० विजय शर्मा	१५०.००
उदयनकथाश्रित संस्कृत रूपक समीक्षात्मक अध्ययन – डॉ० उषा वर्मा	४००.००
तर्कसंग्रह–'दीपिका' न्यायबोधिनी, सिद्धान्तचन्द्रोदय, पदकृत्य, प्रतिबिम्ब, लघुबोधिनी, निरुक्ति, वाक्यवृत्ति, विरलासमन्वितः, ज्योत्स्नाख्याहिन्दीव्याख्या संवलितश्च – श्रीनिवास शर्मा	२५०.००
पाणिनिव्याकरणे मूर्धन्यादेशविधानविमर्शः – अखिलेश शुक्ला	३००.००
प्रौढ़मनोरमा–अजन्तपुलिङ्गादि से स्त्रीप्रयन्त भागः-संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहित – पं० द्वारिकाप्रसाद द्विवेदी (द्वितीय भाग)	३००.००
मार्कण्डेय महापुराणम् –भाषा टीका सहित	६००.००
महानिर्वाण तंत्र–संस्कृत, हिन्दी व्याख्या सहित – अजयकुमार उत्तम	५००.००
महापुराण-समकथा-कोश – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी	४००.००
अलंकार-शास्त्र में रस सिद्धान्त का विकास – देवनारायण शर्मा	३५०.००
वैयाकरणभूषणसार –संस्कृत, हिन्दी व्याख्या सहित–आचार्य देवदत्तशर्मोपाध्याय	(यंत्रस्थ)
गरुड़ महापुराणम् –भाषा टीका सहित	(यंत्रस्थ)

BHARATIYA VIDYA SANSTHAN

भारतीय विद्या संस्थान

प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता

सी. 27/59, जगतगंज, वाराणसी-221002 (उ0प्र0)

श्रीकालीतन्त्रम् मूल्य- ३००/-

ISBN - 81-87415-95-9